सन्निवेश

[राजस्थान के सृजनशील शिक्षकों का विविध रचना-संग्रह]

सम्पादक
ज्ञान भारिल्ल
चन्द्रकिशोर शर्मा : प्रेम सक्सेना

शिक्षा विभाग राजस्थान के लिए
अनुराग प्रकाशन
सुन्दरविलास, अजमेर

प्रकाशक :
अनुराग प्रकाशन
सुन्दरविलास, अजमेर
द्वारा
शिक्षा विभाग, राजस्थान
के लिए प्रकाशित

प्रथम संस्करण
सितम्बर, १९६८

मुद्रक :
श्री प्रतापसिंह लूणिया
जॉब प्रिंटिंग प्रेस,
ब्रह्मपुरी, अजमेर

आमुख

शिक्षा विभाग, राजस्थान ने राजस्थान के सृजनशील शिक्षकों की श्रेष्ठ साहित्यिक रचनाओं के प्रकाशन में योग देने की नीति अपनाई है। इस क्रम में गत वर्ष शिक्षकों की रचनाओं के तीन संग्रह ''''प्रस्तुति', 'प्रस्थिति' तथा 'परिवेश' शिक्षक दिवस के अवसर पर प्रकाशित किये गये थे। उसके बाद उर्दू भाषा में लिखने वाले श्री 'मसूर' तथा 'सालिक' की कृतियाँ 'दार की दावत' तथा 'सिल्क-ए-गौहर' भी प्रकाशित की गई। यह प्रसन्नता का विषय है कि इन प्रकाशनों की प्रत्येक क्षेत्र में सराहना की गई तथा इस प्रयास का स्वागत किया गया।

सृजनशील शिक्षकों की रचनाओं के प्रकाशन के लिये शिक्षक दिवस सबसे अधिक उपयुक्त अवसर है। ऋतु-क्रम को आगे बढ़ाते हुए इस वर्ष भी तीन रचना-संग्रह पाठकों के समक्ष प्रस्तुत किये जा रहे हैं। यह संग्रह उनमें से एक है। मुझे आशा है इस प्रकाशन तथा शिक्षकों द्वारा लिखित ग्रन्थों के प्रकाशन में सहयोग देने की नीति से शिक्षकों में साहित्य-रचना के प्रति अधिक उत्साह जागेगा तथा अन्य शिक्षक, छात्र एवं सभी विचारशील व्यक्ति इन पुस्तकों को पढ़कर आनंद प्राप्त करेंगे।

विभाग अपने इस प्रकाशन-कार्य में राजस्थान के अधिक से अधिक प्रकाशकों से सहयोग प्राप्त करने की कामना रखता है। और यह संतोष की बात है कि प्रकाशकों ने मुक्त मन से विभाग को सहयोग दिया है। इसके लिए वे धन्यवाद के पात्र हैं। साथ ही विभाग उन सभी शिक्षकों के प्रति आभारी है जिन्होंने इन संग्रहों के लिए रचनाएँ भेजकर सहयोग प्रदान किया है।

हरिमोहन माथुर
अपर निदेशक
प्राथमिक एवं माध्यमिक शिक्षा,
राजस्थान

शिक्षक दिवस, 1968

अनुक्रम

— —

गीति

•

शकुन्तला कुमारी 'रेणु'

मैं तुम्हारे विश्व-उपवन का विहँसता फूल !

जगत सुषमित,
श्वास सुरभित,
जो किये मन-प्राण प्रमुदित !
शूल से तन
    बिंधा कर भी
आत्मविस्मृत-सा
    रहा भव-डाल पर झुक, झूल !!
विश्व-उपवन मे तुम्हारे—
    मैं सुकोमल फूल !!

मैं भवाम्बुधि मे तुम्हारे एक बहता तूल !
चल लहर पर—
अथक पग धर,
अगम जीवन गहन मे तर,—
बह रहा गति से—
        निरन्तर
    लक्ष्य ओर अबाध,—
        चाहे अनिल हो प्रतिकूल !
    अगम भवनिधि मे तुम्हारे—
        मैं प्रवाहित तूल !

लोक वन्दित मैं तुम्हारे चरण की हूँ धूल !
अति अकिञ्चन,

दीन लघु कण,
विनत अनुक्षण,—
भाल-भाल विभूति—
प्रति नर की !!
नमित इन पदपद्म में—
भवशूल कर निर्मूल !!
विश्ववन्दित मैं तुम्हारे—
चरण की हूँ धूल !!

जननी, जन्म-भूमि की जय !

शंकर "क्रन्दन"

जननी, जन्म-भूमि की जय !
मंजुल ऊषा,
मादक रजनी,
डाला करती,
नित्य मोहिनी,
निरख-निरख होता विस्मय !
हरित धरित्री,
नीला अम्बर,
रत्न-राशि से—
सेवित सागर,
निखिल सृष्टि में शोभामय !
पावन, उज्ज्वल,
सरिता का जल,
लगता जैसे—
दर्पण निर्मल,
बिम्बित जिसमें मेघ—निचय !
रजत ओस पर,
कोमल निर्मल,
इन्द्र धनुष की—
छाया झलमल,
ज्यों सौन्दर्य—सृष्टि सुखमय !
दिग्-दिगन्त तक
विस्तृत कानन,
हो जैसे कुसुमित,
नन्दन — वन,

चिर-सस्मित किशलय-किशलय !

षट्–ऋतु–पूरित,

सुषमालंकृत,

युग - युग से,

सुर-नर-मुनि-वंदित,

विश्व - वरेण्य, विराट् अभय !

एक गीत : एक स्वर

श्याम श्रोत्रिय

अनन्त नीलाकाश मे, युग-युग से गर्वोन्नत, अभ्रस्पर्शी उत्तराञ्चल की हिमाच्छन्न तपःपूत गिरिराजियों ने गाया एक गीत। विस्तृत-अगाध अम्बुधि मे, युग-युग से चंचल, मिलनोत्सुक, दक्षिणांचल तट की उर्मियो ने गुनगुनाया एक गीत। स्वर्णरजयुता मरुधरा की गोद में युग-युग से जागृत पश्चिमाञ्चल की धारातीर्थगामी हुंकारो मे मुस्कराया—वही गीत। हरितवर्ण, सुपर्ण, मुदिता-श्रीयुता बगभूमि की बाँहो में पूर्वाञ्चल मे थिरक उठा वही गीत। उत्तर से दक्षिण तक, पूर्व से पश्चिम तक—केसर की क्यारियो मे, धवल हिमघाटियो में, नर्मदा के नीर पर, कृष्णा-कावेरी-गोदावरी के तीर पर, मालाबार तट पर, वृन्दावन वंशीवट पर, नारिकेल वृक्षों की गहरी घनी छाया में, चाय-उद्यानो मे, धान के खेतो मे, घनी-घनी बस्तियों मे, निर्जन वीरानों में, जगमगाते महलो से टिमटिमाती कुटियों मे, पूजागृह मंदिरो मे, कोलाहल पूर्ण हाटो मे, परिश्रमरत बाटों मे, आतपयुत दिवसो में, पावस की रातो में, शुभ्रशरद् ज्योत्स्ना मे, निशादीप-गानों में, सदियों से गूंजता रहा है—वही एक गीत–एक स्वर—

> उत्तरं यत्समुद्रस्य, हिमाद्रेश्चैव दक्षिणम्।
> वर्षतद् भारतं नाम, भारती यत्र सन्ततिः॥

भारतीय—जिनका गौरव एक है, संस्कृति एक है, आस्था और विश्वास एक है, ज्ञान एक है, ध्यान एक है, आनबान-शान एक है—

हम एक हैं! हम एक हैं!! हम एक हैं!!!

यह सजीली, सजीली, तरल उर्मिल वाणी और पैरो की थिरकन, एक स्वर—एक लय। कौन हैं ये? ओह, सरितायें! नृत्यागनाओं की भाँति हाथों मे हाथ डाले—अनथक, मस्त-टोली की टोली। एक ओर सोऽनुरक्त सिन्धु के साथ सतलज, व्यास, रावी, चिनाब, झेलम और दूसरी ओर गंगा

और यमुना के साथ महारास में मस्त घाघरा-गंडक और कोसी। ब्रह्मपुत्र लम्बी बाँहें पसारे गमक रही है, तो नर्मदा की सखियाँ ताप्ती, गोदावरी, कृष्णा और कावेरी भरतनाट्यम् और कथकली की शास्त्रीय मुद्राओं में प्रस्तुत हैं।

युग-युग से ये टोलियाँ यों ही नृत्यरत हैं। जय-पराजय के अनेक सेतु बँधे और टूटे। सम्राटों और शासकों के जत्थे आते और जाते रहे किन्तु यह समाँ वैसा ही बँधा है। रससिक्त तृण-तरु विमुग्ध बने आज भी उसी लय में झूम रहे हैं—वही एक गीत—एक स्वर।

हम एक हैं ! हम एक हैं !! हम एक हैं !!!

कैसा गंभीर घोष है ! वज्रोपम वाणी !! अडिग-उत्साहयुत, 'युग-युग गर्वोन्नत–नितमहान' हुंकार भरते शैलराट् ! एक ओर दीर्घकाय, दृढ़-चरण, त्रिकालदर्शी-योगी हिमाद्रि के साथ गगनभेदी, सद्यःरक्त रंजित उत्तरी सीमा के प्रहरी सजग हैं, तो दूसरी ओर अक्षय-अवदात-कीर्तिपूत अरावली मंत्रोच्चार कर रहे हैं। एक ओर विस्तृत-वनराजि-शोभित विन्ध्याचल वन्दन-रत है, तो दूसरी ओर मलयानिल में मस्त नीलगिरि-नादमुखर। टोली की टोली। इतिहास का हास-रुदन इन्होंने बहुत बार सुना है। उठते-गिरते कालचक्र के चरण-चिह्न इनकी छाया में छिपे हैं। आतंकी आक्रामकों के अगणित आघात इन्होंने अपने वज्र वक्ष पर सहे हैं, फिर भी इनका स्वर वैसा ही गंभीर है, वैसा ही अटल, वैसा ही अजेय।

हम एक हैं ! हम एक हैं !! हम एक हैं !!!

बर्फीले झोंकों में—हिम-शिखरों पर चढ़ते ये स्वर—'जय केदार'—'जय बद्री विशाल', धोरों की धरती के आँचल में अर्बुदगिरि की शान्त-स्तब्ध घाटियों में घूमते ये स्वर—'जय पुष्करराज', उद्वेलित जनसागर की तरंगों पर तैरते ये स्वर—'जय जगन्नाथ', सुदूर वनवीथियों में रम्य–रससिक्त कन्याकुमारी की साधनास्थली में सरसते ये स्वर 'जयति जय रामेश्वरम्' और जमुना कछारनि की, रंग-रस-रारनि की, विपिन विहारनि की स्मृति-सँजोये, नन्दनन्दन आनन्दकन्द ब्रजचन्द की रासस्थली वृन्दावन-मधुपुरी में गूँजते बाँसुरी के प्राणस्पर्शी स्वर, कर्मकाण्डी, वेदपाठी-शास्त्रार्थियों की धात्री विश्व-नाथ की काशी में गूँजते स्वर 'ॐ नमः शिवाय,' माँ भारती के परम लाड़ले, कल्पनाकान्त कालिदास की तपोभूमि में शंखोच्चार वलयित स्वर 'जय महाकाल', शक्ति-शील-सौन्दर्य के समन्वित स्वरूप मर्यादा पुरुषोत्तम की धर्मभूमि के मानस को विमोहते स्वर 'जय श्रीराम'—शताब्दियों से वही गीत गाते आ रहे हैं—

हम एक हैं ! हम एक हैं !! हम एक हैं !!!

और आइये इनकी भी सुनें—जो अपनी अपनी बाँहें फैलाये कोटि-कोटि दाहों में समाते चले आ रहे हैं। इन्हें किसी की चिन्ता नहीं। इनका 'दरसनहार सो मागनचागनहार' है। अद्भुत है इनकी उदारता जो ये 'कोटिन कलधौत के धाम करील की कुन्जों' पर वार देते हैं। एक, ओठ मूँदे गुनगुना रहा है—'वैष्णव जन तो तेने कहिये जे पीर पराई जाणे रे' तो दूसरा तरल-तरल कर गा रहा है—'दीनन प्रतिपाल नाथ भक्तन हितकारी, हमरी बेर ऐसी देर कहाँ करी मुरारी ?' एक अखण्ड विश्वास के साथ समझा रहा है—'ऐसो को उदार जग माहीं ? बिनु सेवा जो द्रवै दीन पर, राम सरिस कोऊ नाहीं' तो दूसरा प्रेमाम्बुपूरित होकर रीझ रहा है—'नन्दकनन्द फन्द के तरुवर, धीरे धीरे मुरली बजाउ।' एक ओर से पीयूषसिक्त वाणी बिखर रही है—'भज मन चरण कमल अविनाशी, जेताइ दीसे धरणि गगन बिच तेताइ सब उठ जासी' तो दूसरी ओर से वीणा झंकृत स्वर भरता रहा है 'आमार अनाहूत, आमार अनागत, तोमार वीणा तारे बाजिछे तारा'। अपने पुण्यशील जीवन से जगती का कलुष पखारते ये सभी भक्त जन, गुणी जन, युग युग से दृष्ट-अदृष्ट के समक्ष अपनी पावन पुकार समर्पित करते रहे हैं। भाषा भिन्न रूप पर भाव सबके एक हैं। एक ज्योति-पुञ्ज से सभी के प्राण दीपित हैं। सभी के अधरों पर एक ही गीत है—एक ही स्वर !

यह गीत-यही स्वर मूक पाषाणों के मृण्मय कलेवर पर मुखरित हो उठा है। अजन्ता के नीरव और एकान्त शिला-खण्डों में रति और रम्भा के स्वरूप-सा सजा है। कहीं रंगरेख के स्वप्नों में साकार हो उठा है तो कहीं कल्पना के पारस स्पर्श से मूर्तिमान। त्याग-तपस्या और साधन का सागर विरह और मिलन की अभिव्यक्ति बनकर लहरा उठा है। साँची के स्तूप पर, कोणार्क के सूर्य मन्दिर में, काञ्ची के शिवालय में और देलवाड़ा के देवालयों में यही गीत जड़ से चेतन बनकर जाग उठा है, तो ताज के रागसौध ऐश्वर्य और सीकरी के बुलन्द वैभव में विस्मय बनकर छा गया है।

स्वतन्त्रता महायज्ञ की इन अनन्तगामी लपटों को देखिये, रक्तपात, चीत्कार, पुकार, हाहाकार में गूँजता प्रलयकारी नाद-'हरहर महादेव', 'अल्लाहु हो अकबर'। समवेत स्वर में फिरंगी को ललकारते ये बलिष्ठ भुजदण्ड। हाथियों की चिंघाड़, घोड़ों की हिनहिनाहट और तोपों की गड़गड़ाहट में छपछपाती तलवारें। राजवंशों की भृकुटी तनी, सिंहासन हिल उठे। परदे की इज्जत परदेशी के हाथों बिकती देख-जवान उठ पड़े। सैनिक छावनी में भड़की आग कालसर्पिणी की भाँति दौड़ पड़ी। गुलामी के घटाटोप अंधकार में

एक ज्योति-पुञ्ज उमड़ पड़ा । स्वतन्त्रता की बलिवेदी पर शीश चढ़ाने माँ के सपूत स्पष्ट दीखने लगे । नाना, तात्या और पंत-पेशवा की पताकायें फरफराती दीखीं और उनके बीच चमचमाती किरचों में घिरी स्वातन्त्र्य दीप की ज्योति-शिखा झाँसी की रानी—महारानी लक्ष्मीबाई !

रानी !

तरुणाई के स्वप्नों को ठुकराकर. नारी जीवन के मोह-राग और शृंगार को तिलांजलि दे, सूनी कोख और उजड़े सुहाग को बिसारकर तुमने भारत की नारी के वीरत्व को अविस्मरणीय बना दिया । बुन्देले हरबोलों के मुँह से आज भी तुम्हारे त्याग और गौरव की गाथा सुनकर इस देश की नारी अपनी माँग के सिन्दूर पर गर्व करती है ।

और यह कौन नवयुवक है जो स्वातन्त्र्य यज्ञ की ज्वाला से धूमायित होकर अपने तरुणरक्त की अंजलि से जननी जन्मभूमि का पदार्चन कर रहा है । ओह ! सरदार भगतसिंह ! इस देश के शत सहस्र तरुणों को त्याग, तपस्या और बलिदान का मार्ग दिखाने वाले सपूत ! तुम्हारे गर्म रक्त की बूँदें इस धरती पर किंशुक और गुलाब बन कर खिल रही हैं । तुम्हारी फाँसी का फन्दा अनेकानेक पीढ़ियों के गले का पुष्पहार बन गया है । तिलक के त्याग, गोखले के गौरव और लाजपत की लाज रखने वाले वीर ! तुम्हारे साहस और शौर्य के स्वर, आज भी आजादी के दीवाने अनेकों 'आजादी' का आह्वान करते हैं । पंचनद प्रदेश के पावन पवन में आज भी तुम्हारी तरुणाई के तप्त स्वर गूँज रहे हैं ।

जय हिन्द ! जय हिन्द !! जय हिन्द !!!

कन्या कुमारी से काश्मीर तक प्रतिध्वनित होता एक स्वर । ओह ! नेताजी सुभाष ! प्यारे सुभाष !! भारतमाता की आँख के तारे सुभाष !!! सुजला, सुफला, शस्य श्यामला बंगभूमि के बंधु, कवीन्द्र-रवीन्द्र की कलास्नात तपोभूमि के तेजस्वी सपूत ! हाय, अपनी ममत्वमयी भारत माँ की गोद में तुम पुनः न लौट सके । स्नेह पूरिता, वात्सल्य-व्यथिता जननी की उदास आँखें आज भी तुम्हारी प्रतीक्षा में आकाश की ओर उठी हैं । काश, तुम एक बार आगये होते ! आजाद हिन्द के शतसहस्र सैनिक तुम्हारी अगवानी करते, तिरंगे का चँवर ढुलता, जनगणमन के तुम अधिनायक होते और असंख्य संतानों के वियोग से दुखी धात्री के मुख पर मुस्कराहट की एक रेख तो खिचती । बापू के स्वप्नों का देश चहचहाता, नेहरू के गुलाबों पर नया रंग आता, लाल बहादुर की बहादुरी तुम्हें मोह लेती, कोटि-कोटि

राष्ट्र रक्षक तुम्हारे एक इंगित पर सर्वस्व समर्पित करते और शत्रु के वक्ष को बेधने वाले समवेत गम्भीर घोष में तुम्हें सुनाई पड़ता 'एक गीत—एक स्वर !'

सीमा के सैनिको !

स्वतन्त्रता की रक्षाहित अहर्निश शस्त्र संधान करती तुम्हारी सजगता समस्त देशवासियों के गौरवगानों से समाहित है। बर्फीली आँधियों में अडिग, तपते अचलों में अटल, जाति-धर्म भाषा और प्रदेश के आत्मघाती अंधकार से अलग, जीवन के आकर्षक ऐश्वर्य से दूर, कर्त्तव्य-साधना के परम प्रशस्त पथ पर बढ़ते तुम्हारे दृढ़ चरण सम्पूर्ण देशवासियों की अटूट एकता के प्रतीक हैं। भारत माँ का सद्यरक्त-रंजित हिम-अचल स्वतन्त्रता का सौभाग्य चिह्न बन गया है। तुम्हारा त्याग, तुम्हारा उत्सर्ग, तुम्हारा समर्पण—शहीदों के मजार का दीपक बन कर जल रहा है।

दीप—जिसकी उज्ज्वल ज्योति में असंख्य आकाक्षायें, अजस्रस्नेह और अमित आशायें पल रही हैं !

दीप—जिसकी साधनापूत किरणों में न जाने कितनी माँ-बहिनों का धैर्य और संतोष जी रहा है !

दीप—जिसके आलोक में तरुणों के नवल रुधिर में देश-भक्ति की हिलोर उठ रही है !

दीप—जिसके पुण्य प्रकाश में एक पाञ्चजन्य-गर्जना देश के ओर-छोर मिलाकर आक्रान्ताओं को भयभीत और त्रस्त बनाती रही है !

दीप—जिसकी छाया में जागृत और ज्योतिष्मान कोटि-कोटि कलकंठ चिरकाल से गाते रहे हैं—एक गीत—एक स्वर !

उत्तर से दक्षिण तक, पूर्व से पश्चिम तक, देव-प्रिय धरती के विविध रूप-राग-रंजित प्रकृति के पालने में, अनन्य आस्था, अविचल विश्वासपूरित भक्ति और धर्म के प्राञ्जल प्रांगण में, अनथक साधना, त्याग और संयम-साध्य कला और साहित्य के पुष्कल प्रवाह में, सर्वस्व समर्पण और प्राणोत्सर्ग पूर्ण राष्ट्र के आराधन में—युग-युगों से गूंजता रहा है, वही एक गीत—एक स्वर !

एक गीत—एक स्वर !

●

एक ज्योति-पुञ्ज उमड़. पड़ा । स्वतन्त्रता की बलिवेदी पर शीश चढ़ाने माँ के सपूत स्पष्ट दीखने लगे । नाना, तात्या और पंत-पेशवा की पताकायें फरफराती दीखीं और उनके बीच चमचमाती किरचों में घिरी स्वातन्त्र्य दीप की ज्योति-शिखा झाँसी की रानी—महारानी लक्ष्मीबाई !
रानी !

तरुणाई के स्वप्नों को ठुकराकर. नारी जीवन के मोह-राग और शृंगार को तिलांजलि दे, सूनी कोख और उजड़े सुहाग को बिसारकर तुमने भारत को नारी के वीरत्व को अविस्मरणीय बना दिया । बुन्देले हरबोलों के मुँह से आज भी तुम्हारे त्याग और गौरव की गाथा सुनकर इस देश की नारी अपनी माँग के सिन्दूर पर गर्व करती है ।

और यह कौन नवयुवक है जो स्वातन्त्र्य यज्ञ की ज्वाला से धूमायित होकर अपने तरुणरक्त की अंजलि से जननी जन्मभूमि का पदार्चन कर रहा है । ओह ! सरदार भगतसिंह ! इस देश के शत सहस्र तरुणों को त्याग, तपस्या और बलिदान का मार्ग दिखाने वाले सपूत ! तुम्हारे गर्म रक्त की बूंदें इस धरती पर किंशुक और गुलाब बन कर खिल रही हैं । तुम्हारी फाँसी का फन्दा अनेकानेक पीढ़ियों के गले का पुष्पहार बन गया है । तिलक के त्याग, गोखले के गौरव और लाजपत की लाज रखने वाले वीर ! तुम्हारे साहस और शौर्य के स्वर, आज भी आजादी के दीवाने अनेकों 'आजादी' का आह्वान करते हैं । पंचनद प्रदेश के पावन पवन में आज भी तुम्हारी तरुणाई के तप्त स्वर गूंज रहे हैं ।

जय हिन्द ! जय हिन्द !! जय हिन्द !!!

कन्या कुमारी से काश्मीर तक प्रतिध्वनित होता एक स्वर । ओह ! नेताजी सुभाष ! प्यारे सुभाष !! भारतमाता की आँख के तारे सुभाष !!! सुजला, सुफला, शस्य श्यामला वंगभूमि के वंधु, कवीन्द्र-रवीन्द्र की कलास्नात तपोभूमि के तेजस्वी सपूत ! हाय, अपनी ममत्वमयी भारत माँ की गोद में तुम पुनः न लौट सके । स्नेह पूरिता, वात्सल्य-व्यथिता जननी की उदास आँखें आज भी तुम्हारी प्रतीक्षा में आकाश की ओर उठी हैं । काश, तुम एक वार आगये होते ! आजाद हिन्द के शतसहस्र सैनिक तुम्हारी अगवानी करते, तिरंगे का चँवर ढुलता, जनगणमन के तुम अधिनायक होते और असंख्य संतानों के वियोग से दुखी धात्री के मुख पर मुस्कराहट की एक रेख तो खिचती । वापू के स्वप्नों का देश चहचहाता, नेहरू के गुलाबों पर नया रंग आता, लाल बहादुर की बहादुरी तुम्हें मोह लेती, कोटि-कोटि

राष्ट्र रक्षक तुम्हारे एक इंगित पर सर्वस्व समर्पित करते और शत्रु के वक्ष को बेधने वाले समवेत गम्भीर घोष में तुम्हें सुनाई पड़ता 'एक गीत—एक स्वर !'

सीमा के सैनिको !

स्वतन्त्रता की रक्षाहित अहर्निश शस्त्र संधान करती तुम्हारी सजगता समस्त देशवासियों के गौरवगानों से समाहित है। बर्फीली आँधियों में अडिग, तपते अचलों में अटल, जाति-धर्म भाषा और प्रदेश के आत्मघाती अंधकार से अलग, जीवन के आकर्षक ऐश्वर्य से दूर, कर्त्तव्य-साधना के परम प्रशस्त पथ पर बढ़ते तुम्हारे दृढ़ चरण सम्पूर्ण देशवासियों की अटूट एकता के प्रतीक हैं। भारत माँ का रुधिरक्त-रंजित हिम-अचल स्वतन्त्रता का सौभाग्य चिह्न बन गया है। तुम्हारा त्याग, तुम्हारा उत्सर्ग, तुम्हारा समर्पण—शहीदों के मजार का दीपक बन कर जल रहा है।

दीप—जिसकी उज्ज्वल ज्योति में असंख्य आकांक्षायें, अजस्रस्नेह और अमित आशायें पल रही हैं।

दीप—जिसकी साधनापूत किरणों में न जाने कितनी माँ-बहिनों का धैर्य और संतोष जी रहा है।

दीप—जिसके आलोक में तरुणों के नवल रुधिर में देश-भक्ति की हिलोर उठ रही है!

दीप—जिसके पुण्य प्रकाश में एक पाञ्चजन्य-गर्जना देश के ओर-छोर मिलाकर आक्रान्ताओं को भयभीत और त्रस्त बनाती रही है!

दीप—जिसकी छाया में जागृत और ज्योतिष्मान कोटि-कोटि कलकंठ चिरकाल से गाते रहे हैं—एक गीत—एक स्वर!

उत्तर से दक्षिण तक, पूर्व से पश्चिम तक, देव-प्रिय धरती के विविध रूप-राग-रंजित प्रकृति के पालनों में, अनन्य आस्था, अविचल विश्वासपूरित भक्ति और धर्म के प्राञ्जल प्रांगण में, अनथक साधना, त्याग और संयम-साध्य कला और साहित्य के पुष्कल प्रवाह में, सर्वस्व समर्पण और प्राणोत्सर्ग पूर्ण राष्ट्र के आराधन में—युग-युगों से गूंजता रहा है एक गीत—एक स्वर!

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

वह खिड़की में खड़ा हुआ बैठा था। उसके हाथ में पत्थर का एक टुकड़ा था और उसकी नजर उस चूहे पर थी जो बार-बार बिल में से निकल कर अखबारों के रैक पर जाता था और अखबारों को कुतरने लगता था। बड़ा निडर और [illegible] चूहा था। [illegible] कुतर दिया था। उसने एक दिन पहले मेज पर रखी [illegible] कुतर दी थी। वह तय कर चुका था आज वह इस चूहे को जान से मार डालेगा। उस से पहले वह बहुत सोचने के बाद इस निर्णय पर पहुँच चुका था कि हैडक्लर्क को पाँच हजार रुपये देगा और इन्स्पेक्टर की पोस्ट को हासिल करेगा—ऐसी-ऐसी कितनी ही रकमें वह इन्स्पेक्टर होकर कमा लेगा। उसे दिक्कत नहीं होती अगर चार महीने पहले उसने बड़ी लड़की कुसुम की शादी न की होती। बैंक का खाता पुछ चुका था।

उसने देखा चूहा बिल से निकल कर फिर अखबारों वाले रैक की तरफ बढ़ गया है। उस का पत्थर के टुकड़े वाला हाथ तना और उस की नजर ने एक निशाना ताका। चूहा बेफिक्र था और अपने को कमरे का अकेला बॉस समझ कर अखबारों पर जाकर बैठ गया था और कुतर-कुतर करने लगा था। उसको एकाएक लगा जैसे वह हैडक्लर्क हो। साम्य के इस प्रक्षेपण के दिमाग में झलकते ही, उसने ताकत से पत्थर के टुकड़े को चूहे पर फैंक कर मारा। चूहा बिलबिला कर चित्त हो गया, लेकिन फौरन छटपटा कर

ची-ची करता हुआ उलटा-पलटा, और दौड़ कर बिल में घुस गया। बालकृष्ण की पाशविकता को थोड़े से हिस्से में सन्तोष मिला।

'क्या टूटा ?" हड़बड़ाती हुई सविता कमरे में घुसी, उसके चेहरे पर घबराहट थी और भय था।

'कुछ नहीं, कम्बख्त फिर भी बच गया' उसने हँसने की कोशिश करके जवाब दिया।

'चलो सोओ, बिना बात परेशान कर रखा है दिमाग को।' सविता ने सहज हो कर स्नेह से कहा।

बालकृष्ण बिल की तरफ देखने लगा, जिस के अन्दर से अपना आधा थूथना निकाले, चूहा आँखें टिमटिमा रहा था।

वह झुंझला पड़ा, 'तुम्हें क्या, तुम्हें तो अपने जेवरों से प्यार है, जिन्दगी भर इस क्लर्की पर डाले रखना।'

सविता का स्नेह गायब हो गया। अप्रत्याशित दोषारोपण को अपने पर लगता देख वह थोड़ीसी देर के लिए खड़ी-की-खड़ी रह गई। फिर उसने बालकृष्ण के तनाव से भरे चेहरे को देखा। फिर अपने को बिल्कुल सामान्य और निलिप्त करते हुए बोली, 'अगर ऐसा सोचते हो तो कल सुबह सारे जेवर दे दूँगी। चलो अब तो सोओ !'

चूहे को न मार पाने की खीझ बालकृष्ण के दिमाग से उड़ गई। समस्या के सुलझते ही तनाव और चेहरे की विरूपता ढीली पड़ कर सामान्यता में बदल गई और उसने अपने निर्णय के सही होने का प्रभाव सविता पर डालते हुए उसे समझाया—'सविता, इन्सपेक्टर की जगह बहुत आमदनी की है। यह रकम तो छह महीने में निकल आएगी, फिर जिन्दगी भर तुम और तुम्हारे बच्चे आराम से रहना।'

सविता ने कैसी भी प्रतिक्रिया नहीं दिखाई। वह दुबारा बोली, 'चलो सोओ, साढ़े बारह बज रहे हैं।' उसने मेज पर रखी एलार्म पीस की दोनों सुइयों की तरफ जैसे नजर से इशारा किया हो।

छत पर आकर वह अपनी खाट पर लेट गई। बालकृष्ण अपनी खाट पर लेट गया।

चाँदी की कटी सिल-सा चाँद आकाश में तारों को घूर रहा था, बालकृष्ण को लगा हैडक्लर्क की हथेली फँस रही है।

चूहे

राजानन्द

सविता बच्चों के साथ छत पर सो रही थी और वा

वजह से खिड़की से कुर्सी सटाए बैठा था। वह तीन रातों से

रहा था—बेचैन, परेशान।

सवाल प्रमोशन का था और उससे जुड़ी हुई [illegible]

हजार की रकम-पूर्ति का।

वह खिड़की से सटा हुआ बैठा था। उसके हाथ

टुकड़ा था और उसकी नजर उस चूहे पर थी जो बार-बार

कर अखबारों के रैक तक जाता था और अखबारों को कु

बड़ा निडर और डरपोक चूहा था। कल इसने नया का न

था। उससे एक दिन पहले मेज पर रखी डिक्शनरी कुतर दी

चुका था आज रात इस चूहे को जान से मार डालेगा

बहुत सोचने के बाद इस निर्णय पर पहुँच चुका

हजार रुपये देगा और इन्सपैक्टर की

कितनी ही रकमें वह इन्सपैक्टर

अगर चार महीने पहले

बैंक का खाता पुछ

उसने देख

तरफ बढ़ गया है

ने एक निशाना

बाँस समझ कर

था। उसको

के दिमाग में

कर मारा।

बालकृष्ण के हाथ से जैसे हीरामन तोता उड़ गया। उसका सारा जिस्म सन्नाटे में हो गया। उसके चेहरे की चमक पर हवाइयाँ आ गई। उसे लगा, उसे अपराधी करार दे कर लम्बी सजा सुना दी गई है। वह सुन्नसा हो गया पर फिर भी उसे लगा उसकी पैंट पर कई चूहे एक साथ चढ़ रहे हैं, जिनके पंजे उसको खाल में चुभ रहे हैं।

'बालकृष्ण, ऐसे कैसे बैठे हो। चलो, भाटी कैण्टीन में प्रमोशन की पार्टी दे रहा है।' चोपड़ा ने आकर कहा।

'चलो! मैं जरा वाइफ के सोच में पड़ गया था, उसकी तबीयत ठीक नहीं है।' वह झूठ बोल गया। चोपड़ा के साथ-साथ वह भी कैण्टीन चला गया।

कैण्टीन से छह बजे फुर्सत मिली। अकेले होते ही वह फिर अपने में फँस गया। सविता को क्या जवाब देगा?

उसने साइकिल हैडक्लर्क के घर की तरफ मोड़ दी। उसे गुस्सा भी नहीं आ रहा था। एक साथ जैसे उसकी सारी सोचने की शक्तियों को लकवा मार गया था। उसने हैडक्लर्क के दरवाजे की बिजली-घंटी फिर बजाई।

छज्जे से एक बच्ची ने झाँका—'कहिये?'

"बाबूजी हैं?" उसने पूछा।

"जी हैं, वह अन्दर गई, और फिर छज्जे पर आकर बोली—'आ रही हूँ।'

बैठक का दरवाजा खुला। उसके दाखिल होते ही फिर बन्द हो गया।

ट्यूब-लाइट की दूधिया रोशनी कमरे में फैली थी, और छत का पंखा तेजी से चल रहा था।

काफी इंतजार कराने के बाद हैडक्लर्क ने हाथों में नोटों की गड्डी लिये हुए प्रवेश किया। उसने बैठते-बैठते कहा—'बालकृष्ण, मुझ से पूछने की जरूरत नहीं है कि यह सब कैसे और क्यों हुआ। यह तुम्हारे रुपये हैं। जीवनराम ने नोटों को मेज पर रख दिया।'

बालकृष्ण ने रुपयों को कोट में रख लिया। दोनों चुप रहे। फिर वह बोला, 'बता तो दीजिये बाबूजी, मैं किसी से नहीं कहूँगा।'

जीवनराम ने गम्भीर होते हुए कहा—'ठीक से नहीं कह सकता। बॉस ने भाटी का प्रमोशन खुद किया है। हिस्सा आने पर पता चलेगा भाटी ने कितना ज्यादा दे दिया।'

बालकृष्ण ने शाम के अधकचरे अँधेरे में जब जीवनराम हैडक्लर्क के दरवाजे की बिजली-घंटी बजाई, उस वक्त उसके कोट की जेब में सात हजार की नोटों की गड्डी थी।

हैडक्लर्क ने छज्जे से झाँका और वहीं से जवाब दिया आ रहा हूँ। बालकृष्ण को उठी हुई नाक का गोल, गावदू, भद्दा हैडक्लर्क चूहे की तरह बदसूरत और घिनौना लगा। उसने अपने चेहरे के भावों पर काबू किया। बैठक का दरवाजा खुला, और उसके अन्दर दाखिल होते ही बन्द हो गया। छत से लटका पंखा चलने लगा। रौड की दूधिया रोशनी पहले से कमरे में फैल रही थी।

'आज दफ्तर नहीं आए ?' जीवनराम ने उस को परखते हुए पूछा।

"हाँ काम था। यह रुपये !" इतना कहते हुए उसने कोट के अन्दर की जेब में से गड्डी निकाल-निकाल कर मेज पर रखनी शुरू कर दीं। हैडक्लर्क की आँखें चमक उठीं। लेकिन उसने गम्भीरता से अपना बचाव लेते हुए कहा, 'यह मत समझना बालकृष्ण की सारी रकम मेरी है। इसमें छः हजार बॉस के हिस्से के हैं, दो हजार में मैं हूँ और हैड-आफिस का हैडक्लर्क।'

'जी, लेकिन काम तो हो जाएगा ?' बालकृष्ण ने हैडक्लर्क के चेहरे को अब देखा।

हैडक्लर्क के चेहरे पर काँइयाँ-हँसी फैली और वह विश्वास दिलाता हुआ बोला— 'रिश्वत लेने के बाद आदमी को ईमानदार होना पड़ता है।'

'मैं चलूँ !' बालकृष्ण घुटन महसूस कर रहा था।

'परसों तुम्हारे आर्डर हो जाएँगे। हैडक्लर्क ने गड्डी पर हाथ रखते हुए कहा। फिर उठकर उसने नोटों को अलमारी में रख दिया और बैठक का दरवाजा खोल दिया। बालकृष्ण बाहर निकल आया और घर के रास्ते हो लिया। उसे कमरे के उस बदसूरत चूहे की तरह कई चूहे एक साथ अपना थूथना हिलाते और आँख चमकाते दीखे। वह सड़क पर चलता रहा।

प्रमोशन ऑर्डर का इन्तजार करते-करते तीन बज गए। बालकृष्ण किसी कागज को भी नहीं निबटा सका। हैडक्लर्क लंच के बाद छुट्टी लेकर घर चला गया था जिसने उसे धधके में डाल दिया था। चार बजे के करीब उसने देखा, भाटी को उसके दोस्त इन्सपैक्टर होने की बधाई दे रहे हैं।

बालकृष्ण के हाथ में जैसे हीरामन तोता उड़ गया। उसका सारा जिस्म सन्नाटे में हो गया। उसके चेहरे की चमक पर हवाइयाँ आ गईं। उसे लगा, उसे अपराधी करार दे कर लम्बी सजा सुना दी गई है। वह सुन्नसा हो गया पर फिर भी उसे लगा उसकी पैंट पर कई चूहे एक साथ चढ़ रहे हैं, जिनके पंजे उसकी खाल में चुभ रहे हैं।

'बालकृष्ण, ऐसे कैसे बैठे हो। चलो, भाटी कैन्टीन में प्रमोशन की पार्टी दे रहा है।' चोपडा ने आकर कहा।

'चलो! मैं जरा वाइफ के सोच में पड़ गया था, उसकी तबीयत ठीक नहीं है।' वह झूठ बोल गया। चोपडा के साथ-साथ वह भी कैन्टीन चला गया।

कैन्टीन से छह बजे फुर्सत मिली। अकेले होते ही वह फिर अपने में फँस गया। सविता को क्या जवाब देगा?

उसने साइकिल हैडक्लर्क के घर की तरफ मोड़ दी। उसे गुस्सा भी नहीं आ रहा था। एक साथ जैसे उसकी सारी सोचने की शक्तियों को लकवा मार गया था। उसने हैडक्लर्क के दरवाजे की बिजली-घंटी फिर बजाई।

छज्जे से एक बच्ची ने झाँका—'कहिये?'

"बाबूजी हैं?" उसने पूछा।

"जी हैं, वह अन्दर गई, और फिर छज्जे पर आकर बोली—'आ रहीं हूँ।'

बैठक का दरवाजा खुला। उसके दाखिल होते ही फिर बन्द हो गया।

ट्यूब-लाइट की दूधिया रोशनी कमरे में फैली थी, और छत का पंखा तेजी से चल रहा था।

काफ़ी इंतजार कराने के बाद हैडक्लर्क ने हाथों में नोटों की गड्डी लिये हुए प्रवेश किया। उसने बैठते-बैठते कहा—'बालकृष्ण, मुझ से पूछने की जरूरत नहीं है कि यह सब कैसे और क्यों हुआ। यह तुम्हारे रुपये हैं। जीवनराम ने नोटों को मेज पर रख दिया।'

बालकृष्ण ने रुपयों को कोट में रख लिया। दोनों चुप रहे। फिर वह बोला, 'बता तो दीजिये बाबूजी, मैं किसी से नहीं कहूँगा।'

जीवनराम ने गम्भीर होते हुए कहा—'ठीक से नहीं कह सकता। बॉस ने भाटी का प्रमोशन खुद किया है। हिस्सा आने पर पता चलेगा भाटी ने कितना ज्यादा दे दिया।'

बालकृष्ण ने शाम के उमसभरे अँधेरे में जब जीवनराम हैडक्लर्क के दरवाजे की बिजली-घंटी बजाई, उस वक्त उसके कोट की जेब में आठ हजार की नोटों की गड्डी थी।

हैडक्लर्क ने दरवाजे से झाँका और अन्दर से जवाब दिया 'आ रहा हूँ।' बालकृष्ण को उठी हुई नाक का गोल, गावदू, भद्दा हैडक्लर्क चूहे की तरह बदसूरत और घिनौना लगा। उसने अपने चेहरे के भावों पर काबू किया। बैठक का दरवाजा खुला, और उसके अन्दर दाखिल होते ही बन्द हो गया। छत से लटका पंखा चलने लगा। बल्ब की धुँधली रोशनी पहले से कमरे में फैल रही थी।

'आज दफ्तर नहीं आए?' जीवनराम ने उस को परखते हुए पूछा।

"हाँ काम था। यह रुपये!" इतना कहते हुए उसने कोट के अन्दर की जेब में से गड्डी निकाल-निकाल कर मेज पर रखनी शुरू कर दीं। हैडक्लर्क की आँखें चमक उठीं। लेकिन उसने गम्भीरता से अपना बचाव लेते हुए कहा, 'यह मत समझना बालकृष्ण की सारी रकम मेरी है। इसमें छः हजार बॉस के हिस्से के हैं, दो हजार में मैं हूँ और हैड-आफिस का हैडक्लर्क।'

'जी, लेकिन काम तो हो जाएगा?' बालकृष्ण ने हैडक्लर्क के चेहरे को अब देखा।

हैडक्लर्क के चेहरे पर काइयाँ-हँसी फैली और वह विश्वास दिलाता हुआ बोला— 'रिश्वत लेने के बाद आदमी को ईमानदार होना पड़ता है।'

'मैं चलूं!' बालकृष्ण घुटन महसूस कर रहा था।

'परसों तुम्हारे आर्डर हो जाएँगे। हैडक्लर्क ने गड्डी पर हाथ रखते हुए कहा। फिर उठकर उसने नोटों को अलमारी में रख दिया और बैठक का दरवाजा खोल दिया। बालकृष्ण बाहर निकल आया और घर के रास्ते हो लिया। उसे कमरे के उस बदसूरत चूहे की तरह कई चूहे एक साथ अपना थूथना हिलाते और आँख चमकाते दीखे। वह सड़क पर चलता रहा।

प्रमोशन ऑर्डर का इन्तजार करते-करते तीन बज गए। बालकृष्ण किसी कागज को भी नहीं निबटा सका। हैडक्लर्क लंच के बाद छुट्टी लेकर घर चला गया था जिसने उसे धधके में डाल दिया था। चार बजे के करीब उसने देखा, भाटी को उसके दोस्त इन्सपैक्टर होने की बधाई दे रहे हैं।

बालकृष्ण के हाथ से जैसे हीरामन तोता उड़ गया। उसका सारा जिस्म सन्नाटे में हो गया। उसके चेहरे की चमक पर हवाइयाँ आ गईं। उसे लगा, उसे अपराधी करार दे कर लम्बी सजा सुना दी गई है। वह सुन्नसा हो गया पर फिर भी उसे लगा उसकी पैंट पर कई चूहे एक साथ चढ़ रहे हैं, जिनके पंजे उसकी खाल में चुभ रहे हैं।

'बालकृष्ण, ऐसे कैसे बैठे हो। चलो, भाटी कैण्टीन में प्रमोशन की पार्टी दे रहा है।' चोपड़ा ने आकर कहा।

'चलो! मैं जरा वाइफ के सोच में पड़ गया था, उसकी तबीयत ठीक नहीं है।' वह झूठ बोल गया। चोपड़ा के साथ-साथ वह भी कैण्टीन चला गया।

कैण्टीन से छह बजे फुर्सत मिली। अकेले होते ही वह फिर अपने में फँस गया। सविता को क्या जवाब देगा?

उसने साइकिल हैडक्लर्क के घर की तरफ़ मोड़ दी। उसे गुस्सा भी नहीं आ रहा था। एक साथ जैसे उसकी सारी सोचने की शक्तियों को लकवा मार गया था। उसने हैडक्लर्क के दरवाजे की बिजली-घंटी फिर बजाई।

छज्जे से एक बच्ची ने झाँका—'कहिये?'

"बाबूजी हैं?" उसने पूछा।

"जी हैं, वह अन्दर गई, और फिर छज्जे पर आकर बोली—'आ रहे हैं।'

बैठक का दरवाजा खुला। उसके दाखिल होते ही फिर बन्द हो गया।

ट्यूब-लाइट की दूधिया रोशनी कमरे में फैली थी, और छत का पंखा तेजी से चल रहा था।

काफी इंतजार कराने के बाद हैडक्लर्क ने हाथों में नोटों की गड्डी लिये हुए प्रवेश किया। उसने बैठते-बैठते कहा—'बालकृष्ण, मुझ से पूछने की जरूरत नहीं है कि यह सब कैसे और क्यों हुआ। यह तुम्हारे रुपये हैं। जीवनराम ने नोटों को मेज पर रख दिया।'

बालकृष्ण ने रुपयों को कोट में रख लिया। दोनों चुप रहे। फिर वह बोला, 'बता तो दीजिये बाबूजी, मैं किसी से नहीं कहूँगा।'

जीवनराम ने गम्भीर होते हुए कहा—'ठीक से नहीं कह सकता। बॉस ने भाटी का प्रमोशन खुद किया है। हिस्सा आने पर पता चलेगा भाटी ने कितना ज्यादा दे दिया।'

समझौता

●

रमेश कुमार 'शील'

पत्नी, बच्चों के घर से चले जाने के बाद उसने कुर्सी से उठकर सटाक से दरवाजा बन्द कर दिया। फिर उसने सारी खिड़कियाँ बन्द कीं, बाद में न जाने क्या सोचकर बीचवाली बन्द खिड़की के दोनों पलड़ों को वापिस खोल दिया। शाम की धुँधली-सिलेटी रोशनी, चारोओर फैली हुई थी और खिड़की से दूरदूर तक बने मकानों की खुली फैली छतें, नजर आ रही थी। सामनेवाली छत पर अड़ोस-पड़ोस की कुछ पंजाबी किशोर लड़कियाँ मिलकर बिजलोशानी खेल रही थी। उनके रंगबिरंगे, चटकीले दुपट्टे हवा में उड़ रहे थे"""शाम के, इस ठण्ड माहौल मे उसे वे लड़कियाँ इस वक्त, बेहद रूमानी लग रही थीं। थोड़ी देर तक वह उनकी तरफ देखता रहा, फिर उधर से निगाह हटाकर कमरे में चारोतरफ देखने लगा। हमेशा की ही तरह, इस वक्त भी, सारा कमरा बड़ा अस्त-व्यस्त और बेतरतीब-सा पड़ा था। कपड़ों की अलमारी मे किताबें और किताबों के बीच मे, बच्चों के कपड़े ठुँसे हुए थे। नीचे फर्श और चारपाई पर पत्नी, बच्चों के, आखिरी उतरे हुए कपड़े धोती, ब्लाउज, फिराक, शर्ट और नेकर, इधरउधर बिखरे पड़े थे। खानेवाली अलमारी मे मसाले, दालों के मैले, पुराने, चिकने डिब्बे एक दूसरे के ऊपर चुने हुए रखे थे। सारे कमरे की अस्तव्यस्तता से उसे अजीब-सी बैचेनी होने लगी जैसे"""उसका हाजमा खराब हो, फिर उधर से ध्यान हटाकर वह सामने अलमारी के ऊपर वाले खाने में रखी सरस्वतीजी की आशीर्वादक मुद्रा में, अर्न्तमुखी दृष्टि से सामने देखती हुई तस्वीर को गौर से देखने लगा। उसे शक हुआ था—जैसे पिछले कुछ घण्टों में सरस्वतीजी की मुखाकृति मे कुछ परिवर्तन हो गया है। मसलन उनके सौम्य शान्त मुख पर, अप्रसन्नता, क्रोध, व्यंग, उपहास के भाव उभर आये हैं। लेकिन काफी सूक्ष्म दृष्टि से चेहरे को देखने पर भी उसे वहाँ ऐसा कोई भाव उभरा नजर नही आया। दरअसल उसे

अभी तक भी यह यकीन नहीं हो रहा था कि आया पत्नी-वच्चों को जाने देने का उसका सहमतिपूर्ण, निर्णय सही है ? कहीं ऐसा तो नहीं हुआ कि जल्दवाजी और भावावेश में वह इतनी वड़ी वात का कोई, गलत निर्णय ले वैठा हो, जिसके लिये हजारों वार की तरह, इस वार भी, पीछे पछताना पड़े।

उसने सोचा, जव आदमी का विवेक काम नहीं करता तव वह अपने फैसलों के लिये हमेशा भगवान् जैसी शक्ति पर निर्भर हो जाता है। उसे ध्यान आया, पहले वह अक्सर वहुत से कामों के फैसलों के लिये 'टॉस' किया करता था और उसी के अनुसार वह निर्णय ले लिया करता था। इस समय भी वह अनुभव कर रहा था, जैसे किसी वात को साफ-साफ सोचने, समझने की शक्ति उसमें नहीं रह गई और इस समय, वह अपने प्रत्येक कार्य और विचार के लिये किसी, निष्पक्ष संकेत और निर्देशन पर आश्रित है। कई घण्टों के मुतवातिर मानसिक तनाव से उसके सिर में, इस समय, वहुत जोर से दर्द हो रहा था और खोपड़ी में धुँआँ-सा भरा हुआ था। उसने सोचा, इससे पहले किसी भी मामले को ले कर वह इतना चिन्तित और हतप्रभ नहीं हुआ। वह कमरे में उसी खोजपूर्ण निगाह से जैसे (कोई खोई चीज तलाश कर रहा हो) चारोंओर की चीजें देख रहा था। दरअसल वह वहीं कोई ऐसी चीज़ तलाश कर रहा था, जिससे थोड़ी देर को वह अपना मानसिक रागात्मक सम्बन्ध स्थापित कर सके, जिसके लगाव से वह थोड़ी देर पहले हुई घटनाओं के हादसे को सहने के काबिल बन सके। लेकिन सारे कमरे में उसे ऐसी कोई चीज़ नहीं दिखाई दे रही थी। उसने विना इरादे के ही उठ कर पिछली तारीखों वाला धर्मयुग उठा लिया और उसके तस्वीरों और विज्ञापन वाले पृष्ठ उलट-उलट कर देखने लगा। लेकिन एक-दो सैकिण्ड बाद ही उसका ध्यान उधर से उचट कर फिर पिछली बातों में गुँथ गया। आखिरी वक्त कपड़े पहनते हुए, छोटे छोटे वच्चे, कितने खुश हो रहे थे, जैसे वह किसी के घर न्योंते में जा रहे हों ? हाँ, अलबत्ता दो बड़ी लड़कियाँ जरूर थोड़ी-सी उदास थीं, सो उन दोनों की गहरी चुप्पी अपनी ओर से उपेक्षा और पत्नी के विचारों का चुपचाप अनुमोदन अनुभव करके उसे उन दोनों से वेहद चिढ़ और घृणा हो रही थी। क्या ये उसके खून से पैदा लड़कियाँ हैं ? ये वही हैं, जिनके लिये वह पिछले चौदह वर्षों से हरेक वाजिब-गैरवाजिव शर्तों पर साथ रहने और परिवार को कायम रखने के समझौते करता रहा है ? उस वक्त उसने उनकी ओर से तीव्र घृणा से मुँह फेर कर पत्नी की ओर देखना शुरू कर दिया था, जो रोते-रोते वच्चों को कपड़े पहना रही थी, लेकिन किसी भी तरह अपनी गलती मानने-समझने को तैयार नहीं

थी। उस वक्त उसने सोचा था क्या सारी गलती उसी की है ? पत्नी की कुछ नहीं है ? इस घर के बिगड़ने में क्या उसका ही दुर्भाग्य है, ... पत्नी बिल्कुल तटस्थ है। वही कर्ता, वही भोक्ता है, पत्नी केवल उसके रचित परिणामों का निरीहता से शिकार हुई है जिसके लिए उसे प्रायश्चित करना चाहिये, झुकना चाहिये उससे माँफी माँगना चाहिये, अपनी जिन्दगी और रवैये में सुधार करना चाहिये ?

उसने एक-एक करके सारी घटनाओं के दृश्यों को फिर सिलसिलेवार मस्तिष्क में दोहराया। उसे क्या पता था, जरा-सी बात, बातों ही बातों में, इस हद तक बढ़ जायेगी कि एक बसे-बसाये घर के उजड़ने की नौबत आजायेगी। उसे याद आया, काफी देर तक, सारी बात, वह बड़े सन्तुलित, मस्तिष्क से यह सोचकर सहता भोगता रहा था कि पत्नी अपने स्नायु-दौर्बल्य और भावुकता के अतिरेक के कारण, चेतनाहीन होकर, बिना समझे बूझे, कहेसुने जा रही है, और वह नीचे फर्श पर लेटा, मन ही मन, उस क्षण के आने की प्रतीक्षा कर रहा था, जहाँ पहुँच कर वह सारी बातें, एक, ठहाके में खतम करदे, लेकिन यकायक जब उसने उसके सम्मान पर सबसे बड़ा आघात किया, "अगर तुम अपने असली बाप की औलाद हो तो ......।" और उसने उसका, वह वाक्य पूरा नहीं होने दिया,। संज्ञाहीन होकर वह उस पर झपट पड़ा .....। उसके हाथ उठाते ही, उसे याद आया, सारे बच्चे, किसी भावी आशंका से एक साथ भयभीत होकर चीखने लगे थे और पत्नी उसके हाथ से गरदन छुड़ा कर भयभीत होकर पड़ौसी के घर मे घुस गई थी। वह वहाँ...जोर-जोर से चीख रही थी, "यह आदमी मुझे मार डालना चाहता है, मेरा गला घोंट रहा है। यह आदमी ...।" और देखते देखते सड़क चलते सैंकड़ों आदमी, सड़क पर तमाशा देखने को इकट्ठे होगये थे। वह दरवाजे पर खड़ी, सारे आदमियों से कह रही थी "कोई पुलिस को बुला लाओ यह आदमी एक लड़की के लिये मुझे जान से मार रहा है।" वह एक ओर को हतप्रभ-संज्ञाहीन-सा खड़ा था। उसका सिर तेजी से घूम रहा था, वह सोच नहीं पा रहा था कि वह पत्नी की इस स्थिति पर कैसे काबू करे ? उस वक्त उसने सोचा था, अब वह इस औरत के साथ किसी भी तरह का समझौता नहीं कर सकता... वह एक भी दिन, इस घर में इसके साथ नहीं रहेगा...? उसे ताज्जुब हो रहा था कि किस तरह वह, एक ऐसी पागल, और अस्वस्थ औरत के साथ चौदह साल से समझौते करके रह रहा है ? कैसे उसने उसके गर्भ से पाँच बच्चे पैदा कर दिये ? उसने सोचा, उसके या पत्नी-बच्चों के अलग हो जाने के सिवा इन सारी घटनाओं की और क्या परिणति

हो सकती थी ? उसे महसूस हुआ, जैसे वह अपना मानसिक सन्तुलन नहीं रख पा रहा, उसके स्नायु बेहद कमजोर हो गये हैं और भीतर से तेजी से उमड़ती रुलाई को वह किसी भी तरह रोक नहीं पा रहा। इतनी देर में कि वह अपनी इस अनुभूति को सन्तुलित करके कोई वैचारिक औचित्य दे, वह बीच में से फट गये नल के पाइप की तरह फूट पड़ा। दो चार हिचकियों के बाद ही उसकी रुलाई रुक गई, और उसने गाल पर बहते और आँखों में भरे आँसू हथेली से रगड़ कर पोंछ दिये। इस रुलाई के बाद, वह कुछ हल्का-सा हो गया और अब सारी बातों को बड़े साफसाफ तरीके से सोच-समझ पा रहा था। वह पीछे खिड़की में से बाहर की ओर देखने लगा, शाम घनी हो रही थी, और अब छतों पर दिखाई देने वाले चेहरे धुँधले धब्बे-से नजर आ रहे थे। उसने सोचा, क्या उसके जीवन का वह दिन और क्षण निकट आ चुका है, जब वह भी उपन्यास, कहानी के नायकों की तरह समाज-परिवार से कट कर अलग-अकेला रहने को अभिशप्त हो जायेगा। उसका हृदय एक अजीब-सी आत्म-करुणा से भर आया। उसे पिछले सालों में सारिका में प्रकाशित, मोहन राकेश के उपन्यास "कई अकेले" की याद हो आई। उसके पात्र 'डाक्टर' और उसमें कोई खास फर्क नहीं है....। उसने महसूस किया शायद हर एक, स्वाभिमानी आदमी, इसी तरह—आखिर में हरेक शर्तों से समझौते करता करता टूट जाता है, या पागल और उन्मादी हो जाता है। उसने सोचा, अपने अकेलेपन के अनन्त गड्ढों को भरने के लिये, पिछले कुछ सालों में उसने क्या क्या नहीं किया ? कितनी वाजिब और गैर-वाजिब शर्तों पर उसने खुद को परिवार और मित्रों से बाँधे रखा है। अब पत्नी और बच्चों से अलग हो जाने की प्रक्रिया उसकी उसी मनःस्थिति का एक और परिणाम है।

सहसा उसे लगा जैसे उसका चेहरा अतिशय रूप से गम्भीर और उदास हो गया है, पहले से ज्यादा सख्त, और भावहीन....। उसने पीछे खिड़की में रखा शीशा उठा लिया। शीशे के कांच पर धूल की हल्की-सी पर्त और तेल की चिकनाई के धब्बे लग रहे थे। पास से तौलिया उठाकर उसने उसके कांच को रगड़ कर साफ कर दिया। शीशे में उसका दुबला, दाढ़ी भरा चेहरा और रूखे बाल प्रतिछायित हो रहे थे। अपनी शकल देख कर उसने सोचा, उसका चेहरा अभी भी लड़कपन की सीमा से बाहर नहीं आया। यही कारण है कि वह लड़कियों की ओर और लड़कियां उसकी ओर आकर्षित हो जाती है। अपनी इस व्यक्तित्वगत आकर्षण-शक्ति के विचार से उसे बड़ी ताज़गी और शक्ति-सी अनुभव हुई। वह कुर्सी से उठ कर कमरे के बाहर

सोचने लगा। उसने सोचा क्या ऊषा से वह अपने उसी मानसिक स्तर से प्रेम कर पाया था जिसका वह हामी रहा है ? दरअसल वह प्रेम को शरीर से शरीर तक की एक यात्रा न समझ कर उसे दिल, दिमाग और आत्मा की बहुत बड़ी प्रेरणीय शक्ति और आनन्दानुभूति मानता रहा है। प्रेम के बारे में उसकी मान्यता कुछकुछ कवियों की तरह अलौकिक, असतही, काल्पनिक और आध्यात्मिक स्तर की भावानुभूति की तरह रही है, लेकिन जितनी ज्यादा से ज्यादा नाकामयाबी हो सकती है उसे अपने इस प्रयत्न और इच्छा-पूर्ति में मिली है। उसने सोचा इसकी जिन्दगी में जितनी भी लड़कियाँ अपना प्रभाव लेकर आई हैं, उन सबके प्रति उसकी यही अपेक्षा रही है लेकिन उसे कोई भी ऐसा उदाहरण याद नहीं है जो प्रेम को व्यावहारिक रूप से शरीर से मन तक ले जाने के लिये तैयार हो बल्कि उसे ऐसा लगता रहा है, जैसे मन को लोगों ने शरीर का ही एक पर्याय और इसकी इच्छापूर्ति का माध्यम मान रखा है। ऊषा से भी उसने शरीर के बाद उसी मानसिक स्तर के प्रेम की अपेक्षा की थी लेकिन हजार कोशिशों के बाद भी वह उसे यह बात किसी भी तरह समझा ही नहीं पाया। थोड़े दिन की इस असफल कोशिश के बाद वह उस रूहानी दुनियाँ से निकल कर बाहर आ गया और उसके सतही स्तर से समझौता करके वहीं उतर आया जहाँ और सामान्य-साधारण व्यक्ति प्रेम को जीते-भोगते हैं। उसने सोचा था, "शायद उसकी भावनानुसार प्रेम इस दुनियाँ में जीवित आदमी नहीं करते ?" वह फिर उसके बाद बराबर इस टोह में रहने लगा कि वह किस तरह जल्दी से जल्दी उसे शारीरिक रूप से हस्तगत करे। पत्नी को जैसे ही उसकी इस भावना की गंध मिली उसने चीखना-चिल्लाना, हाय-तोबा मचाना शुरू कर दिया। रोज वह कोई न कोई बात ऊषा और उसके पक्ष को लेकर खड़ी कर लेती और घर में कलह मचा देती। मसलन उसने छोटीछोटी और बिल्कुल महत्वहीन बातों को भी अपने व्यक्तित्व और उसकी प्रतिष्ठा के साथ सम्बद्ध कर दिया, "तुमने उस बात में उसका पक्ष क्यों लिया ? मेरी बात क्यों काटी ? उसकी तरफ क्यों देखा ? उससे ही यह बात क्यों पूछी ? वह तुम्हारे पास क्यों आई ? वह एक ही जगह पर हर रोज पढ़ने के लिये क्यों बैठती है ? वह जानबूझ कर दुपट्टा खिसकाती है, जाँघें दिखाती है, घुटने सिकोड़ कर बैठती है ? वह तुम्हारे सिवा और किसी से क्यों बातें नहीं करती ? मुझसे कुछ क्यों नहीं पूछती ? और उसकी इन सारी बकवासी बातों के बीच में वह इस तरह उलझ जाता था जैसे बहुत सारी कँटीली झाड़ियों के बीच में फँसा हो। आखिर वह क्या करे, कैसे पत्नी को समझाये कि इन बातों का उसके

जिसे कोई महत्व नहीं है। उसने माना दूसरे-तीसरे दौर के बाद और रात-दिन पत्नी की इन कलहपूर्ण बातों से उकता कर ही धीरे-धीरे सारी वासनात्मक आसक्ति, खीज होकर समाप्त हो गई थी और अब वह सहज ऊषा, पत्नी सबसे निराश चाहता था इस प्रसंग को यहीं समाप्त कर देना चाहता था। इसके सारे प्रतिरोधों और स्वांगित विचारों के बाद उसमें अब जरा भी उत्साह बाकी नहीं रह गया था, क्योंकि पत्नी ने इसे समझने की जरा भी कोशिश नहीं की। एक दिन जब ऊषा ने 'गोल्ड स्पाट' का कलैण्डर लाकर उसे दिया और उसने वह खास पसन्द न होने पर भी दीवार पर टांग दिया तो पत्नी अपना सन्तुलन खो बैठी।

"मैं जानती हूँ तुम उसके पीछे पागल हो रहे हो? तुम उस लड़की के लिए सारा घर बरबाद कर रहे हो? तुम कुत्ते से भी नीचे गिर चुके हो?" वह बारबार सोचता था, अगर पत्नी उसकी भावनाओं को ठीक-ठीक समझने के लिए तैयार नहीं है तो वह भी, उसे किसी प्रकार नहीं समझायेगा, चाहे घर उजड़े! चाहे, और कोई अप्रिय स्थिति पैदा हो! वह उसके सामने हरगिज-हरगिज नहीं झुकेगा? और उसकी जिद का हश्र यह हुआ कि, आज वह सबसे कटकर अकेला रह गया है। उसने सोचा, उसने कब-कब पत्नी, परिवार और मित्रों के साथ समझौते नहीं किये। सारी पारिवारिक व्यवस्था और अप्रियता को भी, वह इसी कारण सहता रहा है, कि वह अकेला नहीं रह सकता? मित्रों से बातें करते, व्यवहार में, वह कितना ख्याल रखता रहा है कि कहीं किसी चरित्र, नीति, विचार यहाँ तक कि शब्द से भी उसके मित्र उसे अतिरिक्त और अलग न समझें! वह उनकी हर वाजिब-गैरवाजिब अनैतिक बातों (यहाँ तक कि मूर्खतापूर्ण भी) का भी, इसलिए अनुमोदन करने लगता है, कि वे लोग उसके साथ किसी न किसी तरह जुड़े और सम्बन्धित रहे आयें। इन समझौतों को करने में वह खुद कितना टूटता-फूटता रहा है। अपनी मानसिक, नैतिक शक्तियाँ खो चुका है, यह कौन जानता है? बावजूद हर समझौते के बाद भी, उसे सुबह, दोपहर, शाम और रात, घर, बाजार, स्कूल सब में इस मानसिक अकेलेपन की यातना को भोगना पड़ा है। कभी-कभी अपनी इस अनवरत, यातना से उसे ऐसा लगता है, जैसे वह कोई हाड़-मांस ल जिन्दा आदमी न होकर खाली हड्डियों का कंकाल है जो कब्रिस्तान किसी पीपल की डाल से लटका, हवा से तेज झौंकों के साथ, हिल-डुल हा है!

ध्यान उचट कर पड़ौस में लगी आटा की पनचक्की

की आवाज की ओर चला गया जो शाम की खामोशी में घुन-घुन (जो खुदिया लगाने से निकलती थी) की आवाज के साथ बड़ी तीखी होकर काँप रही थी।

उसे ध्यान आया थोड़े दिन पहले उसने म्यूनिसिपैलिटी में इस चक्की की आवाज बंद कराने के लिए अर्जी दी थी। उसने सोचा न बन्द होने का मतलब है, उसने सेक्रेट्री को रुपये चटा दिये होंगे, या फिर हो सकता है, उसने सोचा, जानबूझ कर उसकी बात की उपेक्षा की गई हो। आजकल, जिससे किसका कोई मतलब पूरा नहीं होता (मतलब भी विशेष तौर पर औरत और पैसे का) उसकी चाहे कितनी ही वाजिब और नीतिपूर्ण बात हो, कोई अधिकारी या सामान्य आदमी पर तरजीह नहीं देता। उसने सोचा, वह रात-दिन अपने व्यक्तिगत जीवन में दूसरों के इस रुख और प्रवृत्ति को अनुभव करते हुए भी सिवा झुँझला कर चुप रहने और भीतर ही भीतर नैतिक दुःख भोगने के सिवा और कुछ नहीं कर पाता। उसने सोचा बड़े-बड़े अफसर लोग तो गैर बड़प्पन के दम्भ और अधिकार की गरमी से, भरे ही रहते हैं, लेकिन एक सामान्य व्यवहार का आदमी भी रिक्शे, ताँगावाला, बस-कण्डक्टर, टी स्टाल का बैरा, और पोस्ट ऑफिस, बुकिंग ऑफिस का बाबू सब उसी उपेक्षापूर्ण रीति-नीति से, दूसरों के साथ व्यवहार करते हैं, जबकि उनकी हैसियत और व्यक्तित्व, दो कौड़ी के भी नहीं होते।

सारी बातों से उचट कर, वह चक्की की आवाज का तीखापन भूलकर, फिर पत्नी-बच्चों के बारे में सोचने लगा, "आखिर वह सारे पाँच बच्चे को लेकर और खुद अपना असमर्थ शरीर (लकुवे के कारण, उसकी पत्नी का शरीर विद्रुप सा हो गया था) को लेकर वह कहाँ गई होगी?" उसने सोचा, "मथुरा के सिवा और कहाँ जायेगी?" फिर ध्यान आया लेकिन जायेगी कैसे, उसके पास किराये को पूरे पैसे तक तो हैं नहीं?…और फिर किसी से ले दे कर वह चली भी गई तो वह वहाँ इतनी असहाय और निर्भर होकर रहेगी कैसे, कितने दिन…?" उसकी भाभी का स्वभाव वैसे ही ठीक नहीं है, वह उससे एक दो दिन में ही उकताने लगती है और भाई वह भी बड़ा व्यावहारिक किस्म का आदमी है। क्या वे लोग यह बात स्वीकार कर सकेंगे कि अनिश्चित समय तक उनकी बहन और सन्द पाँच बच्चों को लेकर रोटी, पानी, कपड़े के लिये उन पर निर्भर हुई पड़ी रहे? उसने सोचा "……उसकी पत्नी भी तो यह सारी बातें जानती समझती है, वरना जैसे कि सामान्य औरतों को अपने मैके का घमण्ड होता है, उसको कभी

नहीं रहा । तो फिर वह कहाँ जायेगी.......?" उसने सोचा, "वह आत्मघात नहीं कर सकती....इतने निरर्थक शरीर के बावजूद भी जीवन के प्रति, उसमें अगाध और दृढ़ आस्था है, उससे कभी-कभी वह खुद भी बड़ा स्तम्भित रह जाता है । कभी-कभी वह सोचता है, जीवन को शरीर से अलग अपनी पूरी आत्मिक शक्तियों के साथ जीना अगर कहा जा सकता है, तो उसकी पत्नी ही जानती है । और यहीं आकर वह उसके समक्ष कमजोर और पराजित हो जाता है । वह हरेक मूल्य, उपलब्धि, शरीर की शक्ति और अशक्ति से सम्बन्धित करके सोचता है जबकि उसकी पत्नी सीधे आत्मिक माध्यम से उसे ग्रहण करती है । उसे पत्नी-बच्चों के अनिश्चय को लेकर बड़ी बेचैनी-सी होने लगी । पास के आले में रखे सिगरेट के पैकेट से आखिरी चारमीनार सिगरेट निकालकर उसने सुलगा ली और पैकेट नीचे फैंक दिया । पैकेट फैंकते हुए उसने सोचा, उस जैसी पारिवारिक और व्यक्तिगत हालत और किस आदमी की होगी कि सारे घर में सिगरेट का पैकेट खरीदने को भी उसके पास तीस पैसे की पूँजी नहीं है । उसे ध्यान आया, कुछ दिन पहले वह एक बीड़ी का बण्डल लाया था, जो यूँ ही अध पीया रखा है । यह सोचकर कि जरूरत के वक्त वह उससे काम चला लेगा, उसे बड़ी तसल्ली-सी हुई ।

सारा कमरा अँधेरे से पूरी तरह भर गया था । उसने उठकर बिजली जला दी । बिजली का पीला-उदास प्रकाश चारों ओर फैल गया, वह कमरे की सारी चीजों, व्यवस्था को और एक बार भरी-भरी सी निगाहों से देखने लगा ।

उसका दिमाग हल्का हो चुका था और खोपड़ी में भरी भाप और धुँआ धीरे-धीरे निकलकर उसे हल्का बना चुके थे । पत्नी की शारीरिक और पारिवारिक परिस्थितियों में उसकी स्थिति को लेकर उसे इस समय बड़ी करुणा उत्पन्न हो रही थी । वह पत्नी को वापस घर में साथ पाने के लिए बुरी तरह बेकल होने लगा था ।

वह सारी जिन्दगी अकेला नहीं रह सकता.......? उसने सोचा—उसे फिर जैसे कि वह अभी तक, पिछले चौदह सालों से, हजारों बार उसके साथ रहने के समझौते करता रहा है, फिर करना पड़ेगा...। उसे ध्यान आया बच्चे किस तरह आखिरी वक्त उसके पीछे-पीछे बँधे जा रहे थे....जैसे इंजन के पीछे, माल से लदे मालगाड़ी के डिब्बे जुड़े हों ।

उसे बेहद तेज प्यास लग रही थी । सिगरेट हाथ में लिए-लिए ही

मटके तक उठकर आया लेकिन मटका खाली पड़ा था, पास की बाल्टी में बरतन धोने का खारा पानी रखा था, वह परानाले से जूंठा गिलास उठाकर उस ही गट-गट पी गया। पानी पीने के बाद उसे पेशाब की हाजत हुई और वह वहीं नाली पर पेशाब करने बैठ गया। उसके बाद उठते-उठते उसने सोचा, अगर वह अभी स्टेशन चल दे तो वह पत्नी-बच्चों को पकड़ सकता है। अभी घड़ी में पौने आठ बजे थे और मथुरा जाने वाली लोकल साढ़े आठ बजे जाती थी, बिना इरादा किये ही, उसने कपड़े बदलने शुरू कर दिये और पाँच मिनट के बाद ही वह ताला लगा कर सट-पट स्टेशन के लिए सीढ़ियाँ उतर गया।

●

अनुगामिनी

शम्भूसिंह

कार्तिक मास था। कपास के खेत श्वेत हो रहे थे। मक्का खलिहानों में पड़ी थी। ज्वार पर चिड़ियां सदलबल आक्रमण कर रही थीं। घास काट कर एकत्रित करने का भी यह समय था। जौ और गेहूँ की बुवाई में देर करना उचित नहीं था, किन्तु दो दिन पूर्व की हल्की वर्षा ने किसानों का ध्यान मूंगफली खोदने की ओर आकर्षित कर लिया था। मिट्टी गीली हो जाने से खुदाई सरलता से हो सकती थी।

वृद्धावस्था के कारण पिता अशक्त हो चले थे, माता अस्वस्थ थी, फसल समेटने और नई फसल बोने की सारी जिम्मेदारी धापू पर ही थी इसलिये वह प्रातःकाल जल्दी ही रोटी-पानी लेकर जंगल में पहुँच गई। वह सबसे पहले मूँगफली खोद लेना चाहती थी। ग्यारह बजने का समय हो गया था उसके हाथ तेजी से चल रहे थे। पसीना होता था पर हवा के झोंकों से सूखता भी जाता था। वह गुनगनाती जा रही थी और कस्सी (खोदने का औजार) चलाती जा रही थी कि इतने में थोड़ी दूर से एक चिर परिचित आवाज़ आई—

'तुम्हें तुरन्त घर बुलाया है।"

"क्यों ?"

"मुझे पता नहीं।" दाऊ का उत्तर था। वह उसकी हमउमर सहेली थी, और अभीअभी तेजी से चलकर गाँव में-से उसे ही बुलाने आई थी।

यह बुलावा उसे कुछ अटपटा लगा पर वह कुछ निर्णय नहीं कर पा रही थी जाये या काम करे। काम बहुत करना था। माँ तीन चार दिन से अस्वस्थ थी दाऊ ने फिर कहा "जल्दी चल।" धापू ने पूछा "क्या बात है ?" फिर वही उत्तर "मुझे पता नहीं।"

अपना काम छोड़ धापू ने घर की ओर पाँव बढ़ाये। घर के समीप

आकर उसने देखा बाहर उसके पिता शोक-मग्न बैठे हैं। गाँव के पाँच-सात अन्य व्यक्ति उनको सान्त्वना दे रहे हैं। धापू की कुछ समझ मे नही आया। पड़ौस का कान्हा कहता था कि आज कल लडाई चल चल रही है। कहीं उसका भाई लड़ाई में ··· ·

बाहर से ही उसने भी चिल्ला कर रोना शुरू कर दिया। माँ उसे देख कर और जोर से ढाड़ें मार कर रोने लगी। घर में प्रवेश करते ही पड़ौस की महिलाओ ने उसे कोने मे बिठाया, उसकी चूड़ियाँ तोडी गई और उसे आज की शोक-सभा की नायिका बना दिया गया।

नायक कोड़ाराम की धापू छठी पुत्री थी। दूसरी बडी लड़ाई के अन्त में जब वे फौज से रिटायर होकर स्थाई रूप से घर आ गये, उसके बाद उसका जन्म हुआ था। कोड़ाराम का सारा वात्सल्य उसी पर केन्द्रित था। जब उसकी आयु डेढ़ वर्ष की थी उसकी तीन बहनो की शादी थी। नायक ने उनके साथ ही इसके भी हाथ पीले कर दिये थे। *

समय बीतता गया, भाई फौज में चला गया। बहिनों का गौना हुआ उन्होने सुसराल की राह ली। माँ का स्वास्थ्य ठीक नही रहता था। इसलिए धापू के सुसराल से गौना कहलावा आने पर भी नायक मना ही करते रहे। उन्होने धापू के श्वसुर से एक दो वर्ष की रियायत माँगली।

देश पर शत्रु के आक्रमण से सेना का भरती-अभियान तेज होगया। धापू का पति हजारी भी सेना में भरती हो गया।

सिपाही पिता का पुत्र देश की रक्षा के लिए ही उत्पन्न हुआ था। वह पूरा छह फुट ऊँचा जवान था। उसका अंग-प्रत्यंग फौलाद का बना हुआ था। चलने पर धरती काँपती थी। उसके हवलदार पिता ने फौजी जीवन की अनेक बातें उसे घर पर ही सिखा दी थी। परिणाम यह हुआ कि जिन बातों को सीखने मे अन्य रंगरूट तीन वर्ष पूरे कर देते हैं, वे सब उसने एक ही वर्ष मे सीख ली।

दूसरे ही वर्ष वह उत्तर के मोर्चे पर भेज दिया गया। पाँच-सात बार की

---

* सारे देश मे शारदा एक्ट के अन्तर्गत १८ वर्ष से कम आयु के लड़के एवं १४ वर्ष से कम आयु की लडकी का विवाह वर्जित है, फिर भी राजस्थान में प्रति वर्ष सैकडो की सख्या मे ऐसे विवाह होते हैं जिनमे कन्या की उम्र एक माह से पाँच वर्ष तक होती है। किन्तु ऐसी कन्याओं का गौना (द्विरागमन) जब ही होता है जब कि वे १४-१५ वर्ष की हो जाय।

झड़पों में शत्रु के विरुद्ध उसने जिस वीरता का प्रदर्शन कर उनके प्रयत्नों को विफल किया उससे उसके अधिकारी बहुत प्रभावित हुए। उसकी पदवृद्धि की गई।

चार दिन से भयंकर युद्ध चल रहा था। सैनिक खाइयों में डटे हुए थे। पीछे हटने का कोई नाम नहीं लेता था, दिन भर छुट-पुट झड़पें होती रही थीं। गुप्तचरों ने शत्रु की हलचल की जो सूचनायें दी थीं उनसे अनुमान था कि शायद रात्रि में भयंकर हमला हो। इसकी सूचना अफसरों को दे दी गई ताकि समय रहते गोला-बारूद आदि सामान की व्यवस्था हो जाय।

सायंकाल का समय था। हजारी ने अपने सभी सहयोगियों को भोजनादि से जल्दी निवृत्त हो भावी हमले का सामना करने के लिये तैयार रहने हेतु मुक्त कर दिया था। वह आसपास घूम कर बढ़िया मोर्चे की स्थिति देख रहा था। एक स्थान पर चट्टानों के बीच चार फुट गहरा और कोई तीन फुट व्यास का गड्ढा था। हजारी ने वह स्थान अपने लिये पसंद किया।

अँधेरा हो चला था। आसमान में बिजली कौंधी, उस क्षणिक प्रकाश में हजारी ने जो कुछ देखा उस पर सहसा विश्वास न कर सका। एक क्षण में उसके पाँवों तले से भूमि खिसक गई। वह पहाड़ के ऊपरी हिस्से पर था, नीचे से चींटियों के समान अनगिनत संख्या में शत्रु सेना चुपचाप आगे बढ़ती आ रही थी। एक क्षण की देरी का अर्थ था अपने कई साथियों की जीवन-लीला की समाप्ति, भयंकर विनाश !

हजारी के हाथ में इस समय एक राइफल थी। इतनी बड़ी सेना पर इससे नियन्त्रण पाना असम्भव था। शत्रु-सैनिक सौ गज दूर थे और वह हथियार डिपो से तीस गज दूर था। विद्युत गति से वह गया और एक ऑटोमेटिक मशीनगन उठा लाया और उसने उससे आग उगलना प्रारम्भ कर दिया, फिर दौड़ा और दूसरी मशीनगन लाकर जमाई। तीसरी बार वह कारतूसों का खोखा उठा लाया। इतने समय में उसके सभी साथी सचेत हो गये शत्रु की बाढ़ रुक गई और जम कर युद्ध होने लगा। उसके साथी उसे सुरक्षित मोर्चा लेने और सम्भल कर लड़ने के लिये सावधान कर रहे थे किन्तु हजारी प्राणों की परवाह किये बिना लड़ने के लिये मतवाला हो रहा था। मशीनगन में कारतूस डालते समय एक गोली उसकी कनपटी में लगी और वह वहीं लुढ़क गया यद्यपि मशीनगन चलती रही, शत्रु विफल रहा।

जीवन की परवाह न कर असाधारण सूझ-बूझ एवं बहादुरी दिखाने के कारण हजारी को मरणोपरान्त राष्ट्रपति पदक दिये जाने की घोषणा हुई।

यद्यपि होश सम्भालने के बाद धापू ने एक बार भी हजारी को नहीं देखा, तथापि इस घटना ने उसे थोड़ा गम्भीर बना दिया। घर का सारा काम उसे ही करना पड़ता था। सुबह से शाम तक किया जाने वाला यह परिश्रम उसके लिये वरदान सिद्ध हुआ उसका शरीर शनैः शनैः अधिक गठित होता जा रहा था और वह अधिकाधिक शक्ति संचय करती जा रही थी।

जब धापू का भाई लादू और उनका पड़ोसी छुट्टी पर आये तो कई दिन तक गाँव के लोग उन्हें घेरे रहते थे। लादू युद्ध क्षेत्र की रोमांचक बातें सुनाया करता था, सब ध्यान से सुना करते थे। एक दिन इसी प्रकार महिला सैनिकों की वीरता का प्रसंग आ गया। लादू ने महिला सैनिकों की बड़ी प्रशंसा की। थोड़ी ही दूर गोबर थापती हुई धापू ने उस दिन सब बातें ध्यान से सुनीं। जब सब व्यक्ति चले गये तो धापू ने भाई से पूछा, "वहाँ महिलायें कहाँ से आई ?" तो इस पर लादू ने उत्तर दिया कि महिलाओं की भी सेना होती है।

मीणों के इस छोटे से गाँव गाडोली में, सेना में पचास से अधिक जवान और अफसर थे। पिछले दो विश्व-युद्धों में यहाँ के कई सैनिकों ने प्रशंसा प्राप्त की थी। कई वृद्ध सैनिक पैंशन पाते थे। कई सैनिकों के पुत्रों को छात्र-वृत्तियाँ मिलती थीं। पैंशन प्राप्त सैनिक युद्ध के वर्णन सुना-सुना कर भावी पीढ़ी को तैयार करते थे। यहाँ की सभी मातायें वीर प्रसविनी थी। सभी वधुएं वीरों की अर्द्धांगिनियाँ थी। सभी पुत्रियाँ वीर वधुएं बनने की आकांक्षायें संजोया करती थी। यहाँ के कण-कण में वीरता समाई हुई थी किन्तु फिर भी यहाँ की किसी रमणी को अभी वीराङ्गना बनने का सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ था।

आयु वृद्धि के साथ-साथ धापू का शरीर एवं सौंदर्य भी विकसित होता जा रहा था। उसके पति का बलिदान हुए पूरे चार वर्ष हो गये थे। घर वाले यह जानकर कि उसका शोक भूल गया होगा, जाति-परम्परा के अनुसार उसके नाते (पुनर्विवाह) का विचार करने लगे किन्तु जब जब भी यह प्रसंग उसके सामने आता था वह सदा उदासीनता ही प्रकट करती थी। इसी प्रसङ्ग को लेकर एक-आध बार उसकी भाभी से खटपट हो गई थी, माँ ने भी इसी बात को लेकर एक बार उसे डाँटा था। लोगों की नजरें उसकी ओर पड़ने लगी थीं।

देव उठनी एकादशी (कार्तिक शुक्ला एकादशी) का दिन था। पचास घरों की बस्ती गाडोली में कोई पन्द्रह विवाह थे। दस बरातें आई थीं।

सन्निवेश।

/

आसपास के गांव-वालों को गोले दिखाई [illegible] प्रभावित हुए थे । सारे गांव में हलचल शुरू हो गई थी । दूसरे दिन सुबह शत्रु का कहीं पता नहीं था । दोपहर तक भी जब कुछ नहीं हुआ [illegible] और सोचा कि शायद [illegible] । दूसरे दिन से पता लग जायगा किन्तु पता न लगा [illegible] ।

युद्ध के आरम्भ [illegible] । अचानक पड़ोसियों ने इस बार आक्रमण पश्चिम की ओर से किया । [illegible] नहीं । घमासान युद्ध होने लगा । शत्रु के मुकाबले में इस बार हमारे सैनिकों को बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा । रेगिस्तान होने से यातायात के साधन सीमित थे । आवश्यक सामग्री पहुंचने में बड़ी कठिनाइयां पड़ती थी ।

खाने को भोजन नहीं, पीने को पानी नहीं, फिर भी स्वदेश की रक्षा के लिए रणबांकुरे गढ़ ही रहे थे । उनका जोश अतिरेक था । आसपास के गांव के नागरिक उन्हें दूध विपुल मात्रा में पहुंचा आते थे । कभी अनाज से भोजन मिल जाता था । कई बार मात्र दूध पर ही रहना पड़ता था ।

उस दिन अचानक ही भारी आक्रमण हुआ । एकदम शत्रु बहुत बड़ी संख्या में चढ़ आये । गुप्तचर या तो मारे गये या पकड़े गये जिससे पूर्व सूचना प्राप्त नहीं हो सकी । पीछे हट कर मोर्चा लेने का अर्थ था पास के गांव की तबाही जिसे स्वदेश-प्रेमी सैनिक नहीं चाहते थे । सबने वहीं मरमिटने का निर्णय किया और डट गये । एक के पश्चात् एक सैनिक घायल होता जा रहा था । कुछ बलिदान भी हो चुके थे ।

धापू अपनी सहयोगिनी नर्सों के साथ जीवन की परवाह किये बिना घायलों को उठाउठा कर ले जा रही थी, इतने में केम्प-ऑफीसर ने आदेश दिया, "धापू ! अपनी नर्सों को लेकर बच निकलो ! अब केवल दस व्यक्ति रह गये हैं ।" धापू ने सुना, मन ने गवाही नही दी । पर उसने आदेश का पालन किया ।

द्रुतगति से वह गांव में गई । नौजवानों को क्षण भर में सारी स्थिति समझाते हुए बोली या तो सामना करते हुए मरो या लुटो और अपनी मां-बहनों की आबरू लुटाओ । बात लग गई और तुरन्त पचास जवान जिन्होंने होम-गार्ड का प्रशिक्षण लिया था उसके साथ हुए । उन्हें देख कर लड़ने वालों में भी जोश आ गया ।

पर यह क्या ? एक गोली केम्प-ऑफीसर के लगी, वे लुढ़क गये । लड़ने

वालो के मन में निराशा फैल गई। धापू ने तुरन्त स्थिति पहचानली और सिंहनी के समान गरजती हुई एक घायल सैनिक की रायफल उठा कर आगे बढ गई उसने सैनिकों को ललकारा। एक महिला का इतना साहस देख कर निराश सैनिकों एवं नागरिको मे भी जोश आगया वे सब जी-जान से लड़ने लगे। भयंकर युद्ध हुआ शत्रु की गति कुंठित हो गई। उनके आगे बढने के सपने चूर हो गये, फिर भी वे लड़ते रहे, भागे नही।

ये लोग भी बहुत सावधानी से लड रहे थे। अचानक तुमुल घोष सुनाई पड़ा 'भारत माता की जय!' घायल वायरलेस-ऑपरेटर का प्रयत्न सफल हुआ। उसने हमले की सूचना घायल होने के बाद भी प्रयत्न करके पास वाली चौकी को भेज दी थी। समय पर सहायता आ गई। धापू जो अब तक लेटे-लेटे निशाने लगा रही थी, मारे प्रसन्नता के झूम उठी और खड़ी होकर लड़ने लगी इतने में एक गोली उसे बीध गई। वह वही गिर गई। नये सैनिकों ने शत्रु को पीछे हटने के लिए विवश कर दिया।

अर्द्ध-मूर्छित अवस्था में धापू को केम्प अस्पताल ले जाया गया एवं आवश्यक मरहम पट्टी की गई। अचेतन अवस्था मे मनुष्य के कई मानसिक भाव जिन्हें वह सामान्यतया छिपाना चाहता है, प्रकट हो जाते हैं।

वह कह रही थी। !"""दाऊ"""वे तो"""स्वदेश रक्षा मे""" अपने आपको """उत्सर्ग कर गये ! मैं जी कर"""क्या करूंगी ?""" माता" पिता की """सेवा !"""वे भी """कौन सौ बरस"""रहेंगे ? दाऊ """भाई आ गया"" ""वह कहता था"" ""महिलाओं """की भी""" सेना होती है"""दाऊ मैं भी """ ""फौज मे"""भरती"""होऊंगी""" उनके जैसे"" ""भारत"""माँ """को """रक्षा"""करूंगी।

●.

एक कहानी लिखनी है

●

विश्वेश्वर शर्मा

टूटी-फूटी सी कड़ियाँ कमरे की छत के पाटों पर टिकी हुई। पाटों में कहीं-कहीं बांसों के ठूंठ छूट कर अटके रह गये हैं और उन दरारों को अपनी चोंच से और अधिक कुरेद कर चिड़ियाओं ने घोंसले बना लिये हैं। दिन भर ये इधर-उधर से तिनके लेकर आती हैं और घोंसलों को सजाती हैं। इस तरह मेरे कमरे में बड़ी चहल-पहल है।

एक बल्ली के मुँह पर ही दीवार खोद कर एक गिलहरी ने अजन्ता की गुफा बना ली है, जिसमें निरन्तर निर्माण-कार्य चलता ही रहता है और सारा मलबा, दिन में कई बार, मेरे मस्तक को पावन करता रहता है।

इस गिलहरी के मारे नाक में दम है। अपना शीशमहल इसने ठीक मेरी बैठक के ऊपर ही बनाया है। यहाँ से उस चिड़िया के घोंसले तक जाने में बड़ी सुविधा रहती है। पहले वह अपने महल के पास ही दीवार पर लगे हुए एक चित्र पर छलांग लगाती है और फिर दूसरे प्रयास में पाट पर उछल पड़ती है। उसे आती देख कर चिड़ियाएँ ज़ोर-ज़ोर से चिल्लाती हैं और मेरा ध्यान भंग कर देती हैं, अब तो मैं उनकी इस चिल्लाहटविशेष को पहचान गया हूँ, जब भी वे चीं-चीं-चीं-चीं करके तीव्र ध्वनि से चीखती हैं, तब मैं समझ जाता हूँ कि गिलहरी ने आक्रमण किया है और तुरन्त ही एक लम्बा बाँस लेकर मुझे गिलहरी को भगाना पड़ता है। फिर भी चिड़ियाओं का एक-आद सद्यजात बच्चा तो वह खा ही जाती है। मुझे उसकी हिंसावृत्ति पर बड़ा रोष है, किसी दिन ऐसा मारूँगा कि रहना ही भूल जायगी यहाँ।

लेकिन आजकल संभवतः उसके भी बच्चे हुए हैं और वह इसीलिए अपने शीशमहल को भी अच्छा तथा सुरक्षित बनाने में लगी है। दिन भर बड़ा श्रम करके विविध खाद्यपदार्थ लाती है और उन्हें खिलाती है। मेरे भोजन करने के समय का उसे बड़ा ध्यान है। ज्योंही मैं थाली से उठता हूँ, वह

कहीं न कहीं से आ टपकती है और बचा-खुचा बड़ी फुर्ती से साफ कर जाती है। उस समय वह चिड़ियाओं का गुजर नहीं लडने देती। चिड़ियाएँ मेरे खाना खाते समय ही उछल-कूद करती हैं और उड़ती हुई, थाली से दाने लूट कर ले जाती हैं। मैं देखा करता हूँ—कितनी भली, कितनी मीठी है यह लूट।

लेकिन आज सुबह से ही मुझे यह कुछ भी अच्छा नहीं लग रहा। एक अच्छा-सा प्लाट दिमाग में घूम रहा है, किन्तु इन जानवरों के मारे कुछ भी नहीं बन पाता, 'एक भ्रष्ट व्यक्ति' शीर्षक से कहानी लिखना चाहता हूँ। सारा मसाला तैयार है। मैंने अपनी आँखों से देखा है उसे ठेकेदारों से कमीशन खाते हुए, बीस रुपये रोज की तो वह शराब ही पी जाता है।

पानी की तरह पैसा खर्च करता है, वह आता कहाँ से है? तेल तो तिलों ही से निकलेगा न? लेकिन मैंने आपसे कहा न, गिलहरी के बच्चे हुए हैं और वे अब बिल से बाहर झाँकने भी लगे हैं। बल्ली पर खुसर-फुसर होती है, मेरा ध्यान भंग हो जाता है। मैं ऊपर देखता हूँ, नन्हे-नन्हे दो बच्चे बल्ली पर उल्टे चलने का प्रयास कर रहे हैं। मुझे डर लगा, कहीं गिर पड़े तो? और सच ही उनमें से एक तो गिर ही पड़ा। आँगन पर पड़ते ही वह भय-भीत-सा दौड़ा, किन्तु उसके पिछले पाँव लटक गये हैं, घिसट रहे हैं। वह अपंग है। अपने अगले हाथों से शरीर को खींचता हुआ वह इधर-उधर घिसटने लगा और कमरे में दौड़ने लगा है। कहीं चढ़ने का प्रयास करता है तो गिर पड़ता है। चीं-चीं करके चिल्लाये जा रहा है, लेकिन कहीं त्राण नहीं पा रहा।

मुझे बड़ी दया आयी। बेचारा, कैसी आपत्ति में आ फँसा है। अब इसे कैसे छुड़ाया जाय? मैंने उसे एक कपड़े में पकड़ लिया है और छत के पास वाले रोशनदान में रख दिया। कुछ रोटी के टुकड़े बिखेर दिये, ताकि वह खा सके और मैं निश्चिन्त होकर अपने काम में लग गया। "कर्मों का फल" एक बढ़िया शीर्षक हाथ आ गया। उस भ्रष्ट व्यक्ति की सारी करतूतें उसमें आ जायेंगी और अन्त में उसकी दुर्दशा का ऐसा चित्रण किया जाय कि पाठक तौबा कर उठें। मैंने लेखनी उठा ली। लिखने लगा, इतने में ही वह गिलहरी का बच्चा सीधा मेरी पीठ पर आ गिरा। मैं हड़बड़ा कर उठ गया, क्षण भर को कलेजा धड़क उठा, लेकिन देखने पर ज्ञात हुआ, वही लँगड़े साहब फिर अपनी दुर्दशा से हमें त्रस्त करने को फर्श पर पधार गये हैं। एक क्षण तो मुझे लगा कि वह मर गया किन्तु मेरे भ्रम को उसने तुरन्त ही

घसीटा चाल आरम्भ करके निर्मूल कर दिया । मैं बड़ी उलझन में पड़ गया । यदि कमबख्त बाहर निकल गया तो कोई भी जानवर खा जायगा । कमरे में घूमेगा तो जगह-जगह गिरेगा । अब इसका क्या किया जाय ?

इतने ही में गिलहरी कहीं बाहर से दाना-पानी लेकर आई । उसने जब अपने बच्चे को इस तरह कष्ट पाते तथा चिल्लाते देखा तो वह एक क्षण में कुछ से कुछ हो गई । अपने घोंसले से तस्वीर पर और तस्वीर से लोहे के पाट पर और वहाँ से वापस तस्वीर और घोंसले पर "चीं-चीं" करती हुई इतने चक्कर काटने लगी कि मैं उसका यह क्रम देखकर चकित रह गया । मुझे माँ-बच्चे की यह संयोग-वियोग अवस्था देख कर बड़ी करुणा हो आयी । मैंने सोचा क्यों न मैं इस बच्चे को पुनः उसी रोशनदान में रख दूँ ? जहाँ से गिलहरी इसे आसानी से ले जा सके और ऐसा सोचकर जैसे ही मैं बच्चे के निकट बढ़ा वैसे ही गिलहरी चीं-चीं-चीं-चीं करके इतनी जोर से चिल्लाई कि मुझे घूम कर उसकी ओर देखना पड़ा । वह बल्ली पर इधर-उधर सरपट घूम रही थी और जोर-जोर से चिल्ला रही थी । उसने मेरी ओर घूम कर देखा, उसकी आँखों में अङ्गारे बरस रहे थे । वह क्रुद्ध सर्पिणी-सी मेरी ओर देखे जा रही थी । उसकी उस विकराल दृष्टि से मैं वास्तव में बहुत संयत हो गया । मुझे लगा, जैसे वह अभी मुझ पर कूद पड़ेगी ।

मैंने बच्चे को हाथ नहीं लगाना ही उपयुक्त समझा । मेरा वहाँ से हट जाना ही एक मात्र उपाय था । मैं कमरे से बाहर हो गया । किवाड़ बन्द कर दिये और दूर बैठ कर खिड़की से ममता की व्यग्रता देखने लगा ।

इतने में माँ ऊपर आ गई और बोली—"मैं तो समझ रही हूँ कि तू कमरे में काम कर रहा है और तू कमरा बन्द करके यहाँ बाहर बैठा है । चल, खाना ठण्डा हो रहा है ।"

"चलता हूँ माँ !" कहकर मैं पुनः गिलहरी का दृश्य देखने लगा । मेरे ध्यान का अनुमान करते हुए माँ ने भी खिड़की से भीतर झाँका ।

गिलहरी नीचे उतर आयी उसने थोड़ा मुँह से लिपटलिपट कर बच्चे को प्यार किया और अपने मुख में दबा कर चल पड़ी, अपने गुहा स्थल की ओर । मुझे बड़ी खुशी हुई । बिछड़े मिल गये ।

"यही देख रहा था इतनी देर से ?" माँ ने पूछा—

"हाँ माँ ! इस बच्चे ने नाक में दम कर रक्खा है । कमबख्त ऊपर से गिर पड़ा और इधर-उधर घिसटने लगा । मुझे बड़ी दया आयी । गिलहरी आयी तो इतनी जोर से चीखने लगी कि मैं तो मारे डर के बाहर निकल आया । इन जानवरों की वजह से कुछ भी काम नहीं हो पाता ।"

"दुःख तो सबके पीछे लगा है बेटे ! चल खाना खाले । कैसा पागल लड़का है !"......कहती-कहती माँ सीढ़ियाँ उतरने लगी और मैं भी उसके पीछे पीछे चल दिया।

* * *

इस छत के नीचे रात्रि व्यतीत करना भी एक ही कमाल है। कई तरह के प्राणी रात्रि भर अपनी विविध आवाजें करते रहते हैं। चिड़ियाएँ एवं गिलहरी अवश्य शान्त रहते हैं। किन्तु और न जाने कौन-कौन-से अज्ञात महमान यहाँ रहते हैं, जो रात भर अपनी अजस्र वाक्-धारा द्वारा कमरे की निस्तब्धता से सतत जूझते रहते हैं।

आज भी यही आपत्ति सता रही है। किसी विशेष तीखी ध्वनि को सुनकर मैंने लालटेन के प्रकाश में छत सँभाली किन्तु कुछ दिखाई नहीं दिया।

मैं घबराकर सो जाता हूँ। स्वप्न में भी मुझे उसी गिलहरी का क्रुद्ध सर्पिणी के रूप में चीखना-घूरना दिखाई देता है। उसका बच्चा पुनः गिर पड़ा और घिसटता हुआ कमरे के द्वार से बाहर निकल कर सीढ़ियों के पास चला गया है। मैं उसे पकड़ने दौड़ा हूँ। गिलहरी भी मेरे पीछे-पीछे लपकी है। बच्चा मुझे देखकर आगे-आगे भागा जा रहा है, वह सीढ़ियों से गिर पड़ा और लुढ़कते लुढ़कते मकान की नीचे वाली मञ्जिल पर जा गिरा। गिरते ही उसका दम निकल गया। पीछे से गिलहरी झपटकर मेरी ओर आती है और मैं चौंक कर आँखें खोल देता हूँ।

नींद खुल जाती है। चकित-सा इधर उधर देखता हूँ। कहीं कोई नहीं ! चिड़ियाओं के घोंसले से कलरव की ध्वनि आ रही है। मैं उठ गया, अपने प्रातःकर्म से निवृत्त होने हेतु—सात बजे स्कूल जाना है।

स्नान करके कपड़े पहने। माँ चाय ले आयी। मैंने चाय पी और स्कूल के लिए चल पड़ा, किन्तु गली में जाते ही ठिठक गया। नाली के एक ओर वही गिलहरी का बच्चा मरा पड़ा है। उफ.........! आखिर नहीं बच सका बेचारा ! कभी-कभी स्वप्न भी कैसे सत्य हो जाते हैं। मैंने मन ही मन में सोचा। स्कूल में भी दिन भर मन नहीं लगा, कुछ अनमनापन-सा अनुभव हो रहा था। मैं घर गया। उस बच्चे का मृत शरीर अब नाली के पास नहीं है। संभवतया हरिजन उसे उठा ले गया। मैं अपने नियत स्थान पर आ बैठ गया हूँ। सोच रहा हूँ—उस बनिये की कहानी लिख दूँ, जो एक और लोटा लेकर इस मोहल्ले में आया और आज लखपति है। किन्

उसने खरीददार बनाये, उन्हें माहवारी सामान उधार देने लगा और उसमें मनमाफ़िक पैसा बढ़ाने लगा; लेकिन आज उसकी क्या दशा है ? लाखों की सम्पत्ति है, लेकिन शरीर में कीड़े पड़े हुए हैं और छह महीने से अस्पताल में घोर यन्त्रणा सहन कर रहा है या फिर उस सूद खोर ठक्कर साहूकार की बातें लिख दूँ, उसका ब्याज भी राकेट की रफ्तार से कुछ कम नहीं। सौ रुपये लेकर साल भर नहीं दे सको तो पूरे अढ़ाई सौ बन जाते हैं। कई लट्ठधारी उसके नौकर हैं जो अपनी धृष्ट जिह्वा से सेठजी के ग्राहकों को सवेरे ही आ जगाते हैं, जिसके अपने तीन-तीन वकील हैं और जो अपने इसी शोषण के बल पर आज सम्पन्न तथा प्रतिष्ठित बना हुआ है। हां, यही ठीक रहेगी। कहानी का चित्र मेरे मस्तिष्क में कुछ-कुछ स्पष्ट होने लगा। मैंने कागज तथा पैन उठाया और लिखने लगा।

इतने में नीचे से माँ ने आवाज दी। बड़ी मुसीबत है। जब भी काम शुरू करता हूँ कोई-न-कोई व्यवधान आ ही जाता है। नीचे जाकर मां पर बरस पड़ा—"क्या है मां ? थोड़ी सी विचारधारा जमने लगती है कि कोई-न-कोई परेशान करने आ पहुँचता है।"

"थोड़े से गरम-गरम पकौड़े खा ले बेटा ! फिर मन चाहे तब तक लिखता रहना। आज सुबह से ही तेरा चित्त ठिकाने नहीं है। स्कूल से भी तू जल्दी आ गया है। ऐसा कौन-सा जरूरी काम आ गया है रे ?"

"एक जगह एक कहानी लिखकर जरूरी भेजनी है। लेकिन इस टूटी छत में रहने वाले जन्तुओं के मारे परेशान हूँ। कल वह गिलहरी का बच्चा आ गिरा। टाँगें उसकी टूटी थीं। घिसटता रहा। अन्ततः गिलहरी उसे मुँह में दबाकर तेरे सामने ही ले गई। आज सुबह देखा, तो वह गली में मरा पड़ा था।"

"बिचारी गिलहरी पर क्या बीत रही होगी ?" माँ ने करुणा प्रदर्शित करते हुए कहा।"

"उस पर क्या बीत रही होगी यह फिकर लगी है तुझे ? उसकी वजह से मुझ पर क्या बीत रही है !" कहता हुआ मैं वापस अपने कमरे में आ गया। देखा, गिलहरी के दूसरे सुपुत्र भी आकाश से धरती पर पधार गये हैं और कमरे से बाहर निकलकर छत की ओर जाने वाली सीढ़ी पर चढ़ चुके हैं। मैंने उस ओर ध्यान नहीं दिया, चुपचाप अपने स्थान पर आकर बैठ गया। किसी भी तरह आज मुझे एक कहानी लिखनी ही है। इतने में बाहर से गिलहरी की तीव्र ध्वनि सुनाई दी। ऐसी तीखी आवाज़ जिसने मेरे अन्तःस्थल को झकझोर दिया। मैंने खिड़की से बाहर देखा। एक कौआ उस गिलहरी के बच्चे को

उठाये लिये जा रहा था और गिलहरी निःसहाय-सी पीछे जा रही थी। मैं दौड़ा, कौआ नीम पर बैठा था। मैंने उस ओर पत्थर फैंके तो वह उड़कर दूसरी डाली पर बैठ गया और उस नन्हें ग्रास को चीर कर खाने लगा। मैंने उस ओर पत्थर फैंके। वह नीम से उड़ गया। एक पत्थर नीचे माँ को जा लगा, वह तुरन्त नीचे आई।

"यह क्या कर रहा है रे?"

"उस गिलहरी के दूसरे बच्चे को भी कौआ उठा ले गया। मैंने पत्थर मार कर उसके मुँह से छुड़ाना चाहा, लेकिन वह तो उसे उठा ही ले गया। गिलहरी चीं-चीं करती हुई अभी भीतर गयी है।"

"बिचारी दो-दो बच्चों की मृत्यु का दुःख कैसे सहन करेगी?" माँ को उस पर बड़ी दया आयी।

"यह क्या तमाशा है माँ, चिड़िया के बच्चे को गिलहरी खा जाती है, गिलहरी के बच्चे को कौआ खा जाता है।"

"कमजोर को ताकतवर खा जाता है, गरीब को अमीर खा जाता है, यह तो संसार की रीत है। एक के पीछे एक ही लगा रहता है बेटे! सब अपने-अपने कर्मों का फल है।"

"सब अपने-अपने कर्मों का फल है!" मैंने मन ही मन दोहराया। "कर्मों का फल" यही एक शीर्षक मुझे जँच गया और मैं पुनः अपनी बैठक पर जा बैठा।

इतने में चिड़िया के दो बच्चे भी नीचे आ गिरे। छोटे-छोटे से जिनके छोटे-छोटे पंख हैं। वे इधर-उधर फुदक रहे हैं, किन्तु उड़ नहीं पाते। चिड़िया वहाँ लाकर भी उन्हें दाना खिला रही है तथा उड़ने को प्रोत्साहित कर रही है। बड़ा हृदयस्पर्शी दृश्य है। इतने में मुझे पुनः गिलहरी का स्मरण हो आया। मैंने उसके शीशमहल की ओर घूम कर देखा, वह अकेली रोशनदान में सिमटी हुई बैठी है और एक टक चिड़ियाओं के बच्चों को देखे जा रही है। मैंने सब तरह से अपना ध्यान हटाया और काम में जुट गया।

पायंदाज

●

गोपीशंकर शर्मा

निरंकुश उत्पीड़क सम्राट् के समान ग्रीष्मराज के प्रचण्ड ताप से चारों ओर हाहाकार हो रहा था। पशु-पक्षी जीभ निकाले हांफ रहे थे। निरंकुशता के आगे झुक गये वृक्षों ने अपने रहे-सहे पत्तों की भेंट धर कर दया की भीख मांगी और लताओं ने भूमि पर लोट-लोट कर अपने पीले मुख से पानी ! पानी !! कहते दम तोड़ दिया। अपने पुत्र-पुत्रियों की ऐसी दशा देख कर धरती का धैर्य उसकी छाती चीर कर निकल गया। सम्राट् का हृदय न हिला, न हिला। मूक आहें धरती से उठकर स्वर्ग तक पहुँचीं और एक दिन देवराज इन्द्र द्रवीभूत हो उठे। आकाश में नगाड़े गड़गड़ाये। श्याम कवचधारी मेघ-सैनिकों के विद्युत-अस्त्र चमकने लगे। आषाढ़ मास के शुभमुहूर्त में महाराज मघवा ने ग्रीष्मराज पर आक्रमण कर दिया। असंख्य बूंदों के तीरों से अन्तरिक्ष भर गया। थोड़ी ही देर में ग्रीष्म का दर्प, लज्जा-ग्लानि से पानी-पानी हो गया। पराजयता ने वह कर सड़कों के किनारे-किनारे धरती के कोमल हृदय पटल पर आतंक के अन्त की कहानी अंकित करदी। चारों ओर हर्ष-ध्वनि—"महाराज इन्द्र की जय"। वृक्ष फिर लहलहाये। मोर नाच उठे। वसुन्धरा ने सौंधी सुवास का प्रसाद बाँटा। और इस मंगल वेला में अपने पुत्र हलधर के चरणों को हृदय से लगा कर धरती माता पुलक उठी।

*　　　*　　　*

आषाढ़ की प्रथम वर्षा ने जहाँ चारोंओर उल्लास और उत्साह का सर्जन किया वहाँ आगरा नगर अपने नाम की सार्थकता अक्षुण्ण बनाये रखने के लिए निर्धूम अग्नि को अपने हृदय में छिपाये बैठा रहा। इधर सड़कों पर पानी बह रहा था उधर शरीर से पसीना। अनवरत पंखा झलते हुए भी

तनिक ठण्डक नहीं मिल रही थी। शान्ति प्राप्त करने में अपने समस्त प्रयत्नों की विफलता पर आगरे की जनता का रोम-रोम रो रहा था।

ऐसे ही उमस भरे दिन में सुमन-सज्जित शय्या पर मुगल सम्राट् अकबर शान्ति नहीं पा रहे थे। रह-रह कर वह पंखा झलनेवालियों की ओर देखते और इस प्रत्येक आक्रोश-व्यंजक दृगित पर कमनीय कामिनियों के कोमल थके करों की गति में तीव्रता आजाती। भय से उनका हृदय काँप उठता। फिर भी शहंशाह को चैन न मिला तो नहीं मिला। वह उठ कर टहलने लगे। सहसा उन्होंने प्रतिहारी को आदेश दिया कि बीरबल को हाजिर किया जाय। कुछ ही समय पश्चात् बीरबल ने उपस्थित हो झुककर तीन बार अभिवादन किया और नतमस्तक दो कदम पीछे हटकर निवेदन किया—"सेवक को याद फर्माया आलीजाह ने!" "हाँ बीरबल! मावदौलत आज बहुत बेचैन हैं, आज की रात कहीं बाहर बिताई जावे। यहाँ तो दम घुटा जा रहा है। यह काम खास तौर से हम तुम्हें सौंपते हैं।"

"बहुत बेहतर आलीजाह।" बीरबल ने फिर नतमस्तक तीन बार अभिवादन किया और कुछ कदम पीछे पाँव चलकर बा-अदब कक्ष से बाहर निकल गये। दोपहर ढलते ही बादशाह सलामत अपने हरम, अफसरान, मुसाहिबों और जरूरी नौकर-चाकरों के साथ आगरे की आग भरी सीमा से बाहर चल दिये। दूर आम्रवृक्षों के घने कुञ्जों में बीरबल ने इस रैन-बसेरे का सब प्रबंध किया था। सम्राट् नगर से बाहर हुए ही थे कि पुरवाई और वर्षा की हलकी बौछार ने उनका स्वागत-सा किया। सबके तन-मन प्रसन्न होगये। तपन को कम करने और धूल को उड़ने से रोकने के लिए यद्यपि सारा पथ पहले से ही छिड़क दिया गया था तथापि प्रकृति को सन्तोष नहीं हो सका था। उसने बीरबल को अधिक यश दिलाने हेतु कण-कण से ताप को बहा देने का निश्चय किया था। अपने प्रबन्ध में प्रकृति के इस सहयोग को पाकर बीरबल ने मन ही मन ईश्वर को धन्यवाद दिया।

संध्या होते-होते नियत स्थान पर लगे हुए डेरे-शामियाने दिखाई देने लगे। मेघाच्छन्न आकाश के नीचे श्वेत उज्ज्वल डेरे बड़े सुहावने लग रहे थे। बादशाह की सुनहरी किरणों से शाही खेमों के स्वर्ण-कलश चमक रहे थे। बादशाह की दृष्टि पड़ी तो सहसा कह उठे—"वाह! कैसा दिलकश मजर है बीरबल!" किन्तु अपने कथन के समर्थन में जब कोई शब्द कान पर नहीं पड़ा तो उन्होंने थोड़ा मुड़कर एक मुसाहिब की तरफ देखा। उसने नतमस्तक हो अर्ज किया—"अभी-अभी किसी खास वजह से पीछे रुक गये आलमपनाह!"

बादशाह ने सोचा—बीरबल किसी नवीन विनोद की तैयारी में ही कहीं गये होंगे। अतः वह चुपचाप रास्ते के सुप्रबन्ध और वर्षा के सुहावने दृश्यों का अवलोकन करते आगे बढ़ते रहे। बीरबल को एक नौकर ने सूचना दी थी कि फ़र्राश लोग जल्दी में पायंदाज़ भूल आये हैं और अभी की वर्षा से हुए कीचड़ के कारण शामियानों में बिछी कीमती कालीनों की सुरक्षा के लिए कोई साधन सुलभ नहीं था। बीरबल को मानो काठ मार गया। छोटी-सी चीज़ के अभाव में सारे प्रबन्ध पर दाग़ लगने वाला था। अतः उन्होंने पीछे रुक कर दो सैनिक अश्वारोहियों को कड़ा आदेश दिया कि बादशाह सलामत के मुकाम पर पहुँचने से पहिले जैसे भी हो पायंदाज लाकर शामियानों के दरवाजों पर बिछवादें! इधर बीरबल अश्वारोहियों को भेजकर, बादशाह की दृष्टि बचाकर दूसरे सीधे रास्ते से मुकाम पर इसलिए पहुँच गये कि यदि समय पर पायंदाज़ न आ सकें तो बादशाह और मुसाहिबों को शामियानों में प्रवेश करने से पूर्व इधर-उधर का प्रबन्ध दिखाने के बहाने बाहर ही रोका जा सके लेकिन सौभाग्य से बादशाह के वहाँ पहुँचने से पूर्व पायंदाज़ लग गये थे।

'बा-अदब बा-मुलाहिजा होशियार!" - नकीब के ये शब्द कान पर पड़ते ही सब लोगों के मस्तक झुक गये। सब की दृष्टि जमीन पर जा लगी। सबका 'नतमस्तक अभिवादन स्वीकार करते हुए बादशाह सलामत शामियाने में प्रविष्ट हुए। पीछे-पीछे उच्च अधिकारी और अन्य मुसाहिब भी भीतर जाकर अपने-अपने नियत स्थान पर पहुँच गये। मखमली, जरी के कामवाली मसनद के सहारे सम्राट् के विराजते ही सब सभासद भी अपने-अपने आसनों पर आसीन हुए। सुख और शान्ति का अनुभव करते हुए बादशाह ने फर्माया —"वल्लाह, बड़ी राहत मिली!" इस पर बीरबल ने अपने स्थान पर ही खड़े होकर झुक कर सम्राट् को अभिवादन किया। देखते ही बादशाह ने पूछा —"तुम्हें हम से भी अच्छा साथी मिल गया था बीरबल?" विनोद के रूप में बेअदबी की ओर किया गया संकेत बीरबल समझ गये। वह जानते थे कि बादशाह को झूठ से सख्त चिढ़ थी। अतः उन्होंने नतमस्तक निवेदन किया "आलमपनाह, बेअदबी माफ़ हो। जल्दी में फ़र्राशलोग पायंदाज़ भूल आये थे और बारिश मेरी सारी मेहनत पर पानी फेरने के लिए उतारू थी।" दरबारियों के साथ सम्राट् ने भी अनुभव किया कि बात बड़ी नहीं थी लेकिन उस छोटी सी नाचीज़ के बिना शामियानों की सारी रौनक बेकार हो जाने में कोई शक़ नहीं था। सम्राट् को समाधान हुआ तो मुस्करा कर

बोले—"अच्छा माफ किया !" बीरबल ने पुनः झुक कर तीन बार अभिवादन किया और अपनी जगह जा बैठे।

कुछ ही देर की खामोशी के बाद सम्राट् ने फिर कहा—"इन्तजाम माकूल था बीरबल।" बीरबल जिसकी आशा में थे वही "दाद" उन्हें मिल गई थी। उछलते हृदय से उन्होंने पुनः उठकर अभिवादन किया ही था कि बादशाह के दूसरे शब्द उनके कानों में पड़े—"लेकिन बीरबल ! इस तमाम इन्तजाम में जो लोग तैनात थे वे कुछ ज्यादह खुश दिखाई नहीं दिये। कौन थे वे लोग ?" बीरबल को लगा जैसे—"राजा जोगी अग्नि जल"—की पंक्तियाँ उनका मस्तिष्क दोहरा रहा हो। उन्होंने ऐसी कल्पना भी नहीं की थी कि ऐसे अवसर पर भी सम्राट् अपनी प्रजा का इतनी सूक्ष्म दृष्टि से निरीक्षण कर लेंगे। बीरबल ने उत्तर दिया—'जिल्ले सुहानी ! वे आसपास के गाँवों के लोग थे। अफसरान के हर काम में वे मदद देते हैं। इसीलिए उन्हें थोड़ी बहुत जमीन दी गई है। लगान माफ है। उनका रहन-सहन पीढ़ियों से बहुत सादा है, जिसके वे आदी हैं आलीजाह !" बादशाह को सुनकर ऐसा लगा मानो उनके सम्पूर्ण बलिष्ठ शरीर के किसी आवश्यक अंग में पीड़ा हो रही हो। सम्राट् के प्रजावत्सल हृदय में एक नई अशान्ति हो उठी। उनके चेहरे पर उदासी झलकने लगी। गंभीर भावों में डूबते-उतराते वह बार-बार गुलाब के ताजे फूल की खुशबू से अपने मन को शान्त करने की व्यर्थ चेष्टा-सी करने लगे। सभा में सन्नाटा छा गया। सभासदों के चेहरों पर उल्लास का स्थान भय ने ले लिया। कुछ क्षण इसी प्रकार बीते। एकाएक गहरी निश्वास-सी लेकर सम्राट् ने बीरबल से कहा—"अच्छा बैठो !" बीरबल बैठ गये। तब ही बादशाह की बेचैन नजर दाहिनी ओर बैठे रहीम खानखाना की आँखों से जा टकराई, और एक क्षण वहीं अटकी रह गई। वृद्ध महाकवि के चिर अभ्यस्त नेत्रों ने उस दृष्टि की भाषा को पढ़ लिया। रहीम के भावुक कवि-हृदय ने वातावरण का अध्ययन बड़ी बारीकी से कर लिया था। रहीम ने उसी समय अपने स्थान पर खड़े होकर सम्राट् को तीन बार अभिवादन किया और मध्य में रखी स्वर्ण-चौकी पर बैठ कर बोले—

छोटे नर ते रहत हैं, सोभायुत सरताज।
निरमल राखे चाँदनी, जैसे पायंदाज॥

"वाह-वाह ! बहुत खूब, खानखाना ! मुकर्रर हो।" ९

दाद दी। नतमस्तक हो रहीम ने अभिवादन किया और दोहा फिर पढ़ा। अब तो सारे दरबारियों ने वाह्-वाह्, की झड़ी लगादी।

सम्राट् ने प्रसन्न होकर अपने गले से बहुमूल्य मोतियों का कण्ठा उतारा और रहीम की ओर उछाल दिया। रहीम ने दोनों हाथों से उसे ग्रहण कर अपने मस्तक और नेत्रों से लगाया, उठकर पुनः सम्राट् को अभिवादन किया और अपने स्थान पर जाकर बैठ गये। कुछ देर की विनोद-वार्ता के बाद भोजन आदि के लिए सभा विसर्जित हुई।

*　　　　*　　　　*

प्रातः पहली अजान के साथ ही सम्राट् अकबर ने शय्या त्याग दी। मुँह धोया और नमाज के पश्चात् वह बाहर आकर टहलने लगे। चारोंओर हलचल शुरू हो गई। हमामों में पानी भरा जाने लगा। अनेक कार्यों के लिए नौकर-चाकर बिल्कुल खामोशी के साथ उधर-उधर आने-जाने लगे। इसी चहल-पहल में बादशाह ने देखा कि आज यहाँ भी वैसे ही दीन-हीन लोग काम कर रहे हैं। यद्यपि रहीम ने उस समय बादशाह का चित्त शान्त कर दिया था तथापि वह अस्थायी बहलावा मात्र था। रात्रि के नृत्य-गान आदि ने भी सम्राट् की उस व्यथा को उनसे दूर बनाये रक्खा था किन्तु अभी उन लोगों को देखते ही विषाद फिर जीवित हो उठा। सम्राट् एकाएक गंभीर हो गये। उनका मन दूर, अति दूर जाकर न जाने किन-किन आशंकाओं को ला-लाकर उनके सामने अदृश्य रूप से रखने लगा था। ठीक इसी समय बीरबल ने उपस्थित होकर शुभ विहान के लिए बादशाह को बधाई दी। किन्तु प्रत्युत्तर में कोई आशीर्वचन न पाकर बीरबल का माथा ठनका। वह दो क़दम पीछे हटकर नतमस्तक खड़े हो गये। कुछ समय बाद सम्राट् ने ही निस्तब्धता भंग की।

"बीरबल !"

"हुजूर, आलीजाह !"

"आलमपनाह ! ईश्वर ऐसा कभी न करे। हुज़ूर और मुगल-साम्राज्य लाखों सालों तक बरकरार रहे।"

सम्राट् ने तनिक फीकी मुस्कराहट के साथ कहा—"हम फर्ज नहीं, हकीकत चाहते हैं—डरो मत।"

बीरबल की आँखें छलछला आईं। उन्होंने धैर्य धारण कर, मानो सरस्वती की आज्ञा से ही भविष्यवाणी के रूप में निवेदन किया—

"क़िबल-ए-आलम ! क्षमा हो। वह जमाना आता नहीं—लाया जाता है। और उसके बाद उसकी काममाबी को असलियत का जामा पहनाने के लिए, आसमान को खींचकर जमीन तक झुकाना और जमीन को उठा कर ऊपर लाना बहुत जरूरी होता है। फिर भी कोई काम नामुमकिन नहीं होता। लेकिन सही तौर यह काम पूरा होने तक बीच के दौर में रियाया की हुकूमत महज नाम की ही हो रहती है। गुस्ताखी माफ हो खुदावन्द ! रियाया का बड़ा हिस्सा बहुत समझदार और बाइल्म भी नहीं होता जबकि ऐसी हुकूमत में सब राजकाज कसरतराय से होते हैं जिसे बहुमत कहा जाता है। इस हालत में किसी सच्चे और गुणी आदमी की सही कीमत आँकना बहुत मुश्किल हो जाता है। दूसरे, तब हर गाँव का हर आदमी अपने आपको एक हाकिम से कम नहीं समझता जबकि हुकूमत करने वाले दरअसल और ही होते हैं। इसलिए दोनों के बीच बड़ी कशमकश होती है। इधर मुल्क की तरक्की के लिए सब कामों की शुरुआत गाँवों से ही होती है। हुकूमत के हर हाकिम को गाँव में आना पड़ता है तब सवाल यह उठता है कि हाकिमों के नाज-अन्दाज को गाँवों में कौन उठाये ? रियाया तो अपने आपको हाकिमों से बड़ा समझती ही है।"

बीरबल पहली बार बादशाह के सामने इतना अधिक बोल रहे थे। उन्होंने नजर बचाकर सम्राट् के चेहरे के भावों को पढ़ा। वह बड़े ध्यान से सुन रहे थे। बीरबल ने भय न पाकर आगे कहा—"शिक्षा के बिना कोई मुल्क तरक्की नहीं कर सकता। इसलिए गाँव में सबसे पहले मदरसा कायम किया जावेगा। और उसका मुदर्रिस ही, जो हर महकमे के हर हाकिम के लिए जंजीर-ए-हुकूमत की पहली कड़ी होगा, उन मायूस लोगों की जगह सब काम ''' '''।"

'खामोश ! क्या बक रहे हो ?' बादशाह की भौंहों में बल पड़ गये थे। उन्होंने एक क्षण बीरबल को आग्नेय नेत्रों से ताका और फिर क्रोध से बोले—"होश-हवास दुरुस्त हैं बीरबल ?"—बीरबल नतमस्तक कुछ पीछे हटे और तीन बार अभिवादन कर चुपचाप खड़े हो गये। टहलते रहे। थोड़ी देर बाद बोले—"तुमने एक मुदर्रिस की नहीं, स...

वल्कि मुल्क के मालिक की तौहीन की है। अगर यह बात हमारी सल्तनत के लिए कही गई होती तो हम तुम्हें ……।" आगे के अशुभ शब्द बादशाह सुबह-सुबह ही नहीं कहना चाहते थे।

अपने निरक्षर किन्तु विद्वान् और महान् सम्राट् के हृदय में ग्रामीण शिक्षक के प्रति इतना आदर देखकर बीरबल निहाल हो उठे। उन्होंने सिर झुका कर बा-अदब अर्ज किया—"बजा फ़र्माते हैं आलमपनाह ! तब इस बदजबान को सजा-ए-मौत दी जाती और एक विद्या-प्रेमी सम्राट् के लिए यह सजा देना उचित भी था। किन्तु हुजूर ने जान बख्श कर साफ-साफ अर्ज करने के लिए फर्माया था।" बीरबल चुप हो गये।

बादशाह को अध्यापक की अवमानना असह्य थी किन्तु आज वह भावी राज्य का रेखा-चित्र देख ही लेना चाहते थे। उन्हें कुछ ऐसा लग रहा था मानो बीरबल ठीक ही कह रहे थे। वही होगा जो कहा जा रहा है, अस्तु वह विवशताभरी निःश्वास लेकर बोले—"अच्छा बीरबल, आगे बयान करो।"

"जो हुक्म आलमपनाह !" बीरबल ने आगे कहा—"चूंकि मुल्क में शिक्षा के साथ ही हर तरह की तरक्क़ी भी जरूरी होगी, इसलिए हर महकमा अपना काम गाँव से ही शुरू करेगा। लेकिन हर महकमे का अलग-अलग कारिन्दा हर गाँव में रखना नामुमकिन और खर्चीला भी होगा इसलिए कई महकमों का कुछ न कुछ काम उसी मुदर्रिस के कन्धों पर डाल दिया जावेगा—यह कह कर कि अध्यापक को सब काम का जानकार होना चाहिए नहीं तो वह बच्चों को पूरी तालीम कैसे दे सकेगा ! उसके कंधे पर डाले गये सब काम तालीम माने जावेंगे। इस प्रकार जाहिर है कि वह किसी न किसी तरह हर महकमे के अफ़सर का मातहत बना दिया जावेगा। जो कुछ समय उसका खुद का ज्ञान बढ़ाने के लिए उस मुदर्रिस के पास होगा वह फालतू करार दिया जावेगा ताकि वह जबान नहीं हिला सके कि उसको अतिरिक्त काम दिया गया है।"

"उसकी तनख्वाह काफ़ी बड़ी कर दी जावेगी न ?" सम्राट् ने अतिरिक्त कार्य का मूल्यांकन किया।

"ऐसा नहीं हो सकेगा आलीजाह ! उसकी तनख्वाह चपरासियों से कुछ ज्यादह होगी लेकिन किसी भी दूसरे महकमे के छोटे से छोटे कर्मचारी से कम, बहुत कम।"

"सबब?" साश्चर्य सम्राट् ने पूछा।

"यही कि उसकी माली हालत ठीक कर देने से वह तब मजबूर नहीं रहेगा और मातहत मजबूर होकर ही दबाव बरदाश्त कर सकता है। उसे जानबूझ कर अन्य महकमे वालों की नजर से गिराया जावेगा । उनके मुकाबिले में न वह अच्छा खा सकेगा, न पहिन सकेगा । तभी दूसरे लोग उसे छोटा बताकर उस पर अपना रौब जमा सकेंगे। इसका असर समाज पर भी पड़ेगा। समाज भी उसे अन्य लोगों से छोटा समझने लगेगा । धीरेधीरे उस मुदर्रिस के मन में आत्महीनता की भावना जड़ जमा लेगी और एक दिन वह स्वयं ही अपने को छोटा समझने लग जावेगा।"

"तुम्हारा मतलब है बीरबल कि मुदर्रिस को कुछ नहीं मिलेगा।" सम्राट् की बीरबल के शब्दों पर क्रोधपूर्ण घृणा-सी हो आई थी ।

'मिलेगा आलीजाह ! लेकिन इतना कि जिससे महज वह जी सके— दम न तोड़ दे।" बीरबल स्वयं व्यथित और सजल नेत्र हो गये थे। वह गंभीर मुद्रा में कहने लगे "मुदर्रिस भूख से चिल्ला उठेगा, वह समाज में अपनी दिनोदिन गिरती जाती प्रतिष्ठा की दुहाई भी देगा किन्तु तभी उसके सामने कंद-मूल फल खाकर जिन्दगी बसर करने के पुराने रिवाजों को रख दिया जावेगा। साथ ही उसकी हालत सुधारने की तसल्ली भी दे दी जावेगी।"

"और महकमा तालीम यह सब देखता रहेगा—क्यों ?" सम्राट् ने तर्क किया।

"इसमें दो पहलू होंगे, आलमपनाह ! एक तो यह कि महकमा तालीम के अफ़सरों की तनख्वाहें बहुत बड़ी होंगी। वे लोग, गांव में बस कर जिन्दगी बितानेवाले पढ़े-लिखे गरीब मजबूर मुदर्रिस की हालत को समझ ही नहीं सकेंगे। और फिर उनके हाथ में तनख्वाहें बढ़ाना नहीं होगा वे महज कभी रहम फ़र्माकर सिफारिश कर सकेंगे । दूसरा पहलू यह होगा कि ऊँचे दर्जे के मुदर्रिसों को तनख्वाहें बहुत अच्छी होंगी, वे लोग शहरों में रहेंगे। बड़े आदमी कहलावेंगे। इसलिए वे लोग भी बड़े बनने के लिए गाँव के मुदर्रिस को छोटा रखना और छोटा कहना पसन्द करेंगे, उसको भी उससे कोई हमदर्दी नहीं होगी। उनकी इस फूट से हुकूमत और समाज फायदा उठावेगा।"

"तब वह गुलामी की इस जंजीर को तोड़ फेंकेगा बीरबल !"

"सम्राट् ! गुलामी की वह जंजीर इतनी कमजोरी नहीं रखती। उस पर मजबूरी का पानी चढ़ा होता है। मुदर्रिस स्तीफा देकर जावेगा कहाँ ? वह अपने बूढ़े माँ, बाप, बीवी और बच्चों को भूख से तड़पता तो देख नहीं सकेगा। दूसरी नौकरी कहीं तैयार नहीं मिलती आलमपनाह ।"

"वह शुरु में ही मुदर्रिस क्यों बनना चाहेगा बीरबल ?"

"मुल्क की गरीबी के कारण जब ऊँची तालीम ले पाना आसान न

बल्कि मुल्क के मालिक की तौहीन की है। अगर यह बात हमारी सल्तनत के लिए कही गई होती तो हम तुम्हें ......।" आगे के अशुभ शब्द बादशाह सुबह-सुबह ही नहीं कहना चाहते थे।

अपने निरक्षर किन्तु विद्वान् और महान् सम्राट् के हृदय में ग्रामीण शिक्षक के प्रति इतना आदर देखकर बीरबल निहाल हो उठे। उन्होंने सिर झुका कर बा-अदब अर्ज किया—"बजा फ़र्माते हैं आलमपनाह ! तब इस बदजबान को सजा-ए-मौत दी जाती और एक विद्या-प्रेमी सम्राट् के लिए यह सजा देना उचित भी था। किन्तु हुजूर ने जान बख्श कर साफ-साफ अर्ज करने के लिए फर्माया था।" बीरबल चुप हो गये।

बादशाह को अध्यापक की अवमानना असह्य थी किन्तु आज भावी राज्य का रेखा-चित्र देख ही लेना चाहते थे। उन्हें कुछ ऐसा लग रहा था मानो बीरबल ठीक ही कह रहे थे। वही होगा जो कहा जा रहा है, अस्तु वह विवशताभरी निःश्वास लेकर बोले—"अच्छा बीरबल, आगे बयान करो।"

"जो हुक्म आलमपनाह !" बीरबल ने आगे कहा—"चूंकि मुल्क में शिक्षा के साथ ही हर तरह की तरक्की भी जरूरी होगी, इसलिए हर महकमा अपना काम गाँव से ही शुरू करेगा। लेकिन हर महकमे का अलग-अलग कारिन्दा हर गाँव में रखना नामुमकिन और खर्चीला भी होगा इसलिए कई महकमों का कुछ न कुछ काम उसी मुदर्रिस के कन्धों पर डाल दिया जावेगा—यह कह कर कि अध्यापक को सब काम का जानकार होना चाहिए नहीं तो वह बच्चों को पूरी तालीम कैसे दे सकेगा ! उसके कंधे पर डाले गये सब काम तालीम माने जावेंगे। इस प्रकार जाहिर है कि वह किसी न किसी तरह हर महकमे के अफ़सर का मातहत बना दिया जावेगा। जो कुछ समय उसका खुद का ज्ञान बढ़ाने के लिए उस मुदर्रिस के पास होगा वह फालतू करार दिया जावेगा ताकि वह जबान नहीं हिला सके कि उसको अतिरिक्त काम दिया गया है।"

"उसकी तनख्वाह काफ़ी बड़ी कर दी जावेगी न ?" सम्राट् ने अतिरिक्त कार्य का मूल्यांकन किया।

"ऐसा नहीं हो सकेगा आलीजाह ! उसकी तनख्वाह चपरासियों से कुछ ज्यादह होगी लेकिन किसी भी दूसरे महकमे के छोटे से छोटे कर्मचारी से कम, बहुत कम।"

"सबब?" साश्चर्य सम्राट् ने पूछा।

काव्य और संस्कृति

डॉ० नारायणदत्त श्रीमाली

'संस्कृति' शब्द सम् (उत्तम) उपसर्ग पूर्वक 'कृञ्' धातु से भूषण अर्थ में 'सुट्' का आगम करके 'क्तिन्' प्रत्यय करने पर निष्पन्न होता है, जिसका अर्थ है 'उत्तम कृति', अर्थात् देहेन्द्रिय, प्राण, मन, बुद्धि आदि की उत्तम (सम्यक्) चेष्टायें या हलचलें। वैसे तो जीवन चेष्टायें या हलचलें 'कृति' है, परन्तु उनमें अच्छी चेष्टायें जिससे मानव-जाति उन्नति के पथ पर अग्रसर हो सके, संस्कृति (सम+कृति) कही जाती है।

भारतीय दर्शन ने अन्तःकरण के प्रमुखतः चार अंग माने हैं—मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार। समग्रत हम इन चारों में पार्थक्य कर सहज ही नहीं देख सकते, परन्तु तत्त्वत. इन चारों का पार्थक्य निश्चित है। मन इनमें सर्वाधिक बलशाली एवं प्रधान है, और वही तथ्यातथ्य का निरूपण बुद्धि के सहयोग से कर पाने में सफल होता है। न्याय शास्त्र में मन को "संकल्प-विकल्पात्मक" कहा है। "संकल्प-विकल्पात्मक मन.।" डॉ० नगेन्द्र ने संकल्प और विकल्प का विवेचन करते हुए कहा है, "संकल्प का तात्पर्य अनुभूत वस्तु से सम्बद्ध पहली मानसिक धारणाओं से है—विकल्प उनकी अनुयोगी अथवा प्रतियोगी धारणाएं हैं।"[1] बाह्य विश्व के प्रत्यक्ष इन्द्रिय-ज्ञान के माध्यम से जो प्रभाव हमारे अन्तःकरण पर पड़ते हैं, उनका यथा तथ्य निर्णय मन ही करता है, परन्तु स्वयमेव नहीं, अपितु बुद्धि के सहयोग से। लोकमान्य तिलक ने इसे स्पष्ट करते हुए 'गीता रहस्य' में बताया है "मन वकील के सदृश कोई बात ऐसी है (संकल्प) अथवा इसके विरुद्ध वैसी है (विकल्प) इत्यादि को बुद्धि के सामने निर्णय करने के लिए पेश करता है।" मन तो मात्र किसी संकल्प-विकल्प का अनुभव कर सकता है, वह स्वयं निर्णय करने में अपने आप में असमर्थ है, वह ऐसा कुछ भी समाजोन्नयन के लिए नहीं कर सकता, यदि उसे बुद्धि की खराद नहीं मिले, यही पश्चिमी दार्शनिकों का मत है।

---

[1] विचार और अनुभूति —डॉ० नगेन्द्र, पृ० १६

होगा तब जल्दी ही थोड़ा बहुत पढ़कर कमाना जरूरी होगा हुजूर। और तब आसानी से मिलने वाली नही नौकरी होगी आलीजाह !"

"क्या ऐसा मजबूर मुदर्रिस मुल्क की तरक्की कर सकेगा ?"

"तरक्की हो या न हो हुकूमत को शकल बताने के लिए ढोल यही पीटना पड़ेगा कि मुल्क आगे बढ़ रहा है। असलियत यह होगी कि गांव के अनपढ़ और अपने आपको हाकिम मानकर चलने वाले लोगों के बीच में या तो अध्यापक उनकी चाटुकारी करके अपना समय गँवायेगा या जब उसका आत्मसम्मान उसे पछाड़ेगा तो वह इसका बदला उस पर नाजायज दबाव डालने वालों की औलाद को कुछ न पढ़ाकर निकालेगा। यदि यह न भी हुआ तो समाज से ठुकराया हुआ उसका मन उस के हृदय और मस्तिष्क का साथ नहीं देगा। फिर तालीम मिल जाने की आशा ही नहीं रह पाती।"

"यह बात अध्यापक के लिए शर्म की होगी !"

"बेशक आलीजाह ! लेकिन इसके पहले जो मैंने अर्ज़ किया है उस पर आलमपनाह ने शायद गौर नहीं फर्माया। इस दशा की जिम्मेदारी अध्यापक पर तो नहीं ठहरती किबल-ए-आलम।"

"पर इतना जुल्म उस गरीब मुदर्रिस पर क्यों होगा बीरबल?" सम्राट् निराश हो चुके थे। उन्हें ऐसा लगा जैसे वह स्वयं वही गरीब मुदर्रिस हों। बीरबल ने उपसंहार-सा किया --

"बड़े अफ़सरों की शान बढ़ाने के लिए, गरीबपरवर ! रात के बगैर दिन की कोई कीमत नहीं। छोटी चीज़ जब तक पास में न हो बड़ी चीज को बड़ी कौन कह सकता है !"

तभी सम्राट् को रहीम का दोहा याद आया। उसका वर्तमान और भावी अर्थ भी सामने आगया।

सम्राट् वहीं जमीन पर घुटने मोड़कर बैठ गये और दुआ करने लगे "ए अल्लाह ! जिन्दगी और सल्तनत के चले जाने का गम नहीं है। तेरी बख्शी हुई चीज़ तू जब चाहे ले सकता है मगर मुदर्रिस कौम की तरक्की की नींव और मुल्क की इज्जत है। उसकी ऐसी हालत इन आँखों से मत दिखाना। मेरी औलाद को भी नहीं, आमीन।" बीरबल ने भी आँसू पोंछे। बादशाह उठे और उन्होंने हुक्म दिया—"वापसी !—रास्ते में अब वैसा कोई खास इन्तजाम न हो।"

और दूसरे ही क्षण डेरे-तम्बू उखड़ रहे थे।

काव्य और संस्कृति

डॉ० नारायणदत्त श्रीमाली

'संस्कृति' शब्द सम् (उत्तम) उपसर्ग पूर्वक 'कृञ्' धातु से भूषण अर्थ में 'सुट्' का आगम करके 'क्तिन्' प्रत्यय करने पर निष्पन्न होता है, जिसका अर्थ है 'उत्तम कृति', अर्थात् देहेन्द्रिय, प्राण, मन, बुद्धि आदि की उत्तम (सम्यक्) चेष्टायें या हलचलें। वैसे तो जीवन चेष्टायें या हलचलें 'कृति' है, परन्तु उनमें अच्छी चेष्टायें जिससे मानव-जाति उन्नति के पथ पर अग्रसर हो सके, संस्कृति (सम + कृति) कही जाती है।

भारतीय दर्शन ने अन्त.करण के प्रमुखतः चार अंग माने हैं—मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार। सममत हम इन चारो मे पार्थक्य कर सहज ही नही देख सकते, परन्तु तत्वत. इन चारो का पार्थक्य निश्चित है। मन इनमे सर्वाधिक बलशाली एवं प्रधान है, और वही तथ्यातथ्य का निरूपण बुद्धि के सहयोग से कर पाने मे सफल होता है। न्याय शास्त्र मे मन को "संकल्प-विकल्पात्मक" कहा है। "संकल्प-विकल्पात्मक मन.।" डॉ० नगेन्द्र ने सकल्प और विकल्प का विवेचन करते हुए कहा है, "संकल्प का तात्पर्य अनुभूत वस्तु से सम्बद्ध पहली मानसिक धारणाओ से है—विकल्प उनकी अनुयोगी अथवा प्रतियोगी धारणाएँ हैं।"[1] बाह्य विश्व के प्रत्यक्ष इन्द्रिय-ज्ञान के माध्यम से जो प्रभाव हमारे अन्त.करण पर पड़ते हैं, उनका यथा तथ्य निर्णय मन ही करता है, परन्तु स्वयमेव नही, अपितु बुद्धि के सहयोग से। लोकमान्य तिलक ने इसे स्पष्ट करते हुए 'गीता रहस्य' में बताया है "मन वकील के सदृश कोई बात ऐसी है (संकल्प) अथवा इसके विरुद्ध वैसी है (विकल्प) इत्यादि को बुद्धि के सामने निर्णय करने के लिए पेश करता है।" मन तो मात्र किसी संकल्प-विकल्प का अनुभव कर सकता है, वह स्वयं निर्णय करने मे अपने आप में असमर्थ है, वह ऐसा कुछ भी समाजोन्नयन के लिए नहीं कर सकता, यदि उसे बुद्धि की खराद नही मिले, यही पश्चिमी दार्शनिकों का मत है।

[1] विचार और अनुभूति —डॉ० नगेन्द्र, पृ० १९

होगा तब जल्दी ही थोड़ा बहुत पढ़कर कमाना जरूरी होगा हुजूर। और तब आसानी से मिलने वाली सही नौकरी होगी आलीजाह !"

"क्या ऐसा मजबूर मुदर्रिस मुल्क की तरक्की कर सकेगा ?"

"तरक्की हो या न हो हुकूमत की शकल बताने के लिए ढोल यही पीटना पड़ेगा कि मुल्क आगे बढ़ रहा है। असलियत यह होगी कि गाँव के अनपढ़ और अपने आपको हाकिम मानकर चलने वाले लोगों के बीच में या तो अध्यापक उनकी चाटुकारी करके अपना समय गँवावेगा या जब उसका आत्मसम्मान उसे प्रताड़ेगा तो वह इसका बदला उस पर नाजायज दबाव डालने वालों की औलाद को कुछ न पढ़ाकर निकालेगा। यदि यह न भी हुआ तो समाज से ठुकराया हुआ उसका मन उस के हृदय और मस्तिष्क का साथ नहीं देगा। फिर तालीम मिल जाने की आशा ही नहीं रह पाती।"

"यह बात अध्यापक के लिए शर्म की होगी !"

"बेशक आलीजाह ! लेकिन इसके पहले जो मैंने अर्ज किया है उस पर आलमपनाह ने शायद गौर नहीं फर्माया। इस दशा की जिम्मेदारी अध्यापक पर तो नहीं ठहरती किबल-ए-आलम।"

"पर इतना जुल्म उस गरीब मुदर्रिस पर क्यों होगा बीरबल?" सम्राट् निराश हो चुके थे। उन्हें ऐसा लगा जैसे वह स्वयं वही गरीब मुदर्रिस हों। बीरबल ने उपसंहार-सा किया --

"बड़े अफ़सरों की शान बढ़ाने के लिए, गरीबपरवर ! रात के बग़ैर दिन की कोई कीमत नहीं। छोटी चीज जब तक पास में न हो बड़ी चीज को बड़ी कौन कह सकता है !"

तभी सम्राट् को रहीम का दोहा याद आया। उसका वर्तमान और भावी अर्थ भी सामने आगया।

सम्राट् वहीं जमीन पर घुटने मोड़कर बैठ गये और दुआ करने लगे "ए अल्लाह ! जिन्दगी और सल्तनत के चले जाने का गम नहीं है। तेरी बख्शी हुई चीज तू जब चाहे ले सकता है मगर मुदर्रिस कौम की तरक्की की नींव और मुल्क की इज्जत है। उसकी ऐसी हालत इन आँखों से मत दिखाना। मेरी औलाद को भी नहीं, आमीन।" बीरबल ने भी आँसू पोंछे। बादशाह उठे और उन्होंने हुक्म दिया—"वापसी !—रास्ते में अब वैसा कोई खास इन्तजाम न हो।"

और दूसरे ही क्षण डेरे-तम्बू उखड़ रहे थे।

वस्तुतः संस्कृति का सीधा संबंध उन मूल्यों से है, जो विश्व को सुन्दरतर, रुचिकर एवं श्रेष्ठतर बनाने में क्रियाशील रहते हैं। संस्कृति का वास-स्थान मानस-हृदय है, वह जब बुद्धि के सहयोग से जीवन की जटिल समस्याओं को सुलझाता हुआ मानवता की ओर बढ़ता है, तभी संस्कृति का सच्चा स्वरूप स्पष्ट होता है, परन्तु यह मानवता अपनी स्वार्थ-सिद्धि के लिए नहीं, अपितु विश्वमैत्री का सन्देश देने वाली होनी चाहिये। "संस्कृति एक अखिल जागतिक भाव और सार्वभौम तत्व है, उसके महान क्षुद्र एवं संकीर्ण सीमाओं में आबद्ध नहीं, उसके मूल तत्व तो समस्त संसार के सभी देशों में समान है।"[६]

मानव सदैव से प्रगतिशील रहा है, वह एक सीमित दायरे में ग्रस्त एवं आबद्ध नहीं अपितु उसकी भावनाएं, इच्छाएं तो विस्तृत-अति विस्तृत हैं, और इसीके फलस्वरूप वह निरन्तर उन्नति करता जा रहा है, संस्कृति इसका मूल उत्स है। मानव सदैव से प्रकृति एवं समाज के अनवरत प्रभावों एवं संस्कारों से प्रभावित होता रहता है और इन सबके समष्टिगत रूप को हम 'संस्कृति' शब्द से सम्बोधित कर सकते हैं। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के अनुसार "आर्थिक व्यवस्था, राजनैतिक संगठन, नैतिक परम्परा और सौन्दर्य बोध को तीव्रतर करने की योजना, ये सभ्यता के चार स्तम्भ हैं। इन सबके सम्मिलित प्रभाव से संस्कृति बनती है।"[७] 'समग्रत समाजोन्नयन' के लिए मानव विभिन्न रूप से धर्म, कला, सेवा, भक्ति, एवं योगमूलक अनुभूतियों के माध्यम से जिस महान् परिपूर्ण सत्य के दर्शन कर पाता है, उसे ही हम संस्कृति शब्द से व्यक्त करते हैं। संस्कृति का मूल उत्स सामाजिक मानस मन है, बुद्धि उसकी परिचायिका है, एवं विश्व को श्रेष्ठतर बनाने एवं मानव को पशुत्व से मुक्ति दिलाकर परिपूर्ण सत्य के दर्शन कराना उसका लक्ष्य है। इस दृष्टि से समाज एवं संस्कृति का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है। बिना समाज के संस्कृति का अस्तित्व नहीं, एवं बिना संस्कृति के समाज पशु है, अशक्त है व लक्ष्य भ्रष्ट है।

काव्य का सम्बन्ध भी सीधा मानस मन से है। भारतीय वाङ्मय में 'कवि' शब्द को उत्कट महत्त्व दिया गया है। ऋग्वेद में आत्मा के लिए 'कवि' शब्द का प्रयोग हुआ है,[८] जिससे उपर्युक्त कथन की पुष्टि होती है, यही नहीं

६—कल्याण-हिन्दू संस्कृति अङ्क पृष्ठ ३८०

७—अशोक के फूल—डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी

८—"कवि केतुर्धासिमानुमद्ये।" ७/६/२

संस्कृति की आधार शिला यही बुद्धि है। वह जड़ नहीं चेतन है, रूढ़िवाद से ग्रस्त नहीं, प्रगतिशील है। शुभ, शुद्ध अथवा सुसम्बद्ध करने की जो क्रिया है वह है 'संस्कार', और जिसका संस्कार होता है, वह है 'संस्कारी'। इसी संस्कार समुच्चय का स्थायीभाव है 'संस्कारिता' और इसी 'संस्कारिता' के देशगत एवं विश्वगत व्यापक प्रस्तार की संज्ञा है संस्कृति। मानव सदैव प्रगतिशील है, उसकी प्रगतिशीलता प्रकृति और मानव के असंख्य संस्कारों से प्रभावित होती रहती है, उन सबके समष्टिगत स्वरूप को हम 'संस्कृति' से विभूषित कर सकते हैं। तात्त्विक दृष्टि से भी 'संस्कृति' शब्द के 'कृ' के पहले सकार है, जिसका अर्थ है समाज एवं अलंकार। फलतः जिस कर्म से समाज की शोभा एवं शीलता बढ़ती है, वह संस्कार है—संस्कृति है।

भारतीय दर्शन में उनके वाचक और बोधक रूप में दो शब्द सर्वाधिक उल्लेखनीय हैं। 'अद्वैत' और 'समन्वय'। इन दोनों शब्दों के अन्तर्भाव में साध्य-साधन के रूप में संस्कृति प्रतिष्ठित है। 'संस्कृति' के जीवन का ध्येय अद्वैत की सिद्धि है, और उसका साधन समन्वय की नीति का नैष्ठिक अनुष्ठान।[2] क्योंकि हम संस्कार जो मानव-जीवन का उन्नति-गवाक्ष है—एवं संस्कृति में भेद करके देख ही नहीं सकते, दोनों एक ही धातु से निष्पन्न हैं। दोनों में 'सम उपसर्ग' है, तथा संस्कारों की घनीभूत रूप से केन्द्रीय-भूत समष्टि-समूह ही संस्कृति है। इसका सामूहिक चेतना से, मानसिक शील और शिष्टाचारों से तथा मनोभावों से मौलिक सम्बन्ध है।[3] "मनुष्य नाना प्रकार की धार्मिक साधनाओं, कलात्मक प्रयत्नों व सेवाभक्ति तथा योगमूलक अनुभूतियों के भीतर से उस महान् सत्य के व्यापक और परिपूर्ण रूप को क्रमशः प्राप्त करता जा रहा है, जिसे हम 'संस्कृत' शब्द द्वारा व्यक्त करते हैं।[4]

मन पर प्रतिष्ठित होने के कारण मन सदृश संस्कृति का प्रसार भी व्यापक है। संस्कृति की सर्वोत्तम उपलब्धि है, जिस को उन्नति पथ पर अग्रसर करने में योग देना।" संस्कृत ध्वनि यह है, जिससे मनोवृत्ति [illegible] [illegible] पर [illegible] नहीं [illegible], अपितु जीवन की [illegible] [illegible] [illegible] प्रश्नों के [illegible] है [illegible] [illegible] [illegible] है।[5]

वस्तुतः संस्कृति का सीधा संबंध उन मूल्यों से है, जो विश्व को सुन्दर, रुचिकर एवं श्रेष्ठतर बनाने में क्रियाशील रहते हैं। संस्कृति का वास-स्थान मानस-हृदय है, वह जब बुद्धि के सहयोग से जीवन की जटिल समस्याओं को सुलझाता हुआ मानवता की ओर बढ़ता है, तभी संस्कृति का सच्चा स्वरूप स्पष्ट होता है, परन्तु यह मानवता अपनी स्वार्थ-सिद्धि के लिए नहीं, अपितु विश्वमैत्री का सन्देश देने वाली होनी चाहिये। "संस्कृति एक अत्यन्त जागतिक भाव और सार्वभौम तत्व है, उसके सनातन क्षुद्र एवं संकीर्ण सीमाओं में आबद्ध नहीं, इसके मूल तत्व तो समस्त संसार के सभी देशों में समान हैं।"[6]

मानव सदैव से प्रगतिशील रहा है, वह एक सीमित दायरे में ग्रस्त एवं आबद्ध नहीं अपितु इसकी भावनाएँ, इच्छाएँ तो विस्तृत-प्रति विस्तृत हैं, और इसीके फलस्वरूप वह निरन्तर उन्नति करता जा रहा है, संस्कृति इसका मूल उत्स है। मानव सदैव से प्रकृति एवं समाज के असंख्य प्रभावों एवं संस्कारों से प्रभावित होता रहता है और इन सबके समष्टिगत रूप को हम 'संस्कृति' शब्द से सम्बोधित कर सकते हैं। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के अनुसार "आर्थिक व्यवस्था, राजनैतिक संगठन, नैतिक परम्परा और सौन्दर्य बोध को उत्कृष्टतर करने की योजना, ये सभ्यता के चार स्तम्भ हैं। इन सबके सम्मिलित प्रभाव से संस्कृति बनती है।"[7] 'समग्र समाजोन्नयन' के लिए मानव विभिन्न रूप से धर्म, कला, सेवा, भक्ति, एवं योगमूलक अनुभूतियों के माध्यम से जिस महान् परिपूर्ण सत्य के दर्शन कर पाता है, उसे ही हम संस्कृति शब्द से व्यक्त करते हैं। संस्कृति का मूल उत्स सामाजिक मानस मन है, बुद्धि उसकी परिचायिका है, एवं विश्व को श्रेष्ठतर बनाने एवं मानव को पशुत्व से मुक्ति दिलाकर परिपूर्ण सत्य के दर्शन कराना उसका लक्ष्य है। इस दृष्टि से समाज एवं संस्कृति का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है। बिना समाज के संस्कृति का अस्तित्व नहीं, एवं बिना संस्कृति के समाज पंगु है, अशक्त है व लक्ष्य भ्रष्ट है।

काव्य का सम्बन्ध भी सीधा मानस मन से है। भारतीय वाङ्मय में 'कवि' शब्द को उत्कृष्ट महत्व दिया गया है। ऋग्वेद मे आत्मा के लिए 'कवि' शब्द का प्रयोग हुआ है,[8] जिससे उपर्युक्त कथन की पुष्टि होती है, यही नहीं

६—कल्याण-हिन्दू संस्कृति अङ्क पृष्ठ ३८०

७—अशोक के फूल—डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी

८—"कवि सेतुधानिमानुमये।" ७/६/२

अनेक छायाचित्र घूमते रहते हैं, अनुभूति के कुछ विशेष क्षणों में उनको अभिव्यक्त करना उसके स्वास्थ्य के लिये अनिवार्य हो जाता है, अभिव्यक्ति की यही अनिवार्यता काव्य की जननी है।[13]

काव्य निःसन्देह आत्मा की आनन्दमयी श्रेय अभिव्यक्ति है, वह ऊपर का सरल-तरल-सा फेन नहीं, अपितु गहरे का अमूल्य मुक्तक है, उसे बुद्धि का सहयोग प्राप्त है, आत्मा का उसे वरदान प्राप्त है। वह आत्मा की संकल्पात्मक अनुभूति है, जिसका सम्बन्ध विश्लेषण, विकल्प या विज्ञान से नहीं है, वह एक श्रेयमयी प्रेय रचनात्मक ज्ञानधारा है। विश्लेषणात्मक तर्कों से और विकल्प के आरोप से मिलन न होने के कारण आत्मा की मननक्रिया जो वाङ्मयरूप में अभिव्यक्त होती हैं, वह निःसन्देह प्राणमयी सत्य के उभय लक्षण प्रेय और श्रेय दोनों से परिपूर्ण होती है।[14] प्रसादजी ने काव्य को आत्मा की संकल्पात्मक अनुभूति कहकर काव्य और आत्मा का सम्बन्ध सुदृढ़तम कर दिया है। श्रेय और प्रेय दोनों ही आत्मा के अभिन्न अंग है फलतः काव्य के प्रेय में परोक्षरूप से श्रेय निहित करता है। महादेवी भी काव्यानन्द को ऐन्द्रीय सम्वेदनों में न ढूँढकर प्राण-चेतना के उस सूक्ष्म धरातल पर ढूँढती हैं, जहाँ बुद्धि और चित्त, ज्ञान और अनुभूति का पूर्ण सामञ्जस्य हो जाता है, और यहीं आकर काव्य एवं संस्कृति समानमार्गी हो जाते हैं।

प्रश्न उठता है कि काव्य का मूल उत्स हम किसे मानें? उत्तर में यदि इसे हम एक ही शब्द में व्यक्त कर देना चाहें, तो वह होगा-"आत्माभिव्यक्ति" वह पौष्टिक खुराक है, जहाँ से काव्य जीवन-पोषण प्राप्त करता है। अरविन्द ने इसे अपने एक पत्र में स्पष्ट करते हुए लिखा है, 'कवि उच्चतम या सर्वाधिक मुक्त क्षणों में अपने बाह्यसचेत मानस द्वारा नहीं लिखता, वरन् अन्तः प्रेरणा से देवताओं के प्रवक्ता की भाँति लिखता है।'

दर्शन के माध्यम से यदि इसे समझना चाहें, तो प्रतीत होगा कि इस संसार में सिर्फ दो ही तत्त्वों का अस्तित्व है, एक को हम आत्मा कहते हैं दूसरे को अनात्म। इस आत्म और अनात्म का विरोध भी दो दिशाओं में होता है—अद्वैतवाद की ओर से तथा भौतिकवाद (द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद) की ओर से। 'अद्वैतवाद प्रकृति अथवा अनात्म को भ्रम कहता है, और भौतिकवाद आत्म को प्रकृति की ही उद्भूति मानता हुआ उसकी स्वतन्त्र सत्ता स्वीकार नहीं करता"""अद्वैतवाद साधना और व्यवहार के लिये

१३-विचार और अनुभूति-डॉ० नगेन्द्र-पृष्ठ ९

१४-काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध जयशंकरप्रसाद-पृष्ठ ३२

अनेक छायाचित्र घूमते रहते हैं, अनुभूति के कुछ विशेष क्षणों में उनको अभिव्यक्त करना, उसके स्वास्थ्य के लिये अनिवार्य हो जाता है, अभिव्यक्ति की यही अनिवार्यता काव्य की जननी है।[13]

काव्य निःसन्देह आत्मा की आनन्दमयी श्रेय अभिव्यक्ति है, वह ऊपर का सरल-तरल-सा फेन नहीं, अपितु गहरे का अमूल्य मुक्तक है, उसे बुद्धि का सहयोग प्राप्त है, आत्मा का उसे वरदान प्राप्त है। वह आत्मा की संकल्पात्मक अनुभूति है, जिसका सम्बन्ध विश्लेषण, विकल्प या विज्ञान से नहीं है, वह एक श्रेयमयी प्रेय रचनात्मक ज्ञानधारा है। विश्लेषणात्मक तर्कों से और विकल्प के आरोप से मिलन न होने के कारण आत्मा की मननक्रिया जो वाङ्मयरूप में अभिव्यक्त होती है, वह निःसन्देह प्राणमयी सत्य के उभय लक्षण प्रेय और श्रेय दोनो से परिपूर्ण होती है।[14] प्रसादजी ने काव्य को आत्मा की संकल्पात्मक अनुभूति कहकर काव्य और आत्मा का सम्बन्ध सुदृढ़तम कर दिया है। श्रेय और प्रेय दोनों ही आत्मा के अभिन्न अंग हैं फलतः काव्य के प्रेय मे परोक्षरूप से श्रेय निहित करता है। महादेवी भी काव्यानन्द को ऐन्द्रीय सम्वेदनों में न ढूंढ़कर प्राण-चेतना के उस सूक्ष्म धरातल पर ढूंढती हैं, जहाँ बुद्धि और चित्त, ज्ञान और अनुभूति का पूर्ण सामञ्जस्य हो जाता है, और यहीं आकर काव्य एवं संस्कृति समानमार्गी हो जाते हैं।

प्रश्न उठता है कि काव्य का मूल उत्स हम किसे मानें ? उत्तर मे यदि इसे हम एक ही शब्द मे व्यक्त कर देना चाहें, तो वह होगा–"आत्माभिव्यक्ति" वह पौष्टिक खुराक है, जहाँ मे काव्य जीवन–पोषण प्राप्त करता है। अरविन्द ने इसे अपने एक पत्र में स्पष्ट करते हुए लिखा है, 'कवि उच्चतम या सर्वाधिक मुक्त क्षणो में अपने बाह्यसचेत मानस द्वारा नहीं लिखता, वरन् अन्तः प्रेरणा से देवताओ के प्रवक्ता की भाँति लिखता है।"

दर्शन के माध्यम से यदि इसे समझना चाहें, तो प्रतीत होगा कि इस संसार में सिर्फ दो ही तत्त्वों का अस्तित्व है, एक को हम आत्मा कहते हैं दूसरे को अनात्म। इस आत्म और अनात्म का विरोध भी दो दिशाओं मे होता है–अद्वैतवाद की ओर से तथा भौतिकवाद (द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद) की ओर से। 'अद्वैतवाद प्रकृति अथवा अनात्म को भ्रम कहता है, और भौतिकवाद आत्म को प्रकृति की ही उद्भूति मानता हुआ उसकी स्वतन्त्र सत्ता स्वीकार नही करता ''''''अद्वैतवाद साधना और व्यवहार के लिये

१३–विचार और अनुभूति–डॉ० नगेन्द्र–पृष्ठ ९
१४–काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध जयशंकरप्रसाद–पृष्ठ ३८

जीवन और जगत् की महत्ता को अनिवार्यतः स्वीकार कर लेता है और उधर भौतिकवादी भी आत्मा को चाहे वह कितना ही, भौतिक और अपृथक् क्यों न माने, व्यावहारिक जीवन में व्यक्ति और वातावरण के पार्थक्य को तो मानता ही है। साहित्य का सम्बन्ध दार्शनिक अतिवादों से न होकर जीवन से है, अतएव इसके लिए यह द्वैत स्वीकृति अनिवार्य है। चाहे इसे आप जीवन और प्रकृति कह लीजिये या व्यक्ति और वातावरण, आत्मा सतत प्रयत्नशील है वह अनात्म के द्वारा अपने को अभिव्यक्त करने का सतत प्रयत्न करता है, इसी को हम जीवन कहते हैं। अनात्म अनेक रूपवाला है, उसी के विभिन्न रूपों के अनुसार यह प्रयत्न भी अनेक रूप धारण करता रहता है—दूसरे शब्दों में आत्माभिव्यक्ति के भी अनेक रूप होते हैं, इसमें आत्म की जो अभिव्यक्ति शब्द और अर्थ के द्वारा होती है, उसी का नाम काव्य है।''[१५]

कवि जब अनात्म से मुक्त होकर विशुद्ध 'आत्म' बन जाता है, तो वह जो भी देखता है, समझता है, व्यक्त करता है, उसे एक नवीन दीप्ति एवं नवीन सांकेतिकता से व्यक्त होता है। आंग्ल कवि वर्ड्सवर्थ ने इसकी सुन्दर झाँकी प्रस्तुत की है—

"......................that blessed mood
In which the burthen of the mystery.
In which the heavy and weary weight.
Of all this unintelligent world
Is lightened that screne and; blessed ,mood.
In which the affections gently lead us on
Until the breath of this carporal frame
And even the motion of our human blood
Almost suspended, we are laid asleep
And become a living soul.

—Tintern Abbey

फलतः कवि जब सत्वोद्रेक अनुभव करता है, तो उसका कवि 'आत्म' से पूर्णतः साक्षात्कार कर अमर काव्य की रचना कर देता है, जो युगों-युगों तक मानव और समाज को अमरत्व प्रदान करता रहता है। स्पष्टतः काव्य का आधार मानस धरातल ही है। कलाकृति चाहे वह शब्दों में हो, या संगीतात्मक ध्वनियों में, चाहे रंगों और रेखाओं में हो या स्थापन में किन्तु

१५ डॉ० नगेन्द्र के श्रेष्ठ निबन्ध–सं० भारतभूषण अग्रवाल, पृष्ठ ४४

उससे कलाकार के अन्तर्जगत् का निकटतम सम्बन्ध रहता है। प्रत्येक कविता या चित्र या गीत का उद्गम कलाकार के मानस से होता है।[16] महावीरप्रसाद द्विवेदी ने भी काव्य को अन्तःकरण की वृत्तियों का चित्र कहा है।[17]

संस्कृति एवं काव्य का मूलोद्गम देखने से विदित होता है कि दोनों का मूल उद्गम मानस धरातल है। संस्कृति का मूल स्थान मानस हृदय है, और मानस मन की छन्दोबद्ध अभिव्यक्ति ही काव्य है।

संस्कृत का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है। वह जड़ वस्तु नहीं है। उसका दायरा भी सीमित नहीं, अपितु संस्कृति तो मनुष्य के भूत, वर्तमान और भावी जीवन का सर्वाङ्गीण प्रकार है। हमारे जीवन का ढंग हमारी संस्कृति है। विचार और कर्म के क्षेत्र में राष्ट्र का जो सृजन है, वही उसकी संस्कृति है। संस्कृति मानवीय जीवन की प्रेरक शक्ति है, वह जीवन की प्राणवायु है, जो उसके चैतन्य भाव का साक्षी है। संस्कृति विश्व के प्रति अनन्त मैत्री की भावना है। *संस्कृति के द्वारा हम दूसरों के साथ सन्तुलित स्थिति प्राप्त करते हैं*……विश्व-आत्मा के साथ उच्च संस्कृति का सर्वोत्तम लक्षण है। संस्कृति के द्वारा हम स्थूल भेदों के भीतर व्याप्त एकत्व के अन्तर्यामी सूत्र तक पहुँचने का प्रयत्न करते हैं और उसे पहिचान कर उसके प्रति अपने मन को विकसित करते हैं।[18]

संस्कृति की उपयोगिता मानव-मन-मस्तिष्क का संस्कार-परिष्कार का उसका क्षेत्र सम्पादन करना है। असल में संस्कृति जिन्दगी का एक तरीका है, और यह तरीका सदियों से जमा होकर उस समाज में छाया रहता है, जिसमें हम जन्म लेते हैं।[19] डॉ० राधाकृष्णन् ने संस्कृति को जीवन को भलीप्रकार समझ लेने की क्षमता[20] बताया है, तो डॉ० बलदेवप्रसाद मिश्र ने संस्कृति मानव-जीवन की वह क्रिया तथा वह स्थिति है, जिससे समूचा जीवन सज उठता है,[21] बताया है। वस्तुतः शुभ शुद्ध अथवा सुसम्बद्ध करने

---

१६. मानव मूल्य और साहित्य-रसरञ्जन पृष्ठ १५६

१७. धर्मवीर भारती—श्री महावीरप्रसाद द्विवेदी पृष्ठ ५०

१८. Poetry and Criticism of the Romantic Movement Page-625.

१९. रमाशंकर तिवारी—कवि की विशेषता-आलोचना भाग २१, पृष्ठ ६१

२०. उद्धृत-आलोचना भाग २१ पृष्ठ ६०

२१. आलोचना भाग १८, पृष्ठ ५३ : श्री नारायण मिश्र का लेख

चाहे वह मस्ती सत् हो या असत्, श्रेष्ठ हो या हीन, निम्न हो या उदात्त, आयगो की दृष्टि मे उसे उतना ही आनन्द मिलता है, जितना 'इमोजेन' की सृष्टि में। आचारशील दार्शनिक जिस वस्तु से स्तब्ध होता है, उससे ही छिपकली के समान रंग बदलने वाला कवि प्रसन्न होता है।"[२३] कवि का 'आत्म' कभी भी विनष्ट नहीं होता, बल्कि कवि तो अपने 'आत्म' को ही प्रतिफलित एवं प्रसारित करने के लिए अभिव्यक्ति का माध्यम ग्रहण करता है। सूर अपने आराध्य को "घुटरुन चलत रेनु तन मण्डित" देखने को व्याकुल थे, तो कबीर अपने 'लाल' की 'लाली' का प्रसार सर्वत्र देखने को अभिलाषी। कवि की भूख और प्यास निराली होती है, अतएव उसकी परितृप्ति के लिए वह अपने 'आत्म' की धरती को ही खोदता और खोजता है।[२४] और उससे उत्पन्न अमृतोपम खाद्य सम्पूर्ण विश्व को बाँट तृप्ति का अनुभव करता है।

कवि जब सत्वोद्रेक का अनुभव करता है, तो उस समय वह पूर्णतः सजग रहता है। उसका आत्म क्रियाशील एवं पूर्णोन्नयन रहता है और उस समय जो भी घटना, वस्तु एवं क्षण उसके मानस को आकृष्ट करते हैं, वे उस कवि की अन्तरात्मा से पूर्णतः आप्लावित होकर नवीन अर्थवत्ता से उजागर होते हैं और समाज उसमे अवगाहन कर आनन्द की प्राप्ति--जो कि उसके जीवन की सर्वोत्तम उपलब्धि होती है--करता है। कवि की अन्तश्चेतना मे जितना ही गहरा एवं सत्य प्रकाश होता है, वह समाज को उतनी ही अधिक गहराई के साथ स्पर्श कर सकता है। होमर, दाते, गेटे, शेक्सपियर, तुलसी और सूर सभी की रचनाओं मे युग का प्रतिबिम्ब स्पष्टतः दृष्टिगोचर हुआ है। 'मिडलटन मरी' के अनुसार जीवन और जगत् के विषय मे कवि जो 'रिपोर्ट' प्रस्तुत करता है, उसी की सत्यता पर संसार जहाँ तक वह सुन्दर और रहने योग्य है, अवलम्बित रहता है। हमारे लिए और उसके लिये इस सत्यता का प्रमाण वह स्वयं है।"[२५] फलतः काव्य का समाज से पार्थक्य करके देख पाना संभव ही नहीं है, वह तो एक ऐसी दिव्य वस्तु है, जो समाज का नियमन और संचालन करता है। काव्य मानव-जाति की स्थाई संस्कृति है। वह ऐसा कोश हो जाता है, जिससे प्रत्येक उत्तर पीढ़ी समाज के विकास के

---

२३. देखिये—Poetry and Criticism of the Romantic Movement, Page 625.

२४. कवि की विशेषता—रमाशंकर तिवारी—आलोचना पत्रिका भाग २१ पृष्ठ ६१।

२५. उद्धृत—आलोचना भाग २१—पृष्ठ ७०

साथ धन संचय करती है, सर्वश्रेष्ठ कवि का स्वप्न और उसे व्यंजित करने वाले शब्दों के अर्थ समाज-विकास के साथ उत्तरोत्तर अधिक सुन्दर रूप से आत्मसात होते जाते हैं और मनुष्यमात्र के लिए अनंत काल तक ज्ञान के अक्षय स्रोत बने रहते हैं ।[२६]

वस्तुतः काव्य का आधार मानस मन है, जो बुद्धि से नियमन होकर छन्दों के माध्यम से अभिव्यक्त होकर समाज को श्रेष्ठ बनाने में कार्यशील होता है, ठीक यही बात संस्कृति के लिए लागू है । वह आत्मा की वस्तु है, उसकी आधार-शिला भी मानव-मन में अवस्थित है और जिसका एकमात्र लक्ष्य है—मानव को पशुत्व से मुक्ति दिलाना । काव्य और संस्कृति दोनों का आधार एक है, लक्ष्य एक है, कार्य एक है, दोनों में अविच्छेदाच्छेद सम्बन्ध है । काव्य ही संस्कृति का समष्टिगतरूप है । काव्य में राष्ट्र की स्थायी सांस्कृतिक प्रवृत्तियों का प्रचुर प्रभाव रहता है । इसी को पुष्ट करते हुए प्रसादजी ने कहा है—कि "भारतीय साहित्य में पुरुष-विरह विरल है, और विरहिणी का ही वर्णन अधिक है । इसका कारण है, भारतीय दार्शनिक संस्कृति । पुरुष सर्वथा निर्लिप्त और स्वतन्त्र है—प्रकृति या माया उसे प्रवृत्ति या आवरण में लाने की चेष्टा करती है, इसलिए आसक्ति का आरोपण स्त्री में ही है । नैव स्त्री न पुमानेष न चैवायम नपुंसक" मानने पर भी व्यवहार में ब्रह्म पुरुष है, माया स्त्री धर्मिणी"[२७] फलतः काव्य और संस्कृति को प्रथक्-प्रथक् करके देखना संभव ही नहीं है । काव्य का आधार संस्कृति है, और संस्कृति का आधार काव्य है ।"

२६—आलोचना—भाग १८ पृ० ५३ पर श्रीनारायण मिश्र का लेख ।
२७—काव्य, कला और अन्य निबंध—जयशंकरप्रसाद पृ० ८१

नयी कविता : विकास के चरण

सुरेश भटनागर

पूँजीवाद के पतन-काल में यूरोप तथा अमरीका में सामाजिक प्रेरणा की नवीनता समाप्त हो गयी और तत्कालीन कलाकारों ने रूप तथा कौशल के प्रयोगों से अभावों की तुष्टि की। टी० एस० इलियट ने फ्रांस की प्रतीकवादी शैली और सत्रहवीं सदी की धार्मिक परम्पराओं को जोड़कर एक दुरूह पद्धति का निर्माण किया। आई० एस० रिचर्ड्स जैसे आलोचकों ने उसे प्रश्रय दिया। इस सन्दर्भ में ध्यान रखने योग्य बात यह है कि विदेशी साहित्य में प्रयोगवादी कलाकार सामाजिक उत्तरदायित्व की अवहेलना करते हुए संस्कृति की प्रशस्त धारा से अलग हो जाते हैं। नये छन्द, रूप तथा भावों को नयी शैली में पिरो कर आकर्षक बनाना ही उनका प्रमुख कार्य होता था। सामाजिक कुण्ठाओं एवं निराशा का चित्रण कर वे अपने कर्त्तव्य की इतिश्री समझ लेते थे। हाँ, ऐसे समय में उनकी सहायता करने के लिए फ्रायड आजाते हैं और 'आडीपस कम्पलेक्स' के माध्यम से द्रवित कामेषणाओं को साहित्य का सृजन-स्रोत मान लेते हैं।

सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रियायें सोचने-विचारने के तौर-तरीकों पर भी अपना प्रभाव डालती हैं। हिन्दी में भी यह परिवर्तन आया। १९३६-३७ ई० के लगभग जब छायावादी गीतकार मात्र छाया के पीछे जीवन का पाथेय खोज रहा था उस समय प्रगतिवाद युग चेतना को साथ लेकर आगे बढ़ा। इसके प्रभाव से तत्कालीन मूर्धन्य कवि 'पन्त' जी भी अछूते न रह सके।

विभिन्न युगों को पृथक् करने वाली एक प्रधान वस्तु है—परिवेश या वातावरण की भिन्नता। यह परिवेश केवल भौतिक दृष्टि से भी बदलता रहता है। १९४३ ई० में प्रकाशित 'तार-सप्तक' से हिन्दी कविता की इस नयी धारा का परिवेश, मानदण्ड तथा मान्यतायें

सभी कुछ बदली-सी प्रतीत होती हैं। इन्हीं बदलती मान्यताओं की स्थापना करते हुये 'तार-सप्तक' के सम्पादक 'अज्ञेय' का कहना है—
"प्रयोग सभी कालों के कवियों ने किये हैं, यद्यपि किसी एक काल में किसी विशेष दिशा में प्रयोग करने की प्रवृति स्वभाविक ही है; किन्तु कवि क्रमशः अनुभव करता आया है कि जिन क्षेत्रों में प्रयोग हुए हैं उनसे बढ़कर अब इन क्षेत्रों को अन्वेषण करना चाहिये जिन्हें अभी तक छुआ नहीं गया है या जिनको अभेद्य मान लिया गया है।

तार-सप्तक पृष्ठः ७५

अतः यह तो स्पष्ट ही है कि पुरानी रूढ़ियाँ तोड़ने का निर्णय कर लेने के पश्चात् ही प्रयोगवाद आरम्भ हुआ। इसे यों भी कहा जा सकता है—
"आधुनिक कविता हमारे नये जीवन की उपज है। इस नयी कविता की लहर भी परिचर्या प्रभाव से हमारे साहित्य में अग्रसर हुई। हमें यह भी नहीं भूलना चाहिये कि अदृष्ट प्रेम की छायावादी प्रतीकात्मकता की दुरूहता के प्रति विरोध का इससे अधिक अच्छा अवसर हो भी क्या सकता था। फलतः वैचारिकता का आश्रय लेकर प्रगति और प्रयोग का जो मार्ग खुला, वह आज की हिन्दी में नयी कविता तथा आधुनिक कविता के नाम से रूढ़ हो चला है।"
विकास क्रम की इस शृंखला के विषय में डॉक्टर देवराज कहते हैं—'हिन्दी प्रयोग केवल युग से प्रभावित नहीं है, वह बहुत हद तक इलियट तथा एज़रापाउण्ड की शैली के अनुकरण से उपस्थित हुआ है।

राही नहीं, राह के अन्वेषी

तार-सप्तक के कवियों में ऐसे भी कवि रहे जिनके स्वर गूँजे अवश्य पर वे प्रयोग की सीमा में न बँध पाये। रामविलास शर्मा, भवानीप्रसाद मिश्र की कविताओं को किसी ने प्रयोगवादी नहीं माना। इसके विपरीत गजानन मुक्तिबोध और शमशेर बार-बार अपने को प्रगतिवादी घोषित करते रहे, पर लोग उन्हें प्रयोगवादी कहने से बाज न आये। डॉक्टर नगेन्द्र ने प्रयोगवादी कवियों की रचनाओं के मूल्यांकन पर सन्देह प्रगट करते हुए कहा कि नयी कवितायें तो मूल्यांकन के मापदण्ड में फिट नहीं बैठती। फिर प्रयोगवादी कवि जीवन और काव्य के घोर विरोधी हैं। यथा—

सुबह यह मन गमगीन था
दोपहर में भी यूं ही गमगीन रहा
शाम हुई—
पर इसकी गमगीनी में फर्क न आया
गोया गम का हिमालय
अपने भारी घुटनों को मोड़
इस मन की छाती पर जम कर बैठ गया हो।

— शरद देवड़ा

इस भ्रामक धारणा का स्पष्टीकरण करते हुए अज्ञेय ने फिर कहा—'प्रयोगवादी कवि किसी एक स्कूल के नहीं है अभी राही हैं, राही नहीं राह के अन्वेषी।'

धारणायें प्रयोगों की, भ्रम जन-साधारण का। डॉक्टर रांगेय राघव ने प्रयोग का विश्लेषण करते हुए कहा है—'वह पुरानी कला को नये छन्दों में प्रकट करता है। प्रकृतिवाद के रूप में वह नग्नसामान्य का प्रचार है। ध्वनिवाद के रूप में वह अभ्यास है। प्रतीकवाद के रूप में वह साधारणीकरण की सामान्य भाव-भूमि का त्याग है। अन्तश्चेतना के रूप में वह केवल मौनवाद का अध्ययन है'(प्रगतिशील साहित्य के मान—१५६, पृष्ठ—३२८)।

उपर्युक्त कथन से प्रयोगवाद पर लगने वाले लगभग सभी आक्षेपों का परिचय मिल जाता है। यथा—

*प्रयोगवाद ह्रासशील भावना की कविता है।

*वह प्रगतिवाद व प्रगतिशील भावना से अलग है।

*प्रयोगवाद की कुछ कवितायें वाक्यरचना तथा शिल्प की दृष्टि से काफी अटपटी और दोषपूर्ण है। इनमें कवितायें प्रयोग के लिए प्रयोग है।

*प्रयोगवाद कविता के क्षेत्र में नहीं, साहित्य के अन्य रूपों में किसी न किसी रूप में मौजूद है।

इस प्रयोग और प्रयोगशीलता को लेकर जो भ्रम उस समय कवियों में हुआ उससे बचने का उपक्रम तो सभी ने किया, किन्तु शैली तथा भावना में अतिवैयक्तिक होने के कारण वे भी इसमें अछूते न रह सके। इस अतिवैयक्तिकता का विश्लेषण करने के लिये कविता ही को कवि-वक्तव्य कह दिया गया। परिणाम यह हुआ कि साधन को भी साध्य मान लेने पर जिस अनिष्ट की कल्पना की जा सकती, उसकी झाँकी यहाँ भी देखने को मिली। कारण यह कि कवि ने प्रयोग को इष्ट मान लिया। यथा—

अगर कहीं मैं तोता होता
तो क्या होता ?
तोता होता
(आह्लाद से झूम कर)
तो तो तो तो ता ता ता ता
होता होता होता होता —अज्ञेय

यह तो प्रयोग को इष्ट मानने का परिणाम है। डॉ० नगेन्द्र इसे शैली में विद्रोह मानते हैं। छायावाद ने भी तो शैली, शिल्प और वस्तु के क्षेत्र में नये प्रयोग किये थे पर प्रयोगवाद के ब्रह्मा 'अज्ञेय' तो अब अपने रूप में ज्ञेय हो चुके थे। अब उनके सामने अनेक समस्यायें हैं, काव्य विषय की, सामाजिक उत्तरदायित्व की, सम्वेदना के पुनः संस्कार आदि की। वास्तविकता यह है कि प्रयोगवादी कवियों की फौज शैली और शिल्प की समस्या में उलझी हुई है। जीवन से पलायन का विचार उनके मन में आता है और वही तुके-बेतुके रूप में मन की कुण्ठाओं का प्रदर्शन करता है। डॉ० नगेन्द्र ठीक ही कहते हैं—"एक गहन बौद्धिकता इन कवियों पर शीशे की पर्त की तरह जमती जाती है। छायावाद के रंगीन कल्पना वैभव और सूक्ष्म तरल भावना-चिन्तन के स्थान पर यह ठोस 'बौद्धिक चिन्तन का बोझीलापन है।

'प्रतीक' पत्रिका के माध्यम से जो स्थापनायें प्रकाश में आई हैं तथा इसके सप्तक के जो रंग प्रयोगवाद का आया वह 'तार सप्तक' से भिन्न था 'निकष' अर्द्ध वार्षिक, 'नयी-कविता द्विमासिकी में भी प्रयोगवाद का कुछ निखरा हुआ रूप सामने आता है। डॉ० धर्मवीर भारती ने प्रयोगवाद की

दुरूहता के आक्षेप का उत्तर देते हुए कहा है—"प्रयोगवादी कविता में भावना है किन्तु हर भावना के सामने एक प्रश्नचिह्न लगा हुआ है। इसी प्रश्नचिह्न को आप बौद्धिकता कह सकते हैं। सांस्कृतिक ढाँचा चरमरा उठा है और यह प्रश्नचिह्न उसी की ध्वनि मात्र है'। डॉ० भारती ने नये युग के नये प्रतिमानों की स्थापना पर बल देकर रूढ़ियों को तोड़ने का संकेत किया है। इसके विपरीत नन्ददुलारे वाजपेयी का कथन है कि "प्रयोगवादी साहसिक से साधारणतः उस व्यक्ति का बोध होता है, जिसकी रचना में कोई तात्त्विक अनुभूति, कोई स्वाभाविक क्रम-विकास या कोई निश्चित व्यक्तित्व न हो।" जैसे—

आ
मा
आ
ओ
मेरे पास आ री
घड़ी भर के लिए सही
मुझे पी
जी
मेरी कल्पना, मेरी कल्पना, मेरी कल्पना
पी
जी

प्रयोगवादी शैली में गद्यात्मकता अधिक रहती है।

उदाहरणार्थ—

मछुए का
एक जाल
नदी से निकाल कर
धरा हुआ
मेरे इन चिर आदिम स्कन्धों पर
यह मेरा नगर है।
हँसी की एक झालर
टँगी हुई तारों पर

[illegible]

किसके [illegible] जाओगे ?

उधर

मेरा घर है।   —केदारनाथसिंह

प्रयोगवाद में [illegible] भी रहा है। नये बिम्बों तथा प्रतिमानों में उसने अपने पाँवों को [illegible] है। एक उदाहरण—

[illegible]

[illegible]

[illegible] योजना बिहारी   —नागार्जुन

नये 'बिम्ब' तथा 'इमेजिज' की खोज में तो नये कवियों में दौड़ लग गयी। प्रतीक व्यंजना अपूर्व थी उनकी। एक अपूर्व प्रतीक के माध्यम से चमत्कार उत्पन्न करना उन्होंने सरल कार्य समझ लिया था। कुछ हल्कापन उनकी कविताओं में आया। यथा—

कैसे विश्व प्रेम फिर
ध्यावे कोई।
कैसे आशीर्वच
मुदन्तु सर्वे प्रसीदन्तु सर्वे
गावे कोई ?
क्या करें, कहाँ जायें ?
मुँह से यही हाय
निकलता है मेरे
"धत्तेरे ! नास जाये"

निराला, अज्ञेय, मुक्तिबोध, नेमिचन्द्र में इस प्रकार की पीड़ा के दर्शन होते हैं। जबकि इसके विपरीत गिरजाकुमार माथुर, प्रभाकर माचवे मनमौजी प्रतीत होते हैं।

नवीन विकास बोध और नया आयाम

इसमें सन्देह नहीं कि अपनी भाव-परिधि, अपनी शिल्प-सज्जा, अपनी भाषा और अपनी भाव-व्यंजना में 'नयी कविता' पुरानी कविता से बहुत भिन्न है। विचारकों का कहना है कि इस कविता ने अपने समकालीन युग की वास्तविकता को उसकी पूरी जटिलता में ग्रहण करने की चेष्टा की है और

कितनी तेजी से संचरण करने वाला है यह युग। धर्म, दर्शन, नीति, ज्ञान, विज्ञान सभी क्षेत्रों में पुरानी मान्यतायें और भावभूमियाँ कितनी तेजी से ध्वस्त हो गई हैं, व्यस्ततायें कितनी बदल गई हैं, उसकी अनिवार्य छाप काव्य की भावभूमि पर पड़ना स्वाभाविक है।

डॉक्टर धर्मवीर भारती ने आधुनिक युग और नयी कविता के विकास बोध का नया आयाम स्थापित करने की जो सीमायें निर्धारित की, उससे एच० वी० रूथ के इस कथन का समर्थन मिलता है—"एक अद्वितीय साहित्य का उदय हुआ, जिसका आकलन करना असाधारण रूप से कठिन है। किन्तु जिसको जाँच-परखने की अदम्य इच्छा होती है।" क्या यह सब अनेक अनियोजित असम्बद्ध प्रयोगों का वाङ्मय मात्र सिद्ध होकर रह जायेगा ? यदि हम चाहेंगे कि परम्परागत स्कूली आलोचना के अनुसार उनको वादों-वर्गों में बाँधें तो वह शायद हमे अनियोजित लगेगा, लेकिन इस प्रकार की सम्मते बजाय हमे इसमे मिलेंगे—अनुमान, संकेत, प्रयोग, साहसिक अभियान जो पहले चाहे अनुत्तरदायी लगें लेकिन धीरे-धीरे अन्वेषण की प्रकृति उनमें पहिचानी जा सकती है जो इस युग की व्यापक प्रकृति रही है।

प्रयोग की राह को लाँघकर अब कविता मे कुछ प्राजलता, स्पष्टता आ गयी है। 'नई कविता' पुरानी धारा की प्रतिक्रिया स्वरूप काव्य क्षितिज पर उदित हुई है। मानवीय मूल्यों और उनकी कसौटी 'मानवता' के विभिन्न रूप, धर्म, व्यक्ति, वैयक्तिता, अस्तित्व, उर्ध्वमानवता, सामूहिक मानवता तक के सभी पहलुओं को नयी कविता के नये आयाम ने अपने मे समेटा है। उसमें पहले जैसा विकृत, व्यंग्य और बुद्धिवादी रूप नहीं मिलता। वैचित्र्य-प्रियता उसमे अवश्य है और उसमें अनुभूति के प्रति ईमानदारी भी मिलती है। भावतत्वों और काव्यानुभूति के मध्य रागात्मक तत्त्वों का अस्तित्व भी उसमें मिलता है। प्रयोगवाद के प्रथम चरण मे साधारणीकरण का अभाव, उप-चेतना मन के खण्डों का यथावत् चित्र का आग्रह, काव्य के उपकरणों एवं भाषा के एकान्त वैयक्तिक और असंगत प्रयोग मिलते थे। पर सुधरे रूप मे नयी कविता के दो रूप प्रकट होने लगे—समाजवादी यथार्थवाद और मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद। कुछ कवियों में दोनों का समन्वय भी मिलता है। फिर प्रयोगों की यह परम्परा जब आगे बढ़ जाती है तो 'अज्ञेय' को कहना पड़ता है, "जो अपने आप में इष्ट नहीं है, वह साधन है जिसे कवि प्रेषित करता है। दूसरे वह उस प्रेषण की क्रिया का और दोहरा साधन है, क्योंकि एक तो वह उस सत्य को जानने का साधन है जिसे कवि प्रेषित करता है, दूसरे वह

रात है
सो गयी दुनिया थकन से चूर
नींद में भरपूर
कुछ क्षणों को
जिन्दगी की विषमता
कटुता हुई है दूर
एक सी आँखें सभी की
एक सी है रैन
जागती आँखें उसकी
है न जिसको चैन
मैं नहीं यह चाहता
सोता रहे जग
हो सदा ही रैन
चाहता हूँ किन्तु कर्मठ दिवस में भी
नींद सा हो चैन।

—गिरिजा कुमार माथुर

नये आयाम में 'सिम्बोलिज्म' और 'इमेजिज' का जन्म हुआ और चित्रकला में इसे 'इम्प्रेशेनिज्म' कहा गया। प्रतीक तथा प्रतिभावों का संयोग आज की हिन्दी कविता की एक बहुत बड़ी विशेषता है—

कोई एक
हृदय पर खटखटाये
स्नेह बोल दो
सुना जाये
जननी, जनक, भार्या भगिनी
चाहे जिस रूप में आये
पर
यदि बन्धु भाव से गले लगाए
तो कसम मुझे
जो ख्याल तक किसी और का आए

—बलवन्त मराल

कवि पर आक्षेप लगाया जाता है कि वह भौतिकवाद की चार दीवारी से परे प्रगति की कल्पना नहीं करता, पर ईमानदारी की बात यह है कि कवि प्रकृति के प्रति अधिक ईमानदार रहा है—

सतपुड़ा के घने जंगल
नींद में डूबे हुए से
ऊँघते अनमने जंगल
झाड़ ऊँचे और नीचे
चुप खड़े है कास चुप है
मूक शाल, पलाश चुप है
तो धँसो इनमें
धँस न पाती हवा इनमें
सतपुड़ा के जंगल
ऊँघते अनमने जंगल।

अब यो कहना उचित होगा कि स्वाधीनता के बाद काव्य का संधि-युग आया और उसमें प्रयोग की दिशा भी निश्चित हो गई। यद्यपि जनता और आलोचक दोनों ही उस पर विश्वास नहीं कर पाये, फिर भी वैज्ञानिक प्रगति से प्रभावित होकर कवि साहित्य में प्रकृति का अभाव अनुभव कर भौतिक प्रतीकों से प्रकृति के अभाव को पूरने लगे। प्रयोगवादी कवियों ने

प्रगति और प्रयोग के चौराहे पर संघ की घोषणा करदी और डॉक्टर जगदीश गुप्त ने युग-पथ संधि के मार्ग पर निरन्तर चलते रहने को कहा—

सुनो बात
रात
झिल्ली तारों से
ओ प्राणी
प्राणों की अवधि पर
चरै वेति
च रै वे ति
च रै वे ति

नयी कविता में बिम्ब-विधान के साथ प्रतीकों को मानवीकरण के रूप में प्रस्तुत करने का भी प्रयत्न होने लगा है। जीवन का लक्ष्य समय के साथ चलना है। उसी की एक झलक—

हम समय हैं
स्वर वही कल जागरण के
संग होंगे
हमीं तो मध्याह्न के मार्तण्ड
सपनों के कुमार हैं
उषा देगी प्यार हमको
गगन देगा बादलों की छाँव
[illegible] से हम निकला
[illegible]

क्योंकि कल हम भी खिलेंगे
हम चलेंगे
हम उगेंगे
और वे सब होंगे
आज जिनको रात ने भटका दिया है ।

—डॉ० धर्मवीर 'भारती'

कुछ काल पूर्व सनातन सूर्योदयी कविता की घोषणा 'भारती' के सम्पादक वीरेन्द्रकुमार जैन द्वारा हुई और इस आशय का एक विस्तृत विवरण उन्होंने मार्च ६२ की 'भारती' में प्रकाशित भी किया। अरविन्द दर्शन से प्रभावित यह घोषणा-पत्र वास्तव में अपने में महत्त्वपूर्ण तो है ही पर उसमें जहाँ पुरानी मान्यताओं को नये क्षितिज में फिट करने का यत्न किया है, वहाँ उसमें लफ्फाजी भी अधिक है, फिर भी नयी कविता का चिन्तन एक कदम और खिसका है।

वास्तविकता यह है कि काव्य का अभिनवीकरण नयी कविता का चोगा पहनकर आया है। उसका रूप पहले प्रयोग में था और अब जब कि उसके मूल्य स्थापित हो गये हैं, उसका कुछ-कुछ रूप उभर चुका है, तब वह नई कविता के रूप में जल जाने लगा है। प्रगति की इस दौड़ में नई कविता को अभी अपने अस्तित्व को बनाये रखने के लिए दौड़ते रहना है। दौड़ने में उसे दो बातों का ध्यान रखना है—जन-विरोधी तथ्यों का परित्याग और सर्वांगीण चित्र उपस्थित करने वाला मानववाद।

नयी चेतना का आग्रह

शंकर "क्रन्दन"

[१]

विगत महायुद्ध के वाद से जो वेचैनी संसार के विभिन्न जन-समूहों की विचार-धाराओं और उनके आचरण के पीछे काम करने लगी है। वह अतीत को पुनर्जीवित करने के लिए नहीं है। यह वेचैनी अतीत के गर्भ से जन्मी जरूर है—तब तक की अनुभूतियों का, यह नतीजा जरूर है। इस वेचैनी ने वर्त्तमान को, जिसका निदान इस वेचैनी का सीधा आधार है, मानव-समाज को सही रास्ते पर लाने के लिये विवश कर दिया है। लेकिन यह यदि [illegible] होती, इसमें [illegible] न होकर केवल वस्तु-स्थिति से पैदा होते [illegible] होता, या उस वस्तु-स्थिति की केवल वाङ्मय [illegible] —हतोत्साह मन का चीत्कारमात्र बनकर [illegible] वर्त्तमान और उनकी अभिव्यंजना के [illegible] है। यह उसकी भविष्य को बनाने की, भविष्य [illegible] की कोशिश है। यह जो नया समाजवादी [illegible] नये ढाँचे के लिए ढहते पूँजीवादी ढाँचों से [illegible] है, यही संसार-व्यापी, सौ तरह से व्यक्त होने [illegible] का हाहाकार मात्र नहीं रहने देता, उसे प्रबुद्ध [illegible] आन्दोलन का रूप दे रहा है।

[illegible] चेतना की अभिव्यंजना अनेकानेक माध्यमों में जारी है। [illegible] की कमी नहीं होती। यदि चेतना है तो हजार नये माध्यमों [illegible]। पुराने माध्यमों को लाँघकर, नये माध्यमों में बोलेगी। माध्यमों [illegible] होकर आज की बेचैनी की नवीन चेतना अभिव्यक्त हो रही [illegible] है? लेकिन जहाँ अनेकानेक माध्यमों में प्रकट होनेवाली [illegible] व्यापकता और उसकी जीवनशीलता का प्रमाण है, [illegible] की बाढ़ का पूरा उपयोग किये बिना ही इस नए- [illegible] है। इसलिये जरूरत है, सर्वमान्य [illegible]

हमारे माध्यमों को इस नयी जीवन-चेतना के अग्नि-प्रवाह में घुल-मिलकर नये सुरों से बज उठने की। इतनी व्यापक इस जन-चेतना के पारखी को आज न केवल नये माध्यमों को लाकर खड़ा करना है, उसे उन पुराने सम्मानित माध्यमों को भी अपने चारों ओर उमड़ने वाले चेतना-प्रवाह का संवाहक बनाना है। हम नहीं चाहते कि हमारी लापरवाही आज उन प्रतिष्ठित माध्यमों को पुराने लीक पर चलने देकर उन्हें पुरानी चेतना के दुराग्रह का अस्त्र-शस्त्र बना रहने दें। प्रतिगामी शक्तियों को क्रियात्मक नयी शक्तियों की जड़ें खोदने के लिए यह लम्बी छूट देने जैसी होगी। पूंजीवादी आर्थिक ढाँचे को उखाड़ फेंकने के लिए जिस तरह उसके सर्व-प्रधान माध्यम राष्ट्रीय हुकूमत का सामाजीकरण अनिवार्य प्रयोग है, उसी तरह सभी वाङ्मय और कलात्म माध्यमों को अपनाकर उन्हें नया स्वरूप देना, उनकी बुनियादी मान्यताओं और स्वीकृतियों का स्वरूप स्थिर कर देना, इस तरह उनके स्वरूप को विकसित कर उन्हें नये शब्दों, नयी वाणी में बोलने की प्रेरणा और नये रास्ते पर चलने के लिए-दर्शन देना भी नयी समाजवादी चेतना को सफल संवाहक देना है, नयी संस्कृति को प्रतिष्ठित करना है, जिसकी जरूरत को संक्रान्तिकाल में नजर-अन्दाज नहीं किया जा सकता। इस तरह जब मानव-समाज में बुनियादी परिवर्तन लाने की कोशिश, जो दुनिया की बेचैनी है — जो दुनिया के आगे सबसे बड़ा सवाल है—जारी है।

तब अपने को प्रगतिशील, जनक्रांतिमय, भविष्य को गढ़ने वाले कहने वाले साहित्यिकों, चित्रकारों या कलाकारों का भी यही एक कर्त्तव्य होता है। इस एक क्षेत्र में साहित्यिक, कलाकार, और जन-क्रांति लाने में समाजवाद संभव करने में सन्नद्ध, जन-आन्दोलन के संवाहक, संचालक, राजनीतिक व्यक्तियों में, किसी दृष्टिकोण का—बुनियादी विचारों—का भेद नहीं रह जाता। भेद भाषा का, अभिव्यक्ति का, चीजों को स्पष्ट करने का, माध्यम मात्र का रह जाता है। ऐसी हालत में साहित्य और राजनीति का पूंजीवाद-युगीन अलगाव संभव नहीं है। पूंजीवाद से पहले भी राजनीति से — राजाओं, दरबारों, संभ्रान्त आदर्श चरित नायकों से भी तो विश्व-साहित्य की गाँठ बँधी थी। अब जब आर्थिक जीवन में भी राजनीति तटस्थता छोड़कर, सक्रिय रूप से प्रवेश कर चुकी है, जो हस्तक्षेप अनिवार्य परिस्थितियों के चलते अपनी व्यापकता और गहराई में बढ़ता चला जायगा ही तो साहित्य को व्यापक अर्थ में राजनीति से अलग रखने की कोशिश तटस्थता नहीं है—पुराने अर्थों, पुरानी चेतना, उपस्थित समाज-सम्बन्धों की स्वीकृति, उनका पोषण ही है। और आज तो राजनीति राजा की नीति नहीं रही,

सारे जन-समाज की नीति बनी हुई है; बल्कि मानव-समाज की नीति बनने के लिए सचेष्ट है। आज हमारी राजनीति, हमारी राजनीतिक चेतना व्यक्ति-विशेष या गुटविशेष को केन्द्र बनाकर चूसने वाली छोटी परिधि नहीं है। बड़ी व्यास वाली, सारे जन-समाज की संवेदनाओं, अनुभूतियों को केन्द्र में रख कर फूलने वाली परिधि बनी हुई है। तब ऐसी अवस्था में साहित्य का, वाङ्मय का, कला का, साहित्यिकों का, कलाकारों का, राजनीति से पृथक् रहने का, तटस्थता बरतने का यह कैसा मान ?

[२]

जिन प्रमुख अनुभूति-स्रोतों से प्रेरित होकर समर्थ कलाकारों ने काव्य, वाङ्मय या कला का सृजन किया, उनमें मुख्य हैं धर्म या धार्मिक दृष्टि—मानवतावाद समर्थ पुरुष या नारी विशेष का आदर्श चरित्र या आश्रयदाता राजा का दरबार; यथार्थ समाज की उपेक्षा कर व्यक्तिगत या वर्ग-आकांक्षा अनुभूति या चेतना की बातें। हमारे साहित्य का भी यह वर्गीकरण स्पष्ट है। सामंतवाद के युग में दरबारी काव्य, दरबारी कला, राजनीति या राज-चरित्र से प्रेरित वाङ्मय फला-फूला। मुसलमानों के आक्रमण के समय वीर योद्धाओं के चरित्र की, जिनकी छाया की जन-साधारण अपेक्षा करता था, बड़ी माँग थी। ये व्यक्ति यदि उस युग के काव्यों के नायक की भूमिका बन सके तो अचरज क्या है ? हिन्दू सामन्तशाही के ढह पड़ने पर नयी मुस्लिम शाहंशाही के अभ्युदय-काल में धर्म के प्रतिक्रियात्मक प्रयोगों के फलस्वरूप धर्म का यथार्थ अध्ययन शुरू हुआ। अन्तिम आश्रयदाता भगवान् की पुकार हुई। ऐसे सन्तों के काव्य से, तत्कालीन समाज प्लावित हुआ, जिन्होंने इन द्वन्द्वों को सुलझाने की कोशिश की। धर्म में प्रविष्ट समता, क्षमा, सहानुभूति की चिरंजीव मानव-भावना-परक चेतना के संवाहक बनकर वे हिन्दू-मुस्लिम समस्या के समाधान में लगे। उन्होंने पुराने आदर्शों को फिर से खड़ाकर हिन्दुओं को हतोत्साह एवं निराश होने से रोका। फिर विकृत सामंतवाद का युग आया। काव्य-प्रतिभा दरबार की प्रतिष्ठा, नायिकाओं, विकृत चेतनाओं से प्रेरणा लेती रही और अन्त में स्वयं विकृत हो गयी। राजा या उसके दरबारियों के मनोरंजन के जरिए राजकीय गौरव की तलाश ही काव्यकला का ध्येय बच रहा।

जब पूँजीवादी युग आया—जो हिन्दुस्तान में देर से आया—तो वह काव्य और कला में उसी ढंग के व्यक्तिवाद का सम्मिश्रण करने में तत्पर हुआ, जो व्यक्तिवाद पाश्चात्य देशों की रोमांटिक और विक्टोरियन युग की ह्रासकालीन

कविताओं में व्यक्त हुआ था। पूंजीवादी सभ्यता व्यक्ति-संबंधी सभ्यता है।
यहाँ हमें तत्कालीन आर्थिक क्षेत्र में प्रचलित अर्थ निर्णय-स्वातंत्र्य की भाँति ही
काव्यानुभूति और कला-सृष्टि भी स्वातन्त्र्य है। वैयक्तिक अनुभवों को काव्यगत
करने की छूट है, उनका निर्व्यक्तिकरण करने की अनिवार्यता नहीं है; औ
इसके अभाव में काव्य का काव्यत्व नहीं रहता। दरबारी काव्य और कल
से यह एक स्तर ऊँचा काव्य है, कला है। क्योंकि यहाँ अपने दरबार—अप
मनोरंजन के लिए कला का सृजन जारी है। सृष्टि स्वतन्त्र है, राजदरबार
लिए परतन्त्र नहीं। फिर भी यह दूसरी तरह का, उसी संकुचित दृष्टिको
का काम है, जिसे हम भूल से नये छाया माया के जालों, रहस्य के तानों-बा
से घेर कर प्रतिष्ठा देते हैं। यही काव्य में रहस्यवाद, छायावाद आदि ना
से पुकारा जाता है। लेकिन वह युग भी निकल गया और वर्ग-चेतना, न
चेतना बनकर आयी। रोटी का सवाल कठिनतर हुआ, सोमें समाज ने क
वर्ग लों और राजनीति का सामाजिक-करण और निर्व्यक्तिकरण हो गय
ऐसी हालत में जब आर्थिक-राजनैतिक चेतनाओं की प्रेरणा ही मानव-सम
की सर्व-प्रमुख प्रेरणा बन गयी, वहाँ कला, वाङ्‌मय, काव्य के स्रष्टाओं
चेतावनी का पीठ भी व्यक्ति नहीं, वे वर्ग और यह उगने वाला वर्ग
समाज बन गया है, उस की चेतनाएँ-अनुभूतियाँ आकांक्षाएँ हो गयी
साहित्य का, वाङ्‌मय का, कला का भी यही सामाजिक-करण है, आज
नयी चेतना से जन-समूह कम्पायमान है, उसका उल्लेख मैं कर चुका हूँ।

आर्थिक पट-भूमि में यह राजनैतिक-सामाजिक चेतना ही अभी
सर्व-प्रधान चेतना है जिसकी प्रतिष्ठा हमें मानव अभिव्यंजना के सम्मा
माध्यमों में करनी है—जिसकी प्रतिष्ठा के लिए हमें नये अस्फुट माध्यमं
खोजना और विकसित करना है।

[३]

इस तरह एक व्यापक अर्थ में साहित्य न तो राजनीति से
कभी रह सका है, न रह सकता है। आज धर्म की वह ताकत नहीं है कि
समाज को नयी चेतना दे, (समाज के बीच की खाइयाँ भरे) वह नयी
जो ऐसा कर सकेगी, उसके आर्थिक और राजनीतिक जीवन की अनु
से पैदा हुई है। अपने भविष्य में विश्वास, भविष्य में प्रतिष्ठाप्य, नये
में विश्वास, उसके लिए समाज के प्रधानवर्ग की सतत प्रयत्नशील
आज के सारे काव्य, सारे वाङ्मय और समग्र कला को अनुप्राणित
सकती है।

जहाँ भी पुराने व्यक्तियों में संश्रयी अनुभूतियों आकांक्षाओं, कल्पनाओं से प्रेरणा लेने की चेष्टा जारी है या पुराने तौर-तरीकों की लीक पीटी जा रही है या उनका समर्थन नये रंगों में जारी है, वहाँ प्रतिगामी ताकतों का चक्र चल रहा है। समाज के नये स्वरों को शान्त और दबा देने की कोशिश जारी है।

[४]

नयी सभ्यता और नयी संस्कृति के समर्थक, उन्हें कल्पना से सम्भव बनाने में तत्पर लोग, जिस क्षेत्र में भी काम कर रहे हैं, एक सम्मिलित मोर्चे के विभिन्न मोर्चे पर काम कर रहे हैं। उस नयी सभ्यता-संस्कृति की कल्पना, उसको प्रतिष्ठित करने की कोशिशों, उसकी अनिवार्यता की ऐतिहासिक प्रक्रियाओं को जान-जानकर उस पर मुग्ध होने का जो आनन्द है, वही आनन्द आज के नवप्रसूत साहित्य, सारे वाङ्मय और कला के मूल में है। उस वाङ्मय और उस कला का रूप अभी बढ़ा ही जा रहा है, उसका स्वरूप अभी स्थिर नहीं हो सका है। उसके मानदण्डों की सदा के लिए, सर्वथा स्थिर करने का दंभ अभी अकाल प्रयत्न है। हम तो अभी मोटी-मोटी बुनियादी कुछेक धारायें, रेखायें, प्रवृत्तियाँ ही पकड़-खींच सकते हैं। ऐसा साहित्य ज्यों-ज्यों बनेगा, त्यों-त्यों उसका सही रूप भी निखरेगा। जिस तरह प्रगतिशील साहित्य, प्रगतिशील राजनीति (कम्युनिष्ट पार्टी की राजनीति) का रूस-स्तवभाग केंचुल-सा पीछे छूट रहा है। सही भारतीय, सामाजिक-चेतनाओं को आत्मसात करने की कोशिश में लगा हुआ है। लेकिन इस बढ़ते हुए अस्फुट, नवीन साहित्य के पीछे जो चेतना है, उसका हमें यह ख्याल कराते रहना है कि वह सब दिशाओं में बहे। कला और वाङ्मय का कोई भी क्षेत्र उससे अछूता न बचे। फिर वह चारोंओर से उस वातावरण की अनुभूतियों से, आकांक्षाओं से जन-मन को भरा करे, जिस वातावरण और जिस व्यवस्था से अलग मानवता का मंगल आज सम्भव ही नहीं। यदि लोक-मंगल ही काव्य का श्रेय है, तो उसी समाज के निर्माण में लगे रहकर ही साहित्य, वाङ्मय या कला लोक-मंगल की सही दिशा में हमें प्रवृत्त कर सकती है।

साहित्य, कला या वाङ्मय केवल दिशा-ज्ञान करलें, यही काफी नहीं है। वे मार्ग-दर्शन करावें यह उनसे अपेक्षित है। उस नये मार्ग के लिये हम एक होकर प्रेरित हों—उस नये मार्ग के लिए हम निःसंशय हों—यही अपने भ[illegible] अपने में, हमारा विश्वास कायम हो और बना रहे यही मानवीय [illegible] का आज कर्त्तव्य है।

छायावाद और रहस्यवाद के मौन निमंत्रणों, जीवन की प्रहेलिकाओं और गुत्थियों से निराश मन की और व्यथाओं से क्या उस भविष्य को गढ़ने में हमें मदद मिलेगी ? रूस और मार्क्स के व्यक्तिगत प्रभाववादी (Impressionist) स्तवगान से ही क्या हम ईश्वर-स्तुति जैसे ही भविष्य-निर्माण की सामर्थ्य पायेंगे ? यह तो समाजवाद के बुनियादी उसूलों को भूलना होगा। साहित्य, वाङ्मय और कला जनता-जनार्दन की बल-राशि, उसके नव चैतन्य भविष्य को व्यक्त करें। साहित्यकार, कलाकार उस नये चैतन्य को पुराने माध्यमों में, नये माध्यमों में, प्रतिष्ठित करें। इस तरह साहित्य और कला को गतिशील गत्यात्मक और सत्यात्मक करें। उनसे प्रतिष्ठित पुराने सत्य को हटाकर उनमें नवीन सभ्यता का वैभव भरें। विजय-पथ पर जाते, राजनीति और अर्थनीति के नये वैज्ञानिक धर्म-बन्धनों से बंधे विशाल जन-समूह की यात्रा का कारण, उसकी प्रगति, उसके ध्येय का सच्चा स्वरूप आज वह सहयात्रियों की हैसियत से प्रस्तुत करें, एक तटस्थ द्रष्टा की हैसियत से नहीं।

व्यक्तिगत आकांक्षाओं, अनुभूतियों को व्यापक सामाजिक आकांक्षा-अनुभूति की चेतना से संतुलित कर उनसे सृष्टि की प्रेरणा लें। नये समाज-सम्बन्धों, नयी सामाजिक व्यवस्था के लिए आज समाज और व्यक्ति दोनों को प्रेरित करें। इस दिशा में लोकमत जाग्रत और लोकबल संगठित करें। इस तरह नयी अस्फुट संस्कृति की ओर मानव-समाज को ले चलें। अतीत का मोह उनमें नहीं चाहिये। परम्परा का भय उनमें नहीं चाहिये। पूंजीवादी या ठेठ रूसी राष्ट्रवादी कला-मूल्यों में साहित्य के मानदण्डों में भी उन्हें आसक्ति नहीं रखनी चाहिये। वह तो आज की नयी चेतना को अभिव्यक्ति दें, वाणी दें। साहित्य का रूप शाश्वत नहीं है। मानव समाज के जगमशील जीवन के समान ही साहित्य भी एक प्रवाह है, एक गति है। साहित्य का शाश्वत पक्ष कोई है तो वह मानव-समाज का मंगल देखना है। मानव भी समाज-परम्परा के रूप में ही शाश्वत है। साहित्यकार, कलाकार इसीलिए अध्यात्म के झमेले से बचे रहें। साहित्य से, कला से आज हमारी मांग सही मार्ग दर्शन की है।

●

परिवर्तन

भागीरथ भार्गव

उन्मुक्त आकाश
धुंधआने लगा है
तेज गति से चलने वाला पवन
रुक सा गया है
यह क्या होता जारहा है ?

आस्थाओं के खेमे
एक के बाद एक
अपने आप उखड़ने लगे हैं
और एक शून्य से भरा आकाश
सामने नजर आने लगा है
यह क्या होता जारहा है ?

वे सभी दिवा-स्वप्न
रंग और अबीर से भरा माहौल
लहरों में उमड़ता-घुमड़ता
गुबारों में डूबने लगा है
यह क्या होता जारहा है ?

परिवर्तन

●

भागीरथ भार्गव

उन्मुक्त आकाश
धुंधलाने लगा है
तेज गति से चलने वाला पवन
रुक सा गया है
यह क्या होता जारहा है ?

आस्थाओं के खेमे
एक के बाद एक
अपने आप उखड़ने लगे हैं
और एक धुन्ध से भरा आकाश
सामने नज़र आने लगा है
यह क्या होता जारहा है ?

ये सभी दिवा-स्वप्न
रंग और अबीर से भरा माहौल
लहरों में उलटता-पुलटता
गुबारों में डूबने लगा है
यह क्या होता जारहा है ?

मैं [illegible]

खिड़कियों पर खिड़कियाँ

ज़मीन [illegible] जाता बहुत

धीरे-धीरे और

जाने आप [illegible] लगता है

यह क्या होता जा रहा है ?

चमकीले पंखों के साथ

इस भरे-पूरे आकाश में

दूर-दूर तक उड़ते गया हूँ

पर एक घने कोहरे में

डूबता जा रहा हूँ

यह क्या होता जा रहा है ?

ब्लू प्रिंट : एक आत्मा

●

प्रकाश माधुरी

धुंएं की लकीर सी,
छरहरी नाजनीन आत्मा,
और उसका मिटता सा, धुंधला सा,
ब्लू प्रिंट—
जिस पर धूलिकण छाए हैं।
जिसका एक आयाम,
इकहरे गौरांग,
बदनों की रेखाओं का,
किसी के अधनंगे सीनों का,
तीती सी मुस्कानों का।
छितराये कोण पर,
उलझी केश-राशि,
सूने नयनों,
और झुंझलाती बातों की लीक उभर आई है।
छिछली आड़ी तिरछी लीकों मे,
सरसराते नोट,
जो दूर दूर बिखरे हैं,
जिन्हें थामने को,
सरकते से पीली चमड़ी मढ़े हाथ,
और उनकी मिटती लकीरें हैं।
और फिर बिन्दुओं के बिम्ब,
जिनमें कभी कभी झांक लेती है,
दिवा-स्वप्नो की सुनहली-सी परछांइयां।

एक शीर्षक : चार कविता

●

त्रिलोक गोयल

[१]

आदमी हिमालय पर खड़ा है !
पूर्व-पश्चिम से,
मौत-जिन्दगी से,
ज्ञान-विज्ञान से,
अपने-पराये से,
रोशनी-साये से,
नये-पुराने से,
अन्दर-बाहर से,
लड़ा है ! लड़ा है !! लड़ा है !!!
दोनों से बिछड़ा है।
हर ओर से पिछड़ा है ।।

[२]

आदमी हिमालय पर खड़ा है ।
बात करता है हवा मे,
किले बनाता है हवा में,
कागज के घोड़े दौड़ता है,
कागज की नाव चलाता है,
चन्द्रलोक में घूमता है ।
फूलों को नही—सितारों को चूमता है ।।

[३]

आदमी हिमालय पर खड़ा है !
वह देश सबसे बड़ा है
जिसके पास मारक मंत्र हो
भस्मासुरी यंत्र हो
जो श्मशान में हँसता हो ।
केवल अपने जीने में विश्वास रखता हो ।
आदर्शों की लाश पर आदमी जीता है ।
दूध का नाम लेकर–रक्त पीता है ।।

[४]

आदमी हिमालय पर खड़ा है ।
पी नहीं है–नशा चढ़ा है ।
एक कहानी है—
'अबे, ओ ! हाथी बेचेगा ?'
बादशाह से बोला यों फकीर ।
चौंके सुन आलमगीर ।।
क्रुद्ध हो देखा ।
हाथी का खरीदार जा चुका था–शेष थी रेखा ।।
यह लकीर बहुत जल्दी जवान हो जाती है
बहुत जल्दी बूढ़ी हो जाती है
हाथी के नीचे कुचले जाते हुए
फकीर ने कहा —
'आदमी सब कुछ है—मगर आदमी नहीं रहा ।।'

डॉ० किंग की हत्या पर एक प्रतिक्रिया

•

बी० एल० 'अरविन्द'

हममें से ही
किसी एक सनकी पागल ने
एक बार फिर
गांधी की हत्या कर दी है
और कर दिया छलनी
उन सब आदर्शों को
जिनके खातिर
गीता के नव कर्मवाद का महाप्रणेता
जन्मा और शहीद हो गया
एक बार फिर
विश्वासों के शुभ-क्षितिज पर
मुस्काती किरणों का सूरज
उगते उगते अस्त हो गया।

कितना भीषण है मजाक यह
और कहानी खूनी
कितनी दर्दनाक है
बार बार मरता है गांधी
बार बार उन मूल्यों की हत्या होती है
लेकिन बर्बादी की गोली
आज तलक भी
इन्सौं के मन में जीवित है
जब भी
संस्कृति और सभ्यता के पर्दे में

कौन सा है सुख ?

ब्रजेश 'चंचल'

इधर पीड़ायें बहुत हैं—
भर चुके पर द्वार।
कौनसा है सुख ………?
तुम्हारे क्षितिज के उस पार!

आ रही हरियालियों से जो अलोनी गंध।
दे रही हर फूल-काँटे को सहज सौगंध।
इधर दुविधाएँ बहुत हैं—
भ्रम सभी आधार।
कौन सा है सुख तुम्हारे क्षितिज के उस पार?

है अधूरी प्रीत, अध गूँथे सभी अनुबंध।
टूटते हैं शब्द, पीछे दुखाते हैं छंद।
इधर आकृतियाँ बहुत हैं—
पर नहीं साकार।
कौन सा सुख तुम्हारे क्षितिज के उस पार?

प्रश्न मारे मूक जैसे खड़े हैं ले ओट।
कल्पना के इस कनक में रह गई है खोट।
अर्थ की सुधियाँ बहुत हैं—
भावना ……… लाचार।
कौन सा है सुख तुम्हारे क्षितिज के उस पार?

तीन शब्द चित्र

●

ओम प्रकाश शर्मा

आज फिर ग्यारहवीं की विदाई है
मेरी तीन वर्षों की कमाई है।
तुम्हें एक भेद की बात बतलाऊँ—
चौदह वर्षों से प्रति वर्ष मैंने इस कक्षा को विदा किया है;
किन्तु मैं बोर नहीं हुआ हूँ
प्रति वर्ष उन्ही पुस्तकों को पढ़ाता हूँ
किन्तु पढ़ने वाले नये होते हैं, भाई भी भिन्न होते हैं
हर किशोर एक नया मॉडल होता है
और मैं बोर नहीं होता।
भावुकता में बहता हूँ, आदर्शों की बात करता हूँ
मेरे छात्र अपनी बात कहने के लिए स्वतन्त्र हैं
फिर भी मैं उनके मन पर शासन करता हूँ।
कभी कभी चौंक जाता हूँ—कुछ किशोर असमय ही
प्रौढ़ हो जाते हैं।
उनकी कठोर मुख-मुद्राएँ उनके घरों की प्रतिच्छवि हैं,
रसानुभूति में वे डूबते नहीं हैं
नाटक के नायक से एकाकार नहीं होते
और मेरे पाठ की कड़ी टूट जाती है।
किन्तु बहुत से छात्र ऐसे हैं
जैसे एक टेबूला रासा
जैसे कुम्हार की गीली मिट्टी
मैं जैसा चाहता हूँ वैसा रूप देता हूँ।
ये छात्र विदाई के अवसर पर अश्रुओं से नयन
वायदा करते हैं कि मेरी शिक्षा नहीं भूलेंगे,
परिस्थितियों से समझौता नहीं करेंगे।

भाषा से दोस्त चेहरों मे
दिखाई देते हैं गुलाब, जवाहर और टंगोर।

[१]

वर्षों बाद सड़कों पर, बाज़ारों मे
मुझे मेरा गुलाब मिलता है
मेरा हमक्लास मिलता है
किन्तु वह बातचीत की असुविधा से बचने के लिए
नज़रें नीची किये निकलना चाहता है
किन्तु मैं टोक ही लेता हूँ
ज्ञात होता है—कर लिया है बी. ए. पास
और पाणिग्रहण एक कन्या का।
अब तलाश है नौकरी की
न हो तो मास्टर ही बन जाए
जीवन की गाड़ी जैसे भी हो सरक जाए
गुलाब का चेहरा देख मैं भी कुछ बुझ जाता हूँ
अब कक्षा में झिझकता हूँ
कहने को अब भी कहता हूँ—
ऐ मेरे देश की आशाओ!
पढ़ो, मेहनत करो, योग्य बनो,
किन्तु मुझे मेरी आवाज़ बेगानी सी लगती है।

[२]

और एक दिन
वर्षों बाद सड़कों पर, बाज़ारों में
एक कार मेरे बिलकुल पास आकर रुकती है,
मैं चौंकता हूँ
क्योंकि मेरे परिचितों में कार वाले नहीं होते हैं।
एक नौजवान बाहर आता है
हाथ जोड़ मुस्कराता है
मैं अपरिचय की मुद्रा में उसे देखता हूँ
उसके चेहरे पर शिकायत का भाव लक्षित है
कि मैं अपने प्रिय जवाहर को भूल गया हूँ।
उसे याद आते हैं अपने स्कूल के दिन
(अब तो वह सहायक ऐंजीनियर है)

बिना प्रसंग के वह कहता है—
मास्टर साहब ! आपके मुख से झरते मोतियों से शब्द
आज भी मुझे हैं कण्ठस्थ
आपकी शिक्षा मेरा पाथेय बन गई है।
अपने सफल छात्र से मिलकर
लगता है जीवन सफल हो गया है
गंगा का पानी व्यर्थ नहीं बहा है।

[३]

यदि न सुनाऊँ किस्सा अपने टैगोर का
तो यथार्थ से आप अपरिचित रह जायेंगे
जवाहर की सफलता में ही डूब जायेंगे।
उससे सब टैगोर कहते थे
वैसे वह 'महाकवि' बनना चाहता था
लिखता भी था सतीश चन्द्र 'महाकवि'
आज्ञापालन को अवगुण मानता था
फलतः गुरुओं से तिरस्कार पाता था
और साथियों के विनोद का साधन था।
मिल गया एक दिन अखबार बेचता
अभी तक अविवाहित था
पूछा मैंने 'महाकवि ! कितनी कवितायें लिखी हैं ?'
बोला वह, 'कवितायें तो बहुत लिखी हैं पर
छपी नहीं एक भी
जब तक आप जैसे कुम्हार ढालते रहेंगे
घड़े एक ही साँचे के
प्रगति नहीं हो पाएगी
और उपेक्षित ही रहेगी प्रतिभा और मौलिकता।'
महाकवि की बात सुन मैं हत-प्रभ हो गया
और वह बेचता अखबार बिना किये अभिवादन
आगे चला गया।
मैं खड़ा रहा सोचता
क्षक का कर्त्तव्य जो मैंने नहीं किया
खर हो गया सतीश के रूप में
दायित्व-बोध से गुरुतर हो गया।

रैस्टोरेण्ट का प्याला

●

ब्रजभूषण भट्ट

आज शास्त्रीजी का सोमवार-उपवास का दिन है। कुछ व्यक्ति उपवास करते हैं और कुछ नही ! मुझे भी आज कुछ फुरसत मिली है, जिससे मैं अपनी आत्म-कथा कहने को प्रस्तुत हुआ हूँ। मुझे बहुत आत्मग्लानि हो रही है, क्योंकि मैं स्वयं को नीचवर्ग का एक सदस्य मानता हूँ। टोटी के नीचे गंदले पानी मे अधिकांश पड़े रहना मेरे भाग्य मे लिखा है। मैं कर भी क्या सकता हूँ ? मुझे जो भी चाहे रैस्टोरेण्ट मे आकर अपने होठों से लगा सकता है, खाली हो जाने पर प्लेट पर औधा पटक सकता है, टेबिल पर कभी कभी जोर-जोर मारकर मेरे घावो मे नमक छिड़क सकता है।

मैं इतना व्यस्त रहता हूँ कि साफ भी नही हो पाता हूँ। लो ! मैं साफ भी नहीं हो पाया, ये सूट-पैण्ट धारी महाशय बाबूजी आटपके और झटसे एक कप चाय का 'ओर्डर' दे दिया। रैस्टोरेण्ट का मालिक भी गर्म-गर्म चाय उबालने लगा। यह सब देखकर, मैं भय के मारे कांप रहा हूँ, भीतर ही भीतर रो रहा हूँ, कोस रहा हूँ अपने भाग्य को। अब यह गर्म-गर्म चाय मेरे कलेजे मे उँड़ेली जायेगी। किसी को मेरे ऊपर दया नही आयेगी ! मैं भीतर ही भीतर अन्त:करण में जलता-भुनता रहूँगा और किसी को अपनी आत्म-व्यथा सुना न पाऊँगा। कितना दु:ख है मुझे इस जन्म में ! सब अकथनीय है।

मैं पूर्ण सोच भी नही पाया, सम्हल भी न पाया और बेरहम मालिक ने मेरे अन्दर गर्म-गर्म उबलती चाय डाल दी ! मैं जला जा रहा हूँ, गर्म-गर्म साँसें ले रहा हूँ, आहे भर रहा हूँ। मगर किसी को मेरी परवाह नही। हाँ "'स्वयं मनुष्य जलने से बचने के लिए प्लेट मे बारबार चाय डालकर फूंक दे-देकर पीता है और यह भी ध्यान रखता है कि पेण्ट पर चाय ढुल न जाये। आज का हर व्यक्ति इस वर्तमान युग मे स्वार्थी हो गया है।

मैं कहाँ तक अपनी व्यथा कहूँ। रोज अनेक बार मेरे अन्दर गर्म-गर्म

चाय भरी जाती है। मगर चाय पीने वाले व्यक्ति होते हैं विभिन्न! कभी-कभी मोटे कठोर होठों का मैं स्पर्श पाकर भयभीत शंकित हो जाता हूँ कि कहीं ये मोटे होठ मुझे भींच न दें! लेकिन कभी-कभी सुकोमल नवपल्लवों सदृश रक्तिम अधरों का मादक स्पर्श पाकर मैं रोमांचित-कम्पित हो उठता हूँ और अपने जीवन की सार्थकता अनुभव कर विचार करने लगता हूँ कि कितना अच्छा हो,—इन मदिर यौवन-पूरित अधरों के अमृत-क्षणों में ही मेरा जीवन समाप्त हो जाये। लेकिन विधि की विडम्बना के आगे किसका वश चलता है! खाली हो जाने पर पुनः प्लेट पर रुदन करने हेतु औंधा रख दिया जाता हूँ। उस समय चाय पीने वाला भी मुझसे ऐसा विमुख हो जाता है कि जैसे उसका मुझसे कोई वास्ता ही न हो। वह मेरी ओर दया-दृष्टि भी नहीं डालता है।

मैं भी इधर-उधर कातर दृष्टि डालने लगता हूँ। मेरे हृदय में ईर्षा का भाव उत्पन्न हो जाता है और सोचने लगता हूँ कि काश, मैं भी उन सेटों की पंक्तियों में होता जो सजे-सजाये कांच की आलमारी में ऊँचे बैठे मुस्कराते रहते हैं। इसी विचार शृंखला में किसी निर्दयी हाथों ने मुझे जोर से खींचकर, गर्दन पकड़ कर उस जगह गंदले स्थान पर फेंक दिया जहाँ मेरे समान ही अनेक तिरस्कृत, उपेक्षित विचारे प्याले पड़े थे और कोस रहे थे वे अपने भाग्य को। इस लीला को देख-देखकर आलमारी में ऊँचे रखे प्याले हँसा करते हैं और खुशियाँ मनाया करते हैं। यह है हमारी समाज में दशा—व्यवस्था।

कभी-कभी तो हमारे ऊपर मोटा-टाट-सा कपड़ा जोर-जोर से रगड़ा जाता है, जिससे हमारी खाल छिल जाती है और हड्डियाँ चूर-चूर हो जाती हैं, लेकिन हम ऐसे साहसी, धैर्यवान् हैं कि उफ़ भी नहीं करते हैं, किसी को दोष नहीं देते हैं। पर ये लोग अपनी निर्दयता से बाज नहीं आते हैं और बार-बार साफ होने पर गर्म-गर्म चाय भर देते हैं—हम भी इतने असहाय हैं कि इनके हाथों में कठपुतली से नाचते रहते हैं।

अहा''''अहा''' बहुत अच्छा हुआ। मैं गिर गया टेबिल से नीचे। किसी की असावधानी और मेरी जान गई। खैर''''जो हुआ, वह अच्छा हुआ! कम से कम रैस्टोरेण्ट में चारोंओर जोर-जोर का शब्द गूँज तो गया। जो पंखों की हवा में नींद ले रहे थे, जाग तो गये। सब सचेत तो हो गये। ... के टुकड़े-टुकड़े हो गये। फिर भी किसी का दिल नहीं ... आँखों में आँसू न आये। लेकिन मेरे टुकड़ों को वे ठोकर ...। यह है आज के इन्सान समाज की गति।

...या

यह दुर्गति देख मैं पागलों की तरह जोर से हँसा और आलमारी में ऊँचे रखे सैंटों के अबोध प्यालों से कहने लगा कि तुम्हारी भी एक दिन यही गति होगी। तुम सब मेरे सदृश मिट्टी मे मिल जाओगे, तुम्हारा गर्व सब धूल में मिल जायेगा। हाँ " मैं यही कह कर सबको सचेत करना चाहता था, सो कह दिया। अब चाहे मुझे कितनी दूर बीहड़ जगल में, एकान्त में, कूड़ेकरकट पर डाल दिया जावे, मैं पड़ा रहूँगा वहाँ चुपचाप अन्य तिरस्कृत बेकार वस्तुओं के समान। पर ओह रेस्टोरेण्ट के मालिक का एक लघु प्याला मैं अवश्य कम हो गया— उस जीवन से मुक्त हो गया यही मेरी आत्म-कथा है।

सफाई

•

चतुर्भुज शर्मा

दिवाली के ये दिन सफाई के दिन हैं। चारोंओर सफाई की शहनाई बज रही है! गली-गली में सफाई के गीत गूंज रहे हैं। घर-घर में सफाई के स्वर भर गये हैं। द्वार-द्वार पर सफाई के बोल सुनाई पड़ रहे हैं। सफाई का यह संगीत छतों से चू, दीवारों को धो, द्वारों से लहर, बाजारों में बहता हुआ दूर-दूर तक फैल गया है। क्या महल और क्या कुटी, क्या घाट और क्या बाट सभी में सफाई की तरंग-उमंग में है। छतों और छज्जों पर, गोखों और झरोखों पर, प्रांगण में कि पौर में यही एक सफाई-रस-दौर दौड़ रहा है। सब पर यही राग छा गया है। इस समय किसी को कुछ और सूझ ही नहीं पड़ रहा। हर चरण में सफाई की गति है। हर गति में सफाई के भाव हैं। हर भाव में सफाई का उन्मेष है और हर उन्मेष में सफाई की पुलक बिखर-बिखर बह रही है। बालक से लेकर बूढ़े तक, छोटे से लेकर मोटे तक सभी स्तर, समाज, जाति वर्ग के नर-नारी सफाई के इस आनन्द में आत्म-विभोर हो उठे हैं।

सफाई की यह धुन, सफाई का यह आलम आज की नई चीज हो, ऐसी बात नहीं। आदिम काल से आदमी इसमें रस लेता आ रहा है। जबसे आदमी ने आदमी बनना सीखा सफाई की यह कला भी उसने सीख ली। इसमें उसकी आत्मा को अलौकिक आनन्द तो मिला ही; लौकिक लाभ भी। उसके सफाई-प्रयत्नों से आगे के रास्ते साफ़ हो गये। उसे बढ़ने के मार्ग मिल गए। उसने आग और पानी में से पंथ निकाल लिये। "देखकर खाना" और "छान कर पीना" उसका विचार बन गया। "बुहार कर बैठना" उसका व्यवहार हो गया। उसके सुबहों में सफाई के राग उभर-उभर सामने आए। उसकी दृष्टि धुल गई। उसके हृदय खुल गये। जिससे उसके दिन सुन्दर व रातें सुहानी हो गईं सफाई उसका संस्कार बन गई। वह संस्कृत हो गया—सभ्य बन गया।

सभ्य बनने की इस उदय-वेला में उसे सबसे पहले अपनी ही सफाई की सूझ आई। उसने शारीरिक सफाई की आवश्यकता अनुभव की। आँखों से अच्छी तरह देख सके; अतः उसने प्रातः उठते ही शीतल जल से आँखें धोना आरम्भ कर दिया। मुँह से मीठा स्वाद चख सके; इसलिये उसने मुँह की कड़ुवाहट मिटाई, जीभ की सफाई की, दाँतों को मला-माँजा और यों गन्दगी से गला छुड़ाया। ठीक से सूँघने और सही प्रकार सुन सकने की सामर्थ्य पाने के चाव में उसने नाक और कान के मैल को निकालने के नियम बनाए। गन्दे हाथों से खाना उसे भाया नहीं और गन्दगी में पैर डालना उसे सुहाया नहीं; इसी कारण वह हाथ-पैरों को साफ-सुथरा रखने में रुचि लेने लगा। उसने अंग-अंग को मल-मलकर धोया। तन का पसीना पोंछा व बदन की धूल झाड़ी। ऐसा करने से एक लाभ और हुआ। तन चंगा हो गया। कठौती में गंगा लहर आई। मन महक उठा। आयु बढ़ चली।

उसके सफाई के प्रयोग और आगे बढ़े। अब वह न जंगली जानवर था और न पशुवत् प्राणी। उसने जंगलों को साफ कर बस्तियाँ बना ली, बस्तियों को बढ़ा नगर बना लिये। वह पगडंडियों को छोड़ राजपथ पर विचरने लगा। अब वह अकेला नहीं था। वह था, उसकी पत्नी थी, परिवार था, उसका पड़ौस था और गाँव व शहर के जाने-अनजाने लोग। उसे सबसे काम पड़ने लगा। उसकी दुनिया बड़ी हो गई। इस सम्पर्क-विस्तार से उसे कई तरह के अनुभव मिले। उसने साफ-सुथरे बच्चों को चूमा, पुचकारा और गोद में लिया। लेकिन घिनौने से उसे भी घिन होने लगी। 'घूरे' दूरे ही रहें, ऐसे उसके आग्रह बने। उसने सोचा—"साफ रहूँ और साफ रखूँ।"

साफ रहना तो उसके हाथ में था। वह उसने साधा भी लेकिन साफ रखने में वह अकेला असहाय था। उसने इस काम में दूसरों से सहयोग, सहानुभूति व सक्रिय सहारा चाहा। पत्नी से वह बोला—"भीतर की सफाई तू देख।" पड़ोसी से उसने प्रार्थना की—"आँगन को हम तुम मिल बुहारें।" उसने पंचायत को गाँव की सफाई का भार सौंप दिया। इस तरह सफाई रखने की व्यवस्था करने के प्रति वह सदा प्रयत्नशील रहा। यहीं से उसका ध्यान, व्यक्तिगत सफाई से अधिक कठिन किन्तु अधिक उपयोगी वांछनीय समाजगत सफाई की ओर गया। तब सफाई व्यष्टिगत स्वभाव से विकास पाकर समष्टिगत कर्त्तव्य बन गई। जिनको सफाई रखने का दायित्व सौंपा गया वे समाज में 'महत्तर' पद को प्राप्त हुए।

सफाई व्यक्ति से समाज के हाथों में आ गई। समाज और सफाई हाथ से हाथ पकड़ बढ़े। समाज ने सफाई को सम्मान दिया तो सफाई ने समाज की प्रतिष्ठा बढ़ाई। समाज ने सफाई में सुधार किया तो सफाई ने समाज में कई सुधार ला दिये। साफ-सुथरा रहना प्रतिष्ठित पुरुषों के आचरण हो गये। साफ-सुथरा रखना सुधार-वादियों के काम।

सफाई पर शास्त्र लिखे जाने लगे। सफाई शोध का विषय बन गई। लोगों ने रोगों का कारण 'सफाई का न होना' बताया। स्वास्थ्य नियमों में 'सफाई से रहना' सर्वोपरि नियम बना। सफाई नियमबद्ध हो गई। सहन और सड़कों की सफ़ाई, नालों और नारदानों की धुलाई, दुनिया के दैनिक काम हो गये। भीतर का झाड़ना और बाहर का बुहारना नित्य की बान पड़ गई। वर्षा, धूल व कीचड़ ने जो गन्दगी ला दी थी, चौमासे के बाद, उसे सामूहिक रूप से धो-पोंछ साफ करने के प्रयास किये जाने लगे।

सफाई स्वयं उत्सव बन गई। घर उजले और दर उजियाले हो गये। नरकासुर का नाश कर दिया। लक्ष्मी उतर आई। घर-घर रोशन हो गये। सफाई का सम्मान इतना बढ़ा कि इसके एक अंग लिपाई के सस्ते से उपादान 'गोबर' को भी धनवान लोगों ने ''गोबरधन'' पूजा का विधान रच दिया। देवता जाग उठे। दीवाली हो गई।

मनुष्य का यह सफाई-स्नेह सभ्यता की ज्योति पर और अधिक खिला। 'अधिक सभ्य अधिक साफ़' लोगों की धारणा हो गई। सभ्य हाथों में सफाई आ गई। सभ्य मौन का सौन्दर्य सफाई बन वह कढ़ा। साफ और सुन्दर होना उसे सुहाने लगा। सुन्दरता ने सफाई को चमका दिया। उसे नये परिधान पहिना दिये। सफाई सज गई, अलंकृत हो गई। सफाई और सजावट की यह मिली-जुली झाँकी जब समाज ने देखी तो वह भावविभोर कह उठा—"अतीव सुन्दर, परम मनोहर।"

सफाई के इस मन-मुग्धकारीरूप पर सुन्दरता के इस चमत्कृत-स्वरूप पर आदमी बौरा गया। वह सफाई-सौन्दर्य की ओर खिंचा। उसकी सफाई ने उसकी सजधज निराली कर दी। उसे इसमें भौतिक उपयोगिता तत्त्व तो मिले ही साथ ही आध्यात्मिक आनन्द का दर्शन भी। उसकी आत्मा की सौंदर्य पिपासा सफाई के इस अमल अंचलगत जीवन-जल से कुछ-कुछ तृप्त हुई। वह सफाई पर सूक्ष्मता से विचार करने लगा। उसने सुन्दर जीवन की परिभाषा रची 'स्वच्छ तन में स्वच्छ मन।'

तन की स्वच्छता में तो उसे शीघ्रता से सफलता मिल गई, लेकिन मन की सफाई के उसके कार्यक्रम इतनी तीव्रता से फलीभूत नहीं हो पाये। तन का रूप तो सभी को दृष्टिगत था, इसकी गन्दगी सर्वसाधारणज्ञेय थी,

अतः उसे दूर करने में अधिक आसानी रही। परन्तु मन का कोई निश्चित आकार न होने तथा उसके विकारों का कोई स्थूल दर्शन न पाने के कारण उसके मानसिक सफाई के रूप दुरूह व दुस्तर होते। फिर भी हर युग में और हर समाज में उसने ऐसे उज्ज्वल महात्मा अवश्य पाये जिन्होंने मन की सफाई के सर्वगुणसम्पन्न साधनों से दुनिया को परिचित किया। तन धोकर मन धोने के लिए उपासनाएँ होने लगीं; प्रार्थनाएँ की जाने लगीं और होने लगीं इबादतें। भगवान् शुद्ध मन में निवास करने लगे—दरिद्र नारायण हो गये। परलोक सुधारने के लिए इस लोक को भी सुधारा जाने लगा।

मन की सफाई के ये आन्दोलन कई धाराओं में बहे। कहीं तप में तो कहीं त्याग में, कहीं योग में तो कहीं दान में, कहीं भाव में तो कहीं भक्ति में; कहीं सेवा में तो कहीं स्नेह में; और कहीं सत्य में तो कहीं अहिंसा में; उसने मन की सफाई को देखा। किसी ने उससे कहा "एकान्त में जा और मन को खोज। हृदय साफ हो जायेगा।" किसी ने उसे बताया—समाज-समुदाय सेवा में ही सफाई छिपी है। न माने तो—आ देख, हो समाज की सेवा में संलग्न।" उसने विचार किया—"सफाई केवल *कायिक कर्म ही नहीं;* वरन् मानसिक धर्म भी है।" यह तन और मन से सफाई में संलग्न हुआ अपने समुदाय में रह।

तन और मन की सफाई में रत उसे जीवन-सुधार की प्रतीति हुई। तन की स्वच्छता और मन की शुद्धता से वाणी ने स्पष्टता पायी। वाणी की स्पष्टता से उसका 'सत्य' जीवित हुआ। मन की शुद्धता ने उसमें 'शिव' मूर्तिमन्त किया और तन की स्वच्छता द्वारा वह स्वयं 'सुन्दर' जीवित बना। लोक में सफाई की लीला नया आलोक ले आई। उसको साफ-साफ सूझने लगा—"जीवन सफाई से रहने की कला है।" "दिल साफ है तो दिन भी साफ है।" देखो सफाई के साथ पैर धरने से नृत्य उतर आये सफाई के साथ हाथ चलाने से चित्र बोल उठे। स्वरों की सफाई ने गलों में गीतों को उंडेल दिया। वाणी की सफाई साहित्य की शोभा हो गई। उसका कवि मन कह उठा—

"प्रति फलित हुई सब आँखें, उस प्रेम-ज्योति विमला से।
सब पहचाने से लगते, अपनी ही एक कला से।।"

—कामायनी : प्रसाद

●

चिन्ता वर्षों की, इलाज मिनटों का

●
मानसिंह [illegible]

पात्र-परिचय

पं. संकट-विमोचन : चिन्ता-हरण मन्दिर में बैठने वाला नगर का प्रख्यात पण्डित : उम्र लगभग साठ साल।

साहित्यकार : धन और यश की उपलब्धि से विहीन एक नया साहित्यकार। उम्र लगभग ३५ वर्ष।

प्राध्यापक :

युवक विद्यार्थी :

व्यापारी :

भोलू : पं. संकट विमोचन का नौकर।

[नगर के प्रमुख बाजार में पं. संकट विमोचन की दुकान। दुकान पर बोर्ड लगा है—चिन्ता-हरण-मन्दिर (मोटे अक्षरों में, ऊपर वाली पंक्ति में) निराश न होइए, सत्परामर्श से लाभ उठाइए (कुछ बारीक अक्षरों में, दूसरी पंक्ति में) फीस पाँच रुपए मात्र (मोटे अक्षरों में, तीसरी पंक्ति में), बोर्ड के दाहिने कोने पर आपका हितैषी—संकट विमोचन लिखा हुआ है। बाँए कोने में एक कोष्ठक में बारीक अक्षरों में मिलने का समय लिखा हुआ है। सायं ५ बजे से ९ बजे तक। 'चिन्ता-हरण मन्दिर' नाम की इस दुकान में पं. संकट विमोचन की बैठने वाली कुर्सी और उसके सामने एक मेज रखी हुई है। ग्राहकों के लिए मेज के इधर-उधर दो-दो मूढ़े रखे हुए हैं। दुकान में कुछ धार्मिक चित्रों वाले कलेण्डर टँगे हुए हैं। पर्दा खुलने के समय पं. संकट विमोचन का नौकर भोलू दुकान की सफाई कर रहा है। सफाई करते-करते वह अपने हाथ से कुछ खाता जाता है और मुँह से कुछ गुनगुनाता है। पं. संकट विमोचन दुकान में प्रवेश करते हैं]

वेश

संकट विमोचन : अरे, क्या हो रहा है भाई भोलू ? क्या अभी तक कोई ग्राहक नहीं आया ?
(पड़ी हुई आराम कुर्सी पर बैठ जाता है)

भोलू : ग्राहक ? ग्राहक-वाहक तो अभी कोउ नाहिन आयो मालिक। (तेजी से सफाई करने लगता है)

सं० वि० : हूँ ऊँ ऊँ, अरे, आज तूने अपने गणेश भैया की पूजा नहीं की ?

भोलू : पूजा-वूजा से काहू होत है मालिक। आज कल गनेस भैया भी समझें है कि मालिक की आमदनी बढ़ाने के लिए पूजा की जावे है।

सं० वि० : हूँ-हूँ-हूँ (हंसता है) वाकई भोलू, जमाना बड़ा खराब आ गया है।

भोलू : ताके काहू सक है मालिक। (मूढ़े जमाता है। मेज पर मेजपोश बिछाकर कलमदान, दावात आदि ठीक करता है)

सं० वि० : पता नहीं, आज सुबह किस कम्बख्त का मुँह देखा था ? रोज आने से पहले ही दुकान पर एक-दो ग्राहक आ ही जाते थे। आज अभी तक कोई ग्राहक नहीं आया। (कुछ देर रुककर) आज तो लक्ष्मीजी की पूजा में और भी १५ मिनिट अधिक लगाए थे।

भोलू : मैंने तो पहले ही कह दियो है मालिक। पूजा-वूजा से आजकल काहू नाहि होत।

सं० वि० : देश के नेता लोग कहते हैं भोलू, अधिक काम करो। क्या खाक काम करें ? अरे, चार घण्टे के लिए दुकान खोलता हूँ, उसी का सदुपयोग नहीं हो पाता तो दिन भर दुकान खोलकर क्या मक्खी मारें ?

भोलू : मक्खी भी इतनी कहाँ से आवें मालिक ?
(दोनों हँसते हैं।)

सं० वि० : देखो न, मैं तो मुफ्त में ही जनता की सेवा करता हूँ। वर्ष-वर्ष की चिन्ता को मिनिटों में समाप्त कर देता हूँ। और इसके लिए फीस लेता हूँ केवल पाँच रुपये। भला, आज कल पाँच रुपयों का मूल्य ही क्या है भोलू ?

भोलू : जी महाराज, पाँच रुपये में तो अगर मैं खाने बैठूँ, तो एक टैम को भोजन हो है मालिक।

सं० वि० : ये तो भारत है भारत, भोलू। कहीं विदेश में होता तो सोना-

चाँदी से तोला जाता। किसी ने ठीक ही कहा है—'घर का जोगी जोगड़ा, आन गाँव का"""।'

(दुकान पर दस्तक होती है। आगन्तुक नगर का एक साहित्यकार है जो ढीला कुरता और धोती पहने है। पैरों में हवाई चप्पल हैं। बाल अस्त-व्यस्त हैं।)

सा० : अरे, है भई कोई दुकान पर ? ओह, पंडितजी बैठे हुए हैं। नमस्कार !

सं० वि० : नमस्कार नमस्कार ! आइए, बैठिए साहित्यकारजी।

(भोलू मूढ़ा सरकाता है और साहित्यकार फाइल सम्भालते हुए बैठता है)

कहिए, बड़े निराश से दिखलाई पड़ते हो ? क्या बात है ?

सा० : बात क्या है संकट-विमोचनजी, बड़ी विपत्ति में आ फँसा हूँ। आपने शायद मुझे पहचाना नहीं। लोग मुझे 'मधुर' कहते हैं।

सं० वि० : अच्छा, अच्छा, आप मधुरजी हैं।

सा० : साहित्य में मेरी बचपन से ही गहरी दिलचस्पी रही है।

सं० वि० : क्यों नहीं, क्यों नहीं। (गर्दन हिलाता है)

सा० : पिछले पन्द्रह वर्षों में आप के इस अनुज ने साहित्य की प्रत्येक विधा में अपना भाग्य आजमाया है। क्या महाकाव्य, क्या नाटक क्या उपन्यास ? और यहाँ तक कि कविता और कहानी लिखते-लिखते अकविता और अकहानी तक आ पहुँचा हूँ।

सं० वि० : हाँ हाँ, युग का बराबर साथ दिया है।

सा० : फिर भी

सं० वि० : हाँ, फिर भी क्या ?

सा० : मेरी रचनाओं को मान्यता किसी ने दाल में नमक के बराबर भी नहीं दी। अब आप ही बताइए, यह हमारे साहित्य का दुर्भाग्य है या नहीं !

सं० वि० : निःसंदेह ! आप जैसे साहित्यकार को न पहचान पाना साहित्य का ही दुर्भाग्य कहा जायेगा।

सा० : तो अब आप ही बताइए पंडितजी, मैं क्या करूँ ?

सं० वि० : हूँ-हूँ। बड़ी गम्भीर समस्या है। (सिर खुजलाता है)

सा० : तभी तो आपके पास आया हूँ पंडितजी।

सं० वि० : अच्छा, आप एक काम कीजिए। एक पत्रिका निकालिए।

सा० : पर पत्रिकाओं की तो आजकल बाजार में भरमार है।

सं० वि० : भरमार है तो क्या हुआ। वे युग की मांग को पूरा तो नहीं कर पाती। आपकी पत्रिका सच्चे अर्थों में युग-बोध की प्रतिनिधि पत्रिका होगी और हिन्दी के एक बड़े अभाव को पूरा करेगी। (साहित्यकार गर्दन हिलाता है) और सुनिए, पत्रिका का नाम दीजिए—अ-पत्रिका।

सा० : वाह, फिर तो मैं भी अ-सम्पादक हो जाऊँगा।

सं० वि० : अ-सम्पादक हो जाओगे तो क्या ? वर्षों की चिन्ता समाप्त हो जायगी।

सा० : लेकिन मेरे मौलिक सृजन का क्या होगा ? मैं तो दूसरों की रचनाओं का सम्पादन मात्र कर पाऊँगा ?

सं० वि० : अरे, आप भी किस युग की बात करते हैं मधुरजी। अपनी पत्रिका को अपनी ही रचनाओं से भर देना पत्रिका-काल की बात थी। आज तो अ-पत्रिका का युग है न ?

सा० : हूँ हूँ हूँ (हँसता है) बात तो ठीक है।

सं० वि० : पत्रिका के लिए कुछ रचनाएँ आप अपने सम्बन्धियों से भी ले सकते हैं। वे ही आपका अहसान मानेंगे और आपको भी रचनाएँ मिलती रहेंगी। और धीरे धीरे आपका एक विशेष गुट बन जायेगा।

सा० : लेकिन, गुटबन्दी से तो मुझे बेहद घृणा है पण्डितजी। साहित्य में भी गुटबन्दी आ गई तो ……

सं० वि० : (बीच में ही बात काटकर) देखिए, खोखली नैतिकता के चक्कर में न पड़िए मधुरजी। आदर्श की इन बातों को तो अपने सम्पादकीय लेख के लिए सुरक्षित रखिए। आप तो आदर्शों के रंगीन आकाश को छोड़कर यथार्थ के ऊबड़-खाबड़ धरातल पर उतर आइए।

सा० : अब तो उतरना ही पड़ेगा पण्डितजी। (गर्दन हिलाता है)

सं० वि० : अपने गुटवालों की रचनाएँ छापिए। वे तुम्हारी रचनाओं को सर्वश्रेष्ठ घोषित करेंगे और देखते ही देखते तुम्हारी अ-पत्रिका राष्ट्रीय महत्त्व की पत्रिका समझी जाने लगेगी। नाम का नाम और चाँदी की चाँदी।

सा० : *बहुत खूब, बहुत खूब ! सचमुच ही आप ग्राहक को निराशा के गहन-गर्त से खींचने में समर्थ हो ! अच्छा, अब मैं चलूंगा।*

[जेब से पाँच रुपए का नोट निकालकर पंडितजी को देता है और बाहर निकल जाता है। एक युवक का प्रवेश : युवक तंग

मोहरी की पैण्ट पहने है, वुशर्ट के बटन खुले हुए हैं। सूखे बाल। हाथ में कुछ पुस्तकें लिए हुए है। कुछ घबराया-सा ज्ञात होता है।]

युवक : 'गुड ईवनिंग' पंडितजी।

सं० वि० : 'ईवनिंग'। बैठिए।

(भोलू मूढ़ा देता है। युवक बैठता है)

कहिए, बन्दा क्या सेवा कर सकता है जनाव की ?

युवक : सेवा ! बड़ा नाम सुना है पंडितजी आपका। पर इस प्रेम के तीर से घायल दीवाने का भी कोई इलाज है आपके पास ?

सं० वि० : क्यों नहीं, क्यों नहीं ? हजारों मजनूँओं का उद्धार किया है। हँ हँ। (हँसता है) हुआ क्या ?

युवक : हुआ क्या पंडितजी, किस्मत ही खराब है। (दिल पर हाथ रखकर आह भरता है] सुबह..........कॉलिज के लिए निकला था।

सं० वि० : फिर ?

युवक : रास्ते में चलते हुए दृष्टि पड़ी एक मकान के छज्जे पर।

सं० वि० : छज्जे पर

युवक : छज्जे पर केश सुखाती हुई एक युवती पर। आह ! क्या उसका सौन्दर्य था ?

सं० वि० : सम्भवतः बिहारी, पद्माकर, देव और घनानन्द ही उसके सौन्दर्य का बखान करने में समर्थ होते ?

युवक : क्या खाकर करते बिहारी और पद्माकर उसके सौन्दर्य का बखान। बस, यूँ समझ लो कि विधाता की वह अनुपम कृति थी।

सं० वि० : बीमारी तो बड़ी लाइलाज लगी जनाब को।

युवक : तो क्या मैं छोटी-मोटी बीमारी के लिए आपको कष्ट देता पण्डितजी ?

सं० वि० : तो फिर तुम कॉलिज नहीं गए ?

युवक : भूल गया कॉलिज-वालिज। पता नहीं, मैं तो कितनी देर वहाँ खड़ा रहता यदि पुलिस के सिपाही की कृपा-दृष्टि मुझ पर न पड़ी होती और वह मेरा बाँया कान उमेंठकर दाँई ओर को चलता नहीं कर देता।...पण्डितजी, अब तो आप के ही हाथ है मेरा जीवन।

सं० वि० : हूँ हूँ !! बड़ी कठिन साधना करनी पड़ेगी।

युवक : सब कुछ कर सकता हूँ पण्डितजी, सब कुछ। उसके लिए क्या क्या ……?

सं० वि० : पढ़ना-लिखना ताक में रख दीजिए। 'एकै आखर पीव को पढ़ै सो पण्डित होय' को मूल-मन्त्र मान लीजिए।

युवक : पढ़ना-लिखना किसका जी।
(हाथ की पुस्तकों को धरती पर फेंक देता है। भोलू उन्हें उठाता है)

सं० वि० : अपने को सौन्दर्य का दिवाना घोषित कर दीजिए। संगीतकार, चित्रकार, साहित्यकार आदि एक ही साथ बन जाइए। न बन सको तो होने का ढोंग तो कर ही सकते हो।

युवक : जी हाँ, ये सब तो बाँए हाथ का खेल है मेरे लिए।

सं० वि० : साइकिल चलाते समय, स्नान करते समय, दर्पण देखते समय तन्मय होकर गान-विद्या में विशेषीकरण कीजिए। सीटी द्वारा फिल्मी गीतोंकी धुन निकालने का अभ्यास बहुत ही आवश्यक है

युवक : सब हो जाएगा पण्डितजी। सो तो सब कर लूँगा।

सं० वि० : बस, मान-अपमान की क्षुद्र भावना को तिलाजलि दे दीजिए।

युवक : सो तो प्यार और युद्ध में सब चलता है जी।

सं० वि० : अपनी खोपड़ी को इतनी दृढ़ बनाइये कि कड़ी से कड़ी चप्पल भी चूर चूर हो जाय।

युवक : देखो, पण्डितजी ! इसमे आपको परेशान होने की बिल्कुल भी आवश्यकता नही है क्योंकि भगवान् की दुआ से इसका पहले से मैंने पर्याप्त अभ्यास कर लिया है। अब तो चप्पल क्या पत्थर बरसें तो भी इसका कुछ बिगड़ने वाला नहीं है (चाँद पर हाथ मारकर बतलाता है।)

सं० वि० : फिर तो समझ लो, मोर्चा तुमने जीत लिया।

युवक : यदि नही जीता गया तो ?

सं० वि० : तब तो अन्तिम अमोघ अस्त्र का प्रयोग तुम्हे करना पड़ेगा।

युवक : अमोघ अस्त्र का ! कौन सा है वह अस्त्र ? जरा, सुनूँ तो।

सं० वि० : बेटी वाले के घर घेराव कर डालिए।

युवक : वाह, वाह पण्डितजी !! हो संकट विमोचन ही। यथा नाम तथा गुण। क्या अमोघ अस्त्र दिया है यार मेरे।
(पण्डितजी की पीठ थपथपाता है और पैण्ट की जेब से पाँच रुपया पण्डितजी को देकर शीघ्रता से दुकान से निकल जाता है।)

भोलू : ए बाबू ! अपनी ये किताबें तो ले जाओ—ओ……।
(युवक सुनता नहीं। भोलू किताबें एक ओर रखता हुआ) अजब तेरी दुनिया !! (संकट विमोचन को सुनाकर) मालिक, तो अभी भी या दुनी में प्यार के दीवाने मौजूद हैं ? (दोनों हँसते हैं। एक अन्य ग्राहक जो हाल ही में स्थानीय किसी कॉलिज में प्राध्यापक नियुक्त हुआ है, दुकान में प्रवेश करता है। प्राध्यापक महोदय सूट-बूट डाटे हैं)

प्राध्यापक : कहिए, क्या हो रहा है संकट विमोचनजी ?

सं० वि० : पर-पीर हरण। अपना तो काम ही यही है। एक बार तुलसी का 'रामचरित-मानस' हाथ लग गया था, तभी से अपना तो 'परहित सरिस धर्म नहीं भाई' मूलमंत्र हो गया है। कहिए, आपको कौन सी पीड़ा ने सताया है ?

प्राध्यापक : पीड़ा-वीड़ा तो कोई विशेष नहीं है। हाँ, तिगड़मबाजी के राम-बाण से नौकरी तो कॉलिज में मिल गई, लेकिन मेरे अध्यापन से न तो विद्यार्थी ही सन्तुष्ट हैं, न अधिकारीगण ही और न घर में बीबी-बच्चे ही।

सं० वि० : हाँ, भई पेशा ही ऐसा है। (दोनों हँसते हैं)

प्राध्यापक : अब आपकी ही शरण में हूँ। कोई उपाय सुझाइए ?

सं० वि० : उपाय तो बड़ा सीधा है प्रोफेसर साहब (भोलू की ओर संकेत कर) अरे, भोलू प्रोफेसर साहब को चाय तो पिलाओ।

भोलू : (संकोच में पड़कर) मालिक, आज तो शक्कर ही समाप्त हो गई।

प्राध्यापक : अरे रे, औपचारिकता में न पड़िए पंडितजी। मैं तो अभी चाय पीकर आया हूँ। आप तो मेरा इस चिन्ता पापिन से पीछा छुड़ाइए।

सं० वि० : अच्छा, अच्छा। तो मैं कह रहा था उपाय तो बड़ा सीधा है। आपकी कठिनाई यही है कि आप कक्षा में विद्यार्थियों द्वारा पूछे गये प्रश्नों का सही उत्तर नहीं दे पाते ?

प्राध्यापक : क्या खूब समझा है आपने। सचमुच, बात यही है।

सं० वि० : अरे, तो इसमें घबराने की क्या बात है ? भई, आप तो साहित्य के अध्यापक हैं। जिस पंक्ति का अर्थ नहीं बता सको, उसे अश्लील कहकर छोड़ दो। विद्यार्थी आगे कुछ पूछेंगे ही नहीं !

ध्यापक : वाह !

सं० वि० : और हाँ, आप कुछ शान्त रस के आदमी प्रतीत होते हैं। जरा, वीर रस में उतर आइए। अवसर पाने पर विद्यार्थी के साथ डाँट-डपट भी बुरी नहीं है। कुछ चुनीचुनाई गालियों का कोष भी तैयार रखो। नामाकूल, बदमाश कहीं का, सुअर का बच्चा आदि की आवश्यकतानुसार चेंपने में संकोच करना छोड़ दो। फिर देखना, बच्चे कैसे आपका रौब नहीं मानते हैं?

प्राध्यापक . लेकिन इससे अधिकारी-गण कैसे सन्तुष्ट होंगे?

स० वि० : हें हें हें (हँसता है) सचमुच, बड़े भोले हो प्रोफ़ेसर साहब। अरे, आजकल के अधिकारियों को खुश करने में क्या रखा है! समय-असमय उनकी प्रशंसा कर दिया करो। उनके यहाँ कोई उत्सव हो, शादी-विवाह अथवा बच्चे का जन्म-दिन मनाया जा रहा हो तो कुछ उपहार, डाली-वाली भेंट कर दिया करो। आप भी खुश और अधिकारी भी खुश।

प्राध्यापक : क्या पते की बात कही है आपने। धन्यवाद! अच्छा, मैं चला आपके दूसरे ग्राहक आ गए हैं। नमस्कार, एम. एल. ए. साहब!

(प्रोफेसर आगन्तुकों से नमस्कार कर दुकान से निकलना चाहता है। पीछे से आवाज आती है)

स० वि० : अरे भई, फीस तो देते जाओ।

प्राध्यापक : (जेब में हाथ डालते हुए) हें हें हें। अरे, फीस तो मैं भूल ही गया था। (जेब से पाँच का नोट निकालकर पंडितजी की मेज पर रखता है और दुकान से बाहर चला जाता है)।

●

एक लौटी हुई कहानी का आत्मबोध

●

देवेन्द्र मिश्र

आज जब सोलहवीं बार मुझे 'सधन्यवाद खेद…' की पर्ची सहित वापस कर दिया गया तो मेरी अन्तरात्मा चीत्कार कर उठी, यह भी कोई जीवन है ? इससे तो अच्छा था मेरी रचना ही न होती। कहानीकार का छोटा पुत्र लिफाफे से टिकट छुड़ाने के लिए मेज के पास आ गया। टिकट, वह भी दस पैसे का। भारत के मानचित्र को पोस्ट आफिस की मोहर के काले धब्बों ने ढँक दिया था। वह बालक कई बार प्रयास करता रहा परन्तु टिकट न छूटा, पक्का जो चिपका था। कहानी भेजते समय जिस लगन और उत्साह का प्रदर्शन मेरे रचनाकार ने किया, उससे मुझे ढाढ़स मिल रहा था कि 'इस बार मैं मूल्यांकन में खरी उतरूँगी', परन्तु दुर्भाग्य आज वह उसी मेज पर पुनः लौटकर आ गई। पुराने लिफाफे, अस्वीकृत रचनाओं की 'सधन्यवाद' वाली पर्चियाँ तुसे-मुसे वेस्ट-बास्किट में ऐसे पड़े थे जैसे हलवाई की दुकान के नीचे नाली में पड़े कुत्तों के चाटे हुए गन्दे दौने हों। कहानीकार ने 'सधन्यवाद…' की पर्ची को कहानी से छुड़ा कर वेस्ट-बास्किट में डाल दिया। दो-एक मिनट तक निकाले हुए पिन को शीर्षक के चारों ओर चुभोता रहा। चुभे हुए पिन अन्तिम पृष्ठ तक पार हो गये, शीर्षक के चारोंओर एक घेरा-सा बन गया। कहानीकार की पत्नी ने आवाज़ दी 'चाय पीनी है ?' उत्तर में उसने पिन को दाँतों तले दबा कर मरोड़ दिया और बोला—'नहीं पीनी' और मुझे अस्वीकृत फाइल में पटक दिया। वह मुड़ा हुआ पिन, पिन-कुशन में भी न लगा सका, यूँही एक व्यर्थ-सा अस्तित्व लिए 'सुलेखा' के पास पड़ा रहा। फाइल में पड़ी मैं अपने को सबसे तिरस्कृत समझ, अतीत की स्मृतियों को कुरेदती रही।

मेरे जन्म का कारण कहानीकार के अन्तर में चुभती हुई विद्रोह लेने के लिए उठने वाली भावनाएँ थीं, कुण्ठाएँ थीं। आखिर कोई अपने मालिक से बदला कैसे ले ? नौकरी का प्रश्न था, गृहस्थी घसीटने का प्रश्न था, इस

मँहगाई में गुज़र चलाने का प्रश्न था। सब प्रश्नों ने मिलकर कहानीकार को विघटन में ला पटका। इसके सिवा उसे और चारा भी न था कि वह अहम् की संतुष्टि के लिए, अपने सावेग की पूर्ति के लिए मुझे रचता। कई बार उसने चाह कर भी मुझे ऐसी पत्रिकाओं में नहीं भेजा जो प्रकाशित होने पर सीधे बॉस के हाथ लगती। उसे भय था कि कहानी का आधार पता लगते ही वह कहीं का नहीं रहेगा, दिन-रात हाजरी बजाने वाले यही कहेंगे 'देखिये साहब, आपके ऊपर यह कहानी लिखी है, एक सबोरडिनेट की यह हिम्मत कि बॉस के घर वालों को कहानी में घसीटे, और वह भी इस बुरी तरह, हद हो गई।'

मेज़ पर टोकरी का ढक्कन रखा रहता—जिसमें पैन, पेंसिल, रबर, टूटी हुई निबें, 'लेखक क अभिवादन सहित' तथा नाम की मोहरें, 'फुइक फिक्स' की पिचकी हुई ट्यूब, बिजली का बिल, राशन कार्ड तथा चाभी का गुच्छा आदि पड़े रहते। कहानीकार ने एक बार उधर देखा, जैसे सब मिल कर उसका मजाक बना रहे थे, उसने नोटबुक उठा ली, पृष्ठ पलटे, देखा, पहले पृष्ठ पर अपना नाम जो कैपिटल अक्षरों में लिख रखा था—उसके नीचे समस्त डिग्रियां। डिग्रियों के लिखने का चाव वह मोहर में भी नहीं भूल सका था। दूसरे पृष्ठ पर विवरण था साइकिल के नम्बर का, रेडियो पसे का, पॉलसियों का। उसके बाद का पृष्ठ कोरा था सिर्फ एक कोने में लिखा था '१६ जुलाई १६६६ रात्रि लगभग ८ बजे'। उसके जीवन की कोई प्रमुख घटना रही होगी अन्यथा क्यों लिखता! चौथे पृष्ठ पर उन समस्त रचनाओं का विवरण था जो प्रकाशित हो चुकी थीं अर्थात् मुझसे पूर्व जब-जब रचनाएँ स्वीकृत होकर लौटती कहानीकार एक बार उस सूची को पढ़कर देख लेता। मैं कितने वर्षों से प्रयत्न कर रही थी कि मुझे भी उस लिस्ट में जुड़ जाने का सौभाग्य मिले परन्तु अभी तक वह अवसर नहीं आया। उसके बाद के पृष्ठों पर पत्र-पत्रिकाओं में भेजी गयी रचनाओं का विवरण था। 'कल्पना' और 'कादम्बिनी' में पहली बार जब मुझे मूल्यांकन हेतु भेजा गया, तब मेरा नाम 'बेजान ज़िन्दगी चार का पहरा' था। तिथि की याद नहीं, सम्भवतः यह बात अक्टूबर १६६४ की थी। 'कल्पना' से कोई उत्तर नहीं मिला, हैदराबाद में पड़ी-पड़ी ऊब गई तो कहानीकार ने क्षोभ भरा पत्र लिखा और फलस्वरूप सहायक सम्पादक ने मुझे तिरस्कृत कर लौटा दिया, यह कहते कि उच्च कोटि की रचनाओं के चयन में विलम्ब हो ही जाता है, बहरहाल 'कादम्बिनी' से भी मुझे वापस आना पड़ा। इसके बाद से जो भेजने का क्रम चला तो मुझे तिथि सहित नोट करके रखा गया। २३-१२-६४ को 'सरिता' और 'लहर' में डोलती-डगमगाती दिल्ली और अजमेर की अनुभूतियां ले वापस

आ गई 'सम्पादक के अभिवादन व खेद सहित'। १९-४-६५ को कहानीकार ने पुनः नवनीत के लिए बम्बई भेजा। महीनों बीत गये कोई उत्तर नहीं मिला, मेरे रचनाकार अभिभावक को। वह चिंतित हो उठा कि मेरा क्या हुआ, कई पत्र लिखे और अन्त में उत्तर प्राप्त हुआ कि खेद है, आपकी रचना हमारे कार्यालय में नहीं पहुँची। वह तो मेरा सौभाग्य था कि मेरी दूसरी प्रतिलिपि थी। कहानीकार अनहोनी पर शान्त होकर रह गया फिर मुझे छह महीने तक कहीं नहीं भेजा।

फाइल में दबी-दबी झांक कर देखती रही कि नवीन रचनाओं का निर्माण हो रहा है। मेज पर चहल-पहल बढ़ती, नई पर्चियाँ लगतीं, नए लिफाफे बन्द होते, पिन कुशन से पिन अपनी-अपनी चुंडियों को ऊँचा उठा कर देखते और सोचते देखो इस बार किसका नम्बर आये यात्रा करने को। मैं वहीं पड़ी रही अपने भाग्य को कोसती रही। १६-१०-६५ को मुझे फिर उसी क्रम से गुजरना पड़ा 'जगत' के लिए। विवाह पक्का करने के लिए लड़की को जैसे कई बार सजा-सँवार कर उसका पिता वर-पक्ष के सम्मुख ले जाता है, यदि अस्वीकृत की जाती है तो वह किंचित् यह नहीं सोचता कि मेरी लड़की में भी नुख्स हो सकता है। वह उसे फिर भी सर्वगुण सम्पन्न समझता है। मुझे कुछ ऐसा आभास होने लगा था कि शायद यही स्थिति मेरी भी है। 'जगत' में गई तो वापिस ही नहीं आई मुझे तिरस्कृत रचनाओं के साथ डाल दिया गया। मैंने बहुतेरी मिन्नतें कीं 'मुझे वापिस तो कर दो' परन्तु अपने पृष्ठों को ही फड़फड़ा कर रह गई।

कहानीकार इस परिणाम पर पहुँचा कि यह सोना ही खोटा है अतः इसे अपने घर न रख किसी को गोद दे दो, हो सकता है अन्य का आश्रय पाकर ही भविष्य सुधर जाय परन्तु सन्तान तो कुरूप भी हो प्यारी होती है। अतः मुझे गोद नहीं दिया गया। मेरा पुनः नामकरण हुआ। पुराना नाम हटा कर नया नाम रखा गया 'विस्थापन'। संशोधन हेतु मेरी विकृतियों को मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से सुधारा, साफ सुन्दर अक्षरों में स्वयं अपने हाथ से लिखकर 'नई कहानियाँ' में २१-३-६६ को भेजा। मैं वहाँ से शीघ्र ही वापिस आ गई। 'नई धारा' पटना के लिए ८-४-६६ को पुनः रवाना हुई। कोई चार माह गए मेरी विदाई के संबंध में पत्र आये तब कहीं दयालु सम्पादक ने मुझे फिर वहीं लौटा दिया—जहाँ जीवन का विघटन था, निरन्तर लड़ने वाली विद्रोहात्मक प्रवृत्तियाँ थीं। मेरे रचनाकार को अब क्षोभ होना बन्द हो गया परन्तु उसने हिम्मत न हारी। सोचा, कोई तो माई-का-लाल होगा,

काना, लूला, लंगड़ा जो संयोग से इस अभागिन का कैसा भी मूल्यांकन कर, स्वीकार कर ले। फिर वही क्रम प्रारम्भ हुआ 'त्रिपथगा' के लिए लखनऊ की सैर करने ४-८-६६ को गई। वहाँ भी सुपात्रा न ठहराई गयी और वापिस लौट आई। 'कहानी' इलाहाबाद के लिए २९-८-६६ को भेजा, सोचा संगम के पवित्र जल के स्पर्श से ही मेरे दुःख दूर हो जायेंगे। दुःख दूर तो क्या हुए अलबत्ता बढ़ गये। कहानी के सम्पादक बड़े पारखी निकले उन्होंने मेरी त्रुटियों को सुधारा, मेरे शरीर पर अपनी कलम के निशान भी लगाये परन्तु चयन की स्थिति आते-आते मजबूरी प्रकट करके लौटा दिया। मैं लौटती हुई सोच रही थी मेरी और भी तो बहिनें है, वे तो कुछ कुरूप भी हैं, मैं तो इतनी नहीं, फिर मुझे ही क्यों बार-बार लौटना पड़ता है जबकि उनके चयन में कोई बाधा तक नहीं आती······।

नोटबुक के अन्तिम पृष्ठों पर पत्रिकाओं के पते लिखे थे। कहानीकार की निगाह उन्हें खोजने लगी कि कौन अभी शेष हैं। पत्रिकाओं की क्या कमी थी। विशाल नगरों की विशाल पत्रिकाएँ उनके मानदण्ड अलग, लेखकों के सम्प्रदाय अलग, जहाँ केवल ऊँचे लेखकों तक ही बात सीमित हो वहाँ नए को कौन घास डाले या फिर कोई 'सोर्स' हो। ८-१०-६६ को 'सारिका' के लिए बम्बई भेज दिया। वहाँ सब अपनी दुनिया में मस्त थे। दो कौड़ी की बाँदी के बराबर भी किसी चपरासी तक ने मुझ पर निगाह नहीं डाली, ढेर में पड़ी रही। धीरे-धीरे मुझ जैसियों के लौटने का भी नम्बर आखिर आ ही गया। दो माह पश्चात् लौट कर जो आई तो कहानीकार ने भी अस्वीकृत फाइल में दबा दिया। मेरा भविष्य घोर निराशापूर्ण था। अभिभावक तक ने मेरे साथ दूसरा व्यवहार किया। मुझे सदैव अलग रखा। नई रचनाओं के साथ-साथ कैसे रह सकती थी, मेरा दुर्भाग्यपूर्ण स्पर्श कहीं उन्हें छू जाता तो! मेरे साथ यह क्यों न किया कि मेरे ऊपर क्रोध और क्षोभ दिखा मेरी चिन्दी-चिन्दी कर डाली जाती, जिससे न मैं रहती न मेरी समस्या ताकि बारबार की अस्वीकृति तो देखने को न मिलती। धीरे-धीरे कहानीकर की पत्नी के ताने सुनने को मिलते "मेरे ऊपर व्यर्थ ही खर्च किया जा रहा है, यह बार-बार का भेजना और लौटना कब तक चलेगा?"

कहानीकार की आत्मसंतुष्टि शायद नहीं हो पा रही थी अतः पुनः "रसवंती" लखनऊ और 'रानी" दिल्ली के लिए एक साथ ३-१२-६६ को भेजा। समय वही था, परम्पराएँ वही थीं, मान्यताएँ अपनी-अपनी थीं पसन्द करता भी कौन? बारी-बारी से लौट आई। मेरी बार-बार की असफलताओं से मेरा जीवन असमायोजित हो चुका था। कहानीकार सोचता था कहीं भी

आ गई 'सम्पादक के अभिवादन व खेद सहित'। १६-४-६५ को कहानीकार ने पुनः नवनीत के लिए बम्बई भेजा। महीनों बीत गये कोई उत्तर नहीं मिला, मेरे रचनाकार अभिभावक को। वह चिंतित हो उठा कि मेरा क्या हुआ, कई पत्र लिखे और अन्त में उत्तर प्राप्त हुआ कि खेद है, आपकी रचना हमारे कार्यालय में नहीं पहुँची। यह तो मेरा सौभाग्य था कि मेरी दूसरी प्रतिलिपि थी। कहानीकार अनहोनी पर शान्त होकर रह गया फिर मुझे छह महीने तक कहीं नहीं भेजा।

फाइल में दबी-दबी झाँक कर देखती रही कि नवीन रचनाओं का निर्माण हो रहा है। मेज पर चहल-पहल बढ़ती, नई पर्चियां लगतीं, नए लिफाफे बन्द होते, पिन कुशन से पिन अपनी-अपनी घुंडियों को ऊँचा उठा कर देखते और सोचते देखो इस बार किसका नम्बर आये यात्रा करने को। मैं वहीं पड़ी रही अपने भाग्य को कोसती रही। १६-१०-६५ को मुझे फिर उसी क्रम से गुजरना पड़ा 'जगत' के लिए। विवाह पक्का करने के लिए लड़की को जैसे कई बार सजा-सँवार कर उसका पिता वर-पक्ष के सम्मुख ले जाता है, यदि अस्वीकृत की जाती है तो वह किंचित् यह नहीं सोचता कि मेरी लड़की में भी नुख्स हो सकता है। वह उसे फिर भी सर्वगुण सम्पन्न समझता है। मुझे कुछ ऐसा आभास होने लगा था कि शायद यही स्थिति मेरी भी है। 'जगत' में गई तो वापिस ही नहीं आई मुझे तिरस्कृत रचनाओं के साथ डाल दिया गया। मैंने बहुतेरी मिन्नतें कीं 'मुझे वापिस तो कर दो' परन्तु अपने पृष्ठों को ही फड़फड़ा कर रह गई।

कहानीकार इस परिणाम पर पहुँचा कि यह सोना ही खोटा है अतः इसे अपने घर न रख किसी को गोद दे दो, हो सकता है अन्य का आश्रय पाकर ही भविष्य सुधर जाय परन्तु सन्तान तो कुरूप भी हो प्यारी होती है। अतः मुझे गोद नहीं दिया गया। मेरा पुनः नामकरण हुआ। पुराना नाम हटा कर नया नाम रखा गया 'विस्थापन'। संशोधन हेतु मेरी विकृतियों को मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से सुधारा, साफ सुन्दर अक्षरों में स्वयं अपने हाथ से लिखकर 'नई कहानियाँ' में २१-३-६६ को भेजा। मैं वहाँ से शीघ्र ही वापिस आ गई। 'नई धारा' पटना के लिए ८-४-६६ को पुनः रवाना हुई। कोई चार माह गए मेरी विदाई के संबंध में पत्र आये तब कहीं दयालु सम्पादक ने मुझे फिर वहीं लौटा दिया—जहाँ जीवन का विघटन था, निरन्तर लड़ने वाली विद्रोहात्मक प्रवृत्तियाँ थीं। मेरे रचनाकार को अब क्षोभ होना बन्द हो गया परन्तु उसने हिम्मत न हारी। सोचा, कोई तो माई-का-लाल होगा,

काना, लूला, लंगड़ा जो संयोग से इस अभागिन का कैसा भी मूल्यांकन कर, स्वीकार कर ले। फिर वही क्रम प्रारम्भ हुआ 'त्रिपथगा' के लिए लखनऊ की सैर करने ४-८-६६ को गई। वहाँ भी सुपात्रा न ठहराई गयी और वापिस लौट आई। 'कहानी' इलाहाबाद के लिए २९-८-६६ को भेजा, सोचा संगम के पवित्र जल के स्पर्श से ही मेरे दुःख दूर हो जायेंगे। दुःख दूर तो क्या हुए अलबत्ता बढ़ गये। कहानी के सम्पादक बड़े पारखी निकले उन्होंने मेरी त्रुटियों को सुधारा, मेरे शरीर पर अपनी कलम के निशान भी लगाये परन्तु चयन की स्थिति आते-आते मजबूरी प्रकट करके लौटा दिया। मैं लौटती हुई सोच रही थी मेरी और भी तो बहिनें हैं, वे तो कुछ कुरूप भी हैं, मैं तो इतनी नहीं, फिर मुझे ही क्यों बार-बार लौटना पड़ता है जबकि उनके चयन में कोई बाधा तक नहीं आती······।

नोटबुक के अन्तिम पृष्ठों पर पत्रिकाओं के पते लिखे थे। कहानीकार की निगाह उन्हें खोजने लगी कि कौन अभी शेष हैं। पत्रिकाओं की क्या कमी थी। विशाल नगरों की विशाल पत्रिकाएँ उनके मानदण्ड अलग, लेखकों के सम्प्रदाय अलग, जहाँ केवल ऊँचे लेखकों तक ही बात सीमित हो वहाँ नए को कौन घास डाले या फिर कोई 'सोर्स' हो। ८-१०-६६ को 'सारिका' के लिए बम्बई भेज दिया। वहाँ सब अपनी दुनिया में मस्त थे। दो कौड़ी की बाँदी के बराबर भी किसी चपरासी तक ने मुझ पर निगाह नहीं डाली, ढेर में पड़ी रही। धीरे-धीरे मुझ जैसियों के लौटने का भी नम्बर आखिर आ ही गया। दो माह पश्चात् लौट कर जो आई तो कहानीकार ने भी अस्वीकृत फाइल में दबा दिया। मेरा भविष्य घोर निराशापूर्ण था। अभिभावक तक ने मेरे साथ दूसरा व्यवहार किया। मुझे सदैव अलग रखा। नई रचनाओं के साथ-साथ कैसे रह सकती थी, मेरा दुर्भाग्यपूर्ण स्पर्श कहीं उन्हें छू जाता तो! मेरे साथ यह क्यों न किया कि मेरे ऊपर क्रोध और क्षोभ दिखा मेरी चिन्दी-चिन्दी कर डाली जाती, जिससे न मैं रहती न मेरी समस्या ताकि बारबार की अस्वीकृति तो देखने को न मिलती। धीरे-धीरे कहानीकार की पत्नी के ताने सुनने को मिलते "मेरे ऊपर व्यर्थ ही खर्च किया जा रहा है, यह बार-बार का भेजना और लौटना कब तक चलेगा?"

कहानीकार की आत्मसंतुष्टि शायद नहीं हो पा रही थी अतः पुनः "रसवती" लखनऊ और 'रानी' दिल्ली के लिए एक साथ ३-१२-६६ को भेजा। समय वही था, परम्पराएँ वही थीं, मान्यताएँ अपनी-अपनी थीं पसन्द करता भी कौन? बारी-बारी से लौट आई। मेरी बार-बार की असफलताओं से मेरा जीवन असमायोजित हो चुका था। कहानीकार सोचता था कहीं भी

तो स्थान पाये कोई यह भी तो नहीं कहता कि इसमें यह खराबी है बस लौटा भर देते हैं। तेरह पत्रिकाओं से लौटाई जाने के बाद मेरी स्थिति उस बालक के समान हो गई थी जिसे दिन-रात कहें 'तू बुरा है'—'तू बुरा है' तो वह धीरे-धीरे बुराई के मार्ग की ओर ही बहक जाता है, और अपने को असामान्य, निकृष्ट समझने लगता है। यही स्थिति मेरी थी परन्तु मेरे रचनाकार को अब भी चैन नहीं था। जूए में निरन्तर हारने पर भी जुआरी एक बाजी और खेलने का मन करता है, क्या पता उसी में वह जीत जाय। मुझ जैसी जान ने बिछड़ी को पुनः ४-३-६७ को "ज्ञानोदय" के लिए कलकत्ता और फिर १०-३-६७ को एक साथ "अन्तर-भारती" बड़ौदा और "साथी" मुरादाबाद भेजा गया। परन्तु फिर वही नि–रा–शा !

कितने ही ऐसी घड़ी में जन्म लेकर इस संसार में आते हैं जो लाख कोशिश करने पर भी उन्नति नहीं कर पाते। अवनति के मार्ग के साथ ही तो उन्नति की सीढ़ियाँ जुड़ी हैं अन्यथा उन्नति का मान अस्तित्व क्या है ? कहानीकार का पुत्र लौटी हुई रचनाओं को देखकर खुश होगा। उसे इस ढंग का एक और जो टिकट मिल जाता, उसके संग्रह में एक और बढ़ोत्तरी होती। टिकट जुटाये लिफाफों से टोकरी फिर भरने लगती।

लिए। टेबिल पर रखे पिन-कुशन, दवात, पैन, मोहर और रचनाओं की फाइलें उदास-उदास एक दूसरे को देख रहे थे—एक मौत का सन्नाटा जो छा गया था।

कहानीकार दोनों हाथों की मुट्ठियाँ भींचे मेज पर झुका बैठा था, उसकी पत्नी ने आकर पीठ पर हाथ रखते कहा—"उठो, ऐसा जी छोटा नहीं करते। जिस कहानी की इतनी बेकदरी हो उस पर क्या सोच!"

●

कदम बढ़ाती है। सफलता स्वयं आगे बढ़कर उसका अभिनन्दन करती है। नारी के ऐसे ही कार्यों को ऐतिहासिक महत्त्व मिलता है। फलतः युग-युग तक उसकी गाथाओं के अमर गीत गाए जाते हैं।

पूरा भारतीय हिन्दी साहित्यकारों में महिलाओं के नामों की सूची बनाई जाय तो कठिनता से पन्द्रह नामों तक पहुँचा जा सकेगा। मीरां लल्लेश्वरी, सहजो तथा कुछ रामस्नेही सम्प्रदाय की कवयित्रियों के अलावा और दृग्गोचर नहीं होती जो सूर, तुलसी आदि के समकक्ष आसन पर आसीन होने का गौरव प्राप्त कर सकें। इस का यह अर्थ कदापि न लगाया जाय कि महिलाएँ साधना के क्षेत्र में पुरुषों से किसी प्रकार निम्न, न्यून अथवा अल्प हैं। वस्तुतः बात यह है कि इस ओर ईमानदारी से अद्य-पर्यन्त अन्वेषण व शोध कार्य हुआ ही नहीं। जब देश की संचित ज्ञान-राशि का विधिवत् अनुशीलन होकर उसका उपयोग होगा तो निःसन्देह न केवल हिन्दी साहित्य का इतिहास ही, वरन् सभी विधियों के इतिहास नये लिखने होंगे।

इस ओर समीक्षकों की कुछ समय से प्रवृत्ति बढ़ने लगी है। परिणाम स्वरूप कई अमूल्य रत्न हस्तगत हुए, उनमें राजस्थान की भक्तिमति कल्याणश्री एक हैं। निःसन्देह जब भारतीय हिन्दी साहित्य-नभोमण्डल में कल्याणश्री अपनी पूर्ण प्रभा के साथ भासित होगी तो संभव है, अनेक उडुवालाएँ, जो अब तक टिमटिमाती रहीं, अस्त अथवा तेजोहत होजाएँ।

परिचय

कल्याणश्री के विषय में साधिकार कुछ कहना तो फिलहाल उचित नहीं है क्योंकि अन्वेषण कार्य अभी परिपूर्ण नहीं हुआ है, फिर भी इतना तो प्रायः निश्चित ही है कि कल्याणश्री उच्च कुलीना रामानुजीय मतानुयायी वैष्णव-भक्त कवयित्री थी। उसकी रचनाओं का समय भक्तिकाल के ही निकट रहा होगा। चूंकि मेरे पास जो हस्तलिखित प्रति है उसका लिपि काल १८ वी शताब्दी है, जिसमें भक्तिकाल के अनेक प्रसिद्ध भक्त-कवियों के पदों का संग्रह हैं।

कवयित्री की रचनाओं को पढ़ने पर पाठक सहज ही आत्म-विभोर होकर पदों को गुनगुनाने लग जाता है। पद-पद से छलकती रस-धारा का आस्वाद निम्नलिखित पंक्तियों से प्रत्येक सहृदय पाठक प्राप्त कर सकता है—

वाल-केलि—

शिशु-क्रीड़ा स्वभावतः ही मनोहर एवं आनन्ददायक होती है; फिर वह सिद्ध कलाकार उसमें भी मातृ-हृदय के द्वारा वर्णित हो तो कहना ही क्या ? श्रीकृष्ण शयन से उठते समय वाल-स्वभाववश कुछ चेष्टाएँ करते हैं, कितना हृदय-हारी वर्णन हुआ है ! कवयित्री के ही शब्दों में—

प्रातः समय सोवत हरि जागे।
उघरत नैन ऐन अम्बुज से, अरुन उदै मनु विगसन लागे।
भुज उठाइ लेत जमुहाई, निद्रा अन्त आलस गै भागै ॥
दहूँ दिशाते मनो धाई कुमुदनि मुख होतु शशांक के आगै।
विधुरी अलक सुभग आनन पर, मनो कमल पर अलि अनुरागै ॥
कल्याणश्री गिरधर मुख निरखत, जसुमति नन्द प्रेम पग पागै।

नैसर्गिक सुषमा का अप्रतिम चित्रण कवयित्री की अपनी विशेपता है निम्नोक्त पद में प्रभात-वर्णन का एक अनूठा चित्र पढ़ते ही बनता है—

जागो नन्द नन्दन कृपानिधान भयो अब भोर।
छपा छीन भई जुगयोतम, मंद किरन उडु परि उठ रोर ॥
प्रकट भयो प्राची दिशि दिनकर, तमचर रटत करत खग शोर।
विकसत कमल, कुमुद कुम्हिलानो, गो दोहन जु भई पशु छोर ॥
ग्वाल-बाल द्वारै टेरत हैं, सुनहु श्याम बंशी कल घोर।
कल्याणश्री गिरधर मुख निरखत, उन आनन्द कछु बढ्यो न थोर ॥

राधा-कृष्ण की युगल मूर्ति तथा वसन्तोत्सव के वर्णन में तो प्रतीत होता है कवयित्री अपना सम्पूर्ण वैभव लगा कर भी सन्तोष अनुभव करती हुई नहीं दिखाई देती। एक अनूठी भाव-भीनी छलकती झाँकी के दर्शन कीजिए—

नवल वसन्त नवल वृन्दावन, नवलराय नन्द नन्द।
नव गोपिन विच नवल श्री राधा, मनु उडुगन मधि चन्द ॥
नव शिगार पर नव आभूपण, भर काजल द्रिग, मुख तंबोल ॥
नवल सखी मिलि झूंबक खेले, अपने अपने रोल।
नव यौवन वैशाख कुमकुमा, उड़त अबीर गुलाल।
नव नव गति वाजिन्द वजावत, गावत परम रसाल ॥
नवल सखा कर नव पिचकारी नव केसरि भरि लेत।
छोरत नवल लाल ललना में, उर श्रवननि में देत ॥

कल्याणश्री गिरधर ब्रज-भामिनी, बाढ्यो नव-अनुराग।
नव तन अशनव मुदित मनोभव, खेलत होरी भाग॥

एक अन्य पद जिसमें ब्रजेश्वरी राधारानी के अलौकिक सौंदर्य का वर्णन समाधि-गुण अलकार में अत्यन्त मधुर एवं हृदयग्राही बन पड़ा है, जो अत्र द्रष्टव्य है—

गवन देखि गजराज सिर डारी।
जप निहारि रम तन छेदत, तऊन होत वाके उनिहारौ॥
केहरि निरख लंक श्रोनीको, जाइ रह्यो गिरि गुहा मंझारौ।
तन की कान्ति निरखि चामीकर, बार-बार पावक तन जारौ॥
कुच निहारि श्रीफल सेवत वन, हेम, ग्रीष्म, वर्षा सिर धारौ।
कण्ठ विलोकि कम्बु बिलखानो, गयो शरण तकि सागर खारौ॥
पश्यत मुख उडुराज गगन गयो जानि अक निज मद उजियारौ।
दसन देखि दारम उर फारत, तड़ित दुरत तकि बादर कारौ॥
बानी सुनि पिक मौन गही है, बिन वसन्त नहीं वचन उचारौ।
नासा निरखि गए शुक तरवर, वार वार निज चूँच संभारौ॥
दृग बिलोकि शशि मृग वाहन भए, मीन दुर जल निकस-निवारौ।
वेनि की छबि निरखि पुनगपति, तजि भुव लोक गयो पातारौ॥
रूप निरखि अंग हीन अनग भयो, रति पुनि-पुनि आपुन पोहारौ।
कल्याणश्री गिरधर ब्रज प्रकटे, राधा-रस वैकुण्ड विसारौ॥

ब्रज-राज-राग के चित्रण में तो कवयित्री कुछ अशों मे सूर, देव आदि से भी दो कदम आगे प्रतीत होती है यथा—

हो हो हो खेलत होरी।
अबीर गुलाल नभ छायो मानो मकरध्वज मण्डप बनायो॥
कुम कुमे भरी पिचकारी हाथनि, छोरत हरि तकि-तकि तिय-गातनि।
मानो कनक शैल पर जलधर, बरषत सुधा-धार लागीझर॥
छीनि लियो पीताम्बर प्यारी, मनो घनते भई दामिनी न्यारी।
शोभित श्याम सुभग तन आगे, बार-बार पीताम्बर मांगे॥
फगुआ दै लीजे जु उपरना, कै लागो प्यारी के चरना।
फगुआ दे हरि भलो मनायो, भूषण वसन जाहि जो भायो॥

खेलत फाग रह्यो रंग भारी, गावत चाली सकल ब्रजनारी।
कल्याणश्री गिरधर प्रिय राधा प्रेम बढ्यो रस सिद्ध अगाधा ॥

अन्त में कवयित्री के एक अन्य पद जिसमें नवरंग लाल के रूप का लोकोत्तर वर्णन कूट शैली में हुआ है, के साथ निबन्ध को समाप्त करता हूँ—

आजु बने भाई नवरंग लाल।
मानो मनमथ मथन सोवन-पत्र परिव सिर शोभित दुति नयन ॥
सुरपति सुत बन्धु-आयुध सुत, ता वाहन भपिन की विशाल माल।
कल्याणश्री गिरधर की बानिक निरखि थकै शिवसुत भूपाल ॥

चिरवियोगिनी राजस्थानी नारी

शंभूसिंह

राजस्थान के विषम जलवायु ने यहाँ के निवासियों को परिश्रमी बना दिया है। परिश्रमी व्यक्ति स्वभाव से ही महत्त्वाकांक्षी होते हैं। अपनी महत्त्वाकांक्षाओं की पूर्ति के लिये अतीत से ही राजस्थानी प्रवास करते रहे हैं क्योंकि उनकी मान्यता है कि—

भट पंडित सूरा नरां शस्त्रां सहित सुजाण।
ये परदेशां पूजिया घर मांही करसाण॥

विद्वान एवं शक्ति-सम्पन्न व्यक्ति विदेश में ही सम्मानित होते हैं घर पर तो केवल किसान आदर पाते हैं।

मरणों भलो विदेश को जहा न आपणों कोय।
माटी खाय जनांवरां महा महोत्सव होय॥

—विदेश में (युद्ध करते हुए) मरना बहुत अच्छा है क्योंकि वहाँ अपना कोई सम्बन्धी न होने से जानवर ही शरीर के मांस को खाते हैं एवं बड़ा उत्सव मनाते हैं।

आवागमन के साधनों के विकास के साथ-साथ प्रवास की सीमायें भी विस्तृत होती गई हैं। आज तो स्थिति यह है कि विश्व का कोई भाग ऐसा नहीं है जहाँ तथाकथित मारवाड़ी या राजस्थानी निवास नहीं करते हों।

प्रवास में स्त्रियों को साथ ले जाना प्रायः असुविधाजनक होता है अतः केवल पुरुष ही जाते हैं और नारियाँ घर पर ही विरह-वेदना में जलती रहती हैं। परम्परा यह है कि विशेष पर्वों पर प्रवासी घर आते ही हैं। विशेष कर श्रावण के पर्वों पर तो बाट जोही जाती है—

गरजण लागी बादली, हिवड़ै उमग्यो नेह।
आवण लागी तीजड़ी, फड़कण लागी देह॥

—पत्र तो पढ़ा जा सकता है किन्तु भाग्य नही पढा जा सकता। बच्चे को नियन्त्रित किया जा सकता है लेकिन यौवन नियन्त्रित नहीं किया जा सकता।

कुवो व्है तो डाकल्यूं समन्द न डाक्यो जाय।
टाबर व्है तो राख लूं जोबन न राख्यो जाय॥

—कुए को तो कूद कर भी पार किया जा सकता है किन्तु समुद्र नही पार किया जा सकता। बचपन पार किया जा सकता है पर यौवन पार नही किया जा सकता।

प्रियतम नही आया, प्रिया का बाट जोहना व्यर्थ गया एक के बाद एक कई त्यौहार निकल गये प्रियतमा ने उपालम्भ भिजवाया—

होली न गणगोरियां न आयो तीज्योह।
मिले जो मारो साहिबो ओलीमो दीज्योह॥

—न तो होली पर आये, न गणगौर पर आये और न तीज पर। मेरे प्रियतम मिलें तो उन्हें उपालम्भ देना।

प्रियतम आना चाहता है किन्तु कर्त्तव्य उसका मार्ग अवरुद्ध करता है, आ नही पा रहा है। सदेश भेजने मे भी हिचकिचाता है क्योकि वह जानता है कि इससे प्रिया की वेदना बढ़ेगी अतः वह मौन रहना ही उत्तम मानता है। वर्ष पूरा हो गया है, प्रिया फिर सन्देश भेजती है—

सदा न फूले तोरइ सदा न सावण होय।
सदा न यौवन थिर रहे सदा न जीवे कोय॥

तोरई सदैव नही फूलती, सावन सदैव नही होता, यौवन सदा स्थिर नहीं रहता और सदैव कोई जीवित नही रहता।

ऊजड़ खेड़ा फिर बसै निरधनिया धन होय।
गयो न जोबन बावड़े मुवो न जीवे कोय॥

—उजड़े हुए ग्राम पुनः बस जाते हैं। निर्धन धनवान् हो जाते हैं। किन्तु गया हुआ यौवन पुनः नही लौटता, मृत व्यक्ति पुनः जीवित नही हो सकता।

किन्तु फिर भी तुम नहीं आते तुम्हारे वियोग की ज्वाला मे मैं दिन रात जलती रहती हूं—

[illegible] ।
[illegible] ॥

—हे प्रियतम [illegible] कि तुम्हारे वियोग से दुखे नैन हैं। मन [illegible] ।

इस तरह भी यदि तुम न आ सके तो तुमसे यह अन्तिम निवेदन है। अब वियोग सहा नहीं जाता, अतः —

जो तू साजना न आवसी सावण पहली तीज।
बीजल ज्यूं तड़फड़ी [illegible] ॥

—हे प्रियतम यदि सावन की पहली तीज पर आप नहीं आवोगे तो जिस प्रकार बिजुली तड़प कर प्राण छोड़ देती है। उसी प्रकार मैं विरह से तड़प कर मर जाऊँगी।

लेकिन प्रियतम नहीं आया, एक के पश्चात् एक करके कई वर्ष निकलते जा रहे हैं। हृदय में आत्म-निराशा का उदय होता है, प्रियतमा आत्म-हत्या करने का विचार करती है। वह चन्द्रमा से कहती है—

चांदा थारे चांदणे पलंग बिछाय।
जद जागूं जद एकली मरूं कटारी खाय॥

—हे चांद तेरी चन्द्रिका में पलंग बिछाकर सोती हूँ किन्तु जब भी मेरी आंख खुलती है तो अपने आप को अकेला पाकर मैं अत्यन्त दुखी होती हूं। इस वेदना का अन्त करने के लिए मैं आत्म-हत्या कर लूँगी।

प्रियतम इतना व्यस्त है कि उसे संदेश भेजने का भी अवकाश नहीं है। फिर सावन आता है फिर प्रियतम की स्मृति हरी हो जाती है—

उमन आयी बादली ढोलो आयो चित।
या बरसै ऋतु आपनी नैन हमारा नित॥

—बादलों की उमस के साथ ही प्रियतम की याद आती है। बादल अपनी ऋतु में ही बरसते हैं परन्तु मेरे नेत्र सदैव बरसते रहते हैं।

प्रियतम की यही याद उसे मरने भी नहीं देती सावन के आने के। हृदय में नई उमंग का संचार होता है क्योंकि—

सावण आवण कह गयो कर गयो कौल अनेक।
गिणतां गिणतां घिस गई मारी आंगलियां री रेख॥

। सन्निवेश

—श्रावण में आने के लिए कह गये थे, अनेक वादे कर गये थे किन्तु अभी नहीं आये। अवधि इतनी निकल गई है कि गिनते-गिनते मेरी अँगुलियों की रेखायें भी घिस गयी हैं।

इससे भी कितनी अवधि निकली इसका अनुमान न होता हो तो हे प्रियतम और सुन लो—

सोना लेने पिउ गये, सूना कर गये देश।
सोना मिला न पिउ फिरे, रूपा हो गये केश॥

—हे प्रियतम धन-प्राप्ति हेतु आप मेरा संसार सूना करके गये किन्तु न सोना ही प्राप्त हुआ और न आप ही लौटे। मेरे तो बाल ही श्वेत हो गये हैं—अर्थात् मेरा यौवन ही समाप्त हो गया है।

आशा अमर धन है। यौवन बीत गया किन्तु आशा अब भी नहीं गई। प्रियतमा को अब भी विश्वास है कि प्रियतम अवश्य आवेंगे। क्योंकि—

धूघ न चूकै डूंगरा, कड़वाहट नींवाह।
प्रीत न चूकै साजना, देस विदेस गयाह॥

—पर्वतों की रुकावट कभी दूर नहीं होती, नीम कड़वाहट नहीं छोड़ता, विदेश जाने पर भी प्रियतम अपना प्रेम नहीं भूलता।

इसी आशा को लेकर वह मोर से पूछती है—

मोरिया जंगल का वासी रै मोरिया बागां का वासी।
मीठा सबद सुनाओ जी मोरिया राजन कद आसी॥

—हे मयूर तुम जंगलों और बागों में रहते हो, मीठी ध्वनि उच्चारते हो, मुझे यह बताओ कि मेरे प्रियतम कब आवेंगे?

स्वतन्त्रता प्राप्ति के साथ ही राजस्थान में द्रुतगति से विकास हो रहा है किन्तु आवास की समस्या का समुचित हल नहीं होने से आज राजस्थान में अनेक व्यक्तियों को राजस्थान में ही प्रवास में अकेला रहना पड़ रहा है, बाहर का तो कहना ही क्या? इस प्रकार वह चिरवियोगिनी राजस्थानी नारी अब भी विरह-वेदना से मुक्त नहीं हो सकी है यद्यपि आवागमन के साधनों के विकसित हो जाने से विरह के दिन गिनते-गिनते अँगुलियों की रेखायें घिसने या बाल श्वेत होने जैसी स्थिति अब नहीं है।

●

प्रियतम यों मत जानियो तोहि विछुरै मोहि चैन ।
सूखे वन की लाकड़ी सी सुलगति दिन रैन ॥

—हे प्रियतम यह मत समझना कि तुम्हारे वियोग से मुझे चैन है। वन की सूखी लकड़ी की तरह मैं दिन-रात जल रही हूँ।

इस पर भी यदि तुम न आ सको तो सुनलो यह अन्तिम निश्चय है। अब वियोग सहा नहीं जाता, अतः —

जो तू सायवा न आवसी सावण पहली तीज ।
वीजल तंई जंवूकड़ी धण मर जावे खीज ॥

—हे प्रियतम यदि श्रावण की पहली तीज पर आप नहीं आवेंगे तो जिस प्रकार विद्युत् से झुलस कर प्राणी मर जाते हैं। उसी प्रकार मैं विरह से झुलस कर मर जाऊँगी।

लेकिन प्रियतम नहीं आया एक के पश्चात् एक करके कई वर्ष निकलते जारहे हैं। हृदय में आशा-निराशा का द्वन्द होता है, प्रियतमा आत्म-हत्या करने का विचार करती है। वह चन्द्रमा से कहती है—

चांदा थारै चांदनेसूती पलंग बिछाय ।
जद जागूं जद एकली मरूं कटारी खाय ॥

—हे चाँद तेरी चन्द्रिका में पलंग बिछाकर सोती हूँ किन्तु जब भी मेरी आँख खुलती है तो अपने आप को अकेला पाकर मैं अत्यन्त दुःखी होती हूँ। इस वेदना का अन्त करने के लिए मैं आत्म-हत्या कर लूंगी।

प्रियतम इतना व्यस्त है कि उसे संदेश भेजने का भी अवकाश नहीं है। फिर सावन आता है फिर प्रियतम की स्मृति हरी हो जाती है—

उमन आयी वादली ढ़ोलो आयोचित ।
या वरसै ऋतु आपनी नैन हमारा नित ॥

—वादलों की उमस के साथ ही प्रियतम की याद आती है। वादल तो अपनी ऋतु में ही वरसते हैं परन्तु मेरे नेत्र सदैव वरसते रहते हैं।

प्रियतम की यही याद उसे मरने भी नहीं देती सावन के आने के साथ ही हृदय में नई उमंग का संचार होता है क्योंकि—

सावण आवण कह गयो कर गयौ कौल अनेक ।
गिणतां गिणतां घिस गई मारी आंगलियां री रेख ॥

गृहस्थ के पारिवारिक जीवन में कन्या का एक बड़ा ही भावपूर्ण, स्नेहिल, क्रीडाप्रिय स्वरूप रहता आया है। कन्या के प्रति सबके हृदय में यह करुण ममत्व रहता है कि इसे खूब खाने दो, खेलने दो। बड़ी होकर न जाने बेचारी कहाँ जा बसेगी? यह "बड़ी होकर न जाने कहाँ जा सकेगी' का भाव कन्या के प्रति सबके स्नेह, ममत्व, दुलार, उन्मुक्त हृदय-प्यार का कारण बनता है। पिता की उस पर विशेष ममता रहती है, माँ का उस पर विशेष प्यार रहता है। वह अपने पीहर—ननिहाल के परिवार में सब परिजनों की बड़ी लाड़ली बेटी रहती है।

जब कन्या परामी होने की वय में आती है तो सभी व्यक्ति उसके लिये योग्यतम वर की खोज में निकलते हैं। सबकी आकांक्षा रहती है कि हमारी लाड़ली को ऐसा घर, ऐसा वर मिले कि वह वहाँ जाकर तनिक भी कष्ट न उठाये। उसकी फूल-सी काया में तनिक भी मुरझाहट न आये। "कन्या झरोखे में बैठी हुई राज्य करे—हुकूमत चलाये। वह सोने की झारी से रूपे का दातुन करे। नित्य नये पक्वान्न आरोगे और कटोरे भरभर कर दूध पिये। पलंग पर शयन करे, उस समय दासियाँ खड़ी उस पर पंखा डुलायें।"

"बाई ने असे घर दीज्यो ए झरोखाँ बैठी राज करे।
सोना की झारी ए रूपा को बाई दातण करे।
जामण को जीमण ए कचोळाँ बाई दूध पीवे।
पलंगाँ को कों पोढण ए क दासी ऊभी चँवर ढुळे।...."

—ऐसा घर-वर ढूँढने की कुटुम्बियों की कामना रहती है। यह कामना फलवती कितनों की होती होगी? —ईश्वर ही जाने!!

तो, बचपन से ही अपनी क्रीड़ाओं से, अपने स्निहिल व्यवहार से बाबुल के घर को, पीहर-ननिहाल को निहाल करने वाली, फुलवाड़ी-सा खिलाये रखनेवाली कन्या जब बन्नी (दुल्हिन) बनती है तो परिवार में हर्षमिश्रित करुणा की धारायें चारोओर बह चलती है। कन्या के अमर सुहाग की आशीषों से अन्तर जितना भर आता है उससे कुछ कम उसके बिछुड़ने की भावना से भर भर नहीं आता है। कन्या के सर्वत्र अबाध स्नेहाधिकार व उसके अभाव में उत्पन्न होने वाली उदासी का लघु चित्र देखिये—

"लाड़ी थारा बावाजी ने बाग लगाड्या,
लाडी थारा दाऊजी ने बाग लगाड्या,
लाड़ी तैं बिना सीचेगो कुण—
म्हारी आँबा बरणी, हाँरी म्हारी नीवू बरणी कोयली।"

वैवाहिक लोकगीतों में कन्या

●

शकुन्तला कुमारी 'रेणु'

लोक-साहित्य जन-जीवन-गंगा की पवित्रतम भावोर्मियाँ हैं; इनमें भी लोकगीत तो अति ही उज्ज्वलतम मानस मुक्तावलियाँ हैं। लोकगीत में हम नारी के विविध भाव-सौन्दर्यमय रूपों के दर्शन करते हैं। नारी, मंगलमयी गृहिणी !!—मां, बहिन, पत्नी, कन्या ! सभी स्वरूप एक से एक बढ़ कर। सभी भावधाराएँ एक से एक अनुपम छविमय ! परम रमणीय, मनसा नमनीय, अभिनन्दनीय !!

यहाँ हम लोक-गीतों के महक भरे वातायन से नारी के कन्यारूप का भाव-दर्शन करेंगे।

पाणिग्रहण (कन्या:)

विवाह में कन्या को पार्वती स्वरूपा समझा जाता है। वह जिस समय भाँवरों के लिये मंडप में ले जायी जाती है, श्वेत वस्त्र धारण करती है, केश खुले रखती है। परोक्ष में उसे उसके स्वरूप का ध्यान दिलाया जाता है कि वह सती-शिरोमणियों में श्रेष्ठ व अपने पति की परम प्रीतिपात्र बने।

उसका यह पार्वतीस्वरूप नारी के उस पावन सतीत्व, दृढ़ पतिभक्ति अनन्य अनुरक्ति, सत्य प्रतीति का द्योतक है जो जगन्माता पार्वती के, शिव के प्रति थे। सप्तर्षियों को भी जिनके चरणों में भक्ति-प्रणाम करना पड़ा था।

पार्वती,—पर्वतकन्या। निश्छल मानसी, पवित्र, सरल ! अपने आदर्शों में उच्चतम ! अपने आचरण में पवित्रतम ! मानसद्रवण में अनुपम !!–यह अपाप विकासकामिनी कलिका पति के चरणों में सम्पूर्ण भक्ति, अनुरक्ति लेकर नमित हो रही है। यह है लोकाचार में कन्या का वैवाहिक आदर्श ! भारतीय संस्कृति का उज्ज्वलतम स्वरूप !! जीवन यहाँ भोग नहीं, महायोग की साधना बन जाता है।

गृहस्थ के पारिवारिक जीवन में कन्या का एक बड़ा ही भावपूर्ण, स्नेहिल, क्रीड़ाप्रिय स्वरूप रहता आया है। कन्या के प्रति सबके हृदय में यह करुण ममत्व रहता है कि इसे खूब खाने दो, खेलने दो। बड़ी होकर न जाने बेचारी कहाँ जा बसेगी? यह "बड़ी होकर न जाने कहाँ जा सकेगी" का भाव कन्या के प्रति सबके स्नेह, ममत्व, दुलार, उन्मुक्त हृदय-प्यार का कारण बनता है। पिता की उस पर विशेष ममता रहती है, माँ का उस पर विशेष प्यार रहता है। वह अपने पीहर—ननिहाल के परिवार में सब परिजनों की बड़ी लाडली बेटी रहती है।

जब कन्या परायी होने की वय में आती है तो सभी व्यक्ति उसके लिये योग्यतम वर की खोज में निकलते हैं। सबकी आकांक्षा रहती है कि हमारी लाड़ली को ऐसा घर, ऐसा वर मिले कि वह वहाँ जाकर तनिक भी कष्ट न उठाये। उसकी फूल-सी काया में तनिक भी मुरझाहट न आये। "कन्या झरोखे में बैठी हुई राज्य करे—हुकूमत चलाये। वह सोने की झारी से रूपे का दातुन करे। नित्य नये पक्वान्न आरोगे और कटोरे भरभर कर दूध पिये। पलंग पर शयन करे, उस समय दासियाँ खड़ी उस पर पंखा डुलायें।"

> "बाई ने असे घर दीज्यो ए झरोखाँ बैठी राज करे।
> सोना की झारी ए रूपा को बाई दातण करे।
> जामण को जीमण ए कचोळाँ बाई दूध पीवे।
> पलंगाँ को कों पोढण ए क दासी ऊभी चँवर ढुळें।"

—ऐसा घर-वर ढूंढने की कुटुम्बियों की कामना रहती है। यह कामना फलवती कितनों की होती होगी? —ईश्वर ही जाने!!

तो, बचपन से ही अपनी क्रीड़ाओं से, अपने स्नेहिल व्यवहार से बाबुल के घर को, पीहर-ननिहाल को निहाल करने वाली, फुलवाडी-सा खिलाये रखनेवाली कन्या जब बन्नी (दुल्हिन) बनती है तो परिवार में हर्षमिश्रित करुणा की धारायें चारोंओर बह चलती है। कन्या के अमर सुहाग की आशीषों से अन्तर जितना भर आता है उससे कुछ कम उसके बिछुड़ने की भावना से भर भर नहीं आता है। कन्या के सर्वत्र अबाध स्नेहाधिकार व उसके अभाव में उत्पन्न होने वाली उदासी का लघु चित्र देखिये—

> "लाड़ी थारा बाबाजी ने बाग लगाइया,
> लाड़ी थारा दाऊजी ने बाग लगाइया,
> लाड़ी तें बिना सींचेगो कुण—
> म्हारी आँबा बरणी, होरी म्हारी नीबू बरणी कोयली

वैवाहिक लोकगीतों में कन्या

●

शकुन्तला कुमारी 'रेणु'

लोक-साहित्य जन-जीवन-गंगा की पवित्रतम भावोर्मियाँ हैं; इनमें भी लोकगीत तो अति ही उज्ज्वलतम मानस मुक्तावलियाँ हैं। लोकगीत में हम नारी के विविध भाव-सौन्दर्यमय रूपों के दर्शन करते हैं। नारी, मंगलमयी गृहिणी !!—माँ, वहिन, पत्नी, कन्या ! सभी स्वरूप एक से एक बढ़ कर। सभी भावधाराएँ एक से एक अनुपम छविमय ! परम रमणीय, मनसा नमनीय, अभिनन्दनीय !!

यहाँ हम लोक-गीतों के महक भरे वातायन से नारी के कन्यारूप का भाव-दर्शन करेंगे।

पाणिग्रहण (कन्या:)

विवाह में कन्या को पार्वती स्वरूपा समझा जाता है। वह जिस समय भाँवरों के लिये मंडप में ले जायी जाती है, श्वेत वस्त्र धारण करती है, केश खुले रखती है। परोक्ष में उसे उसके स्वरूप का ध्यान दिलाया जाता है कि वह सती-शिरोमणियों में श्रेष्ठ व अपने पति की परम प्रीतिपात्र वने।

उसका यह पार्वतीस्वरूप नारी के उस पावन सतीत्व, दृढ़ पतिभक्ति अनन्य अनुरक्ति, सत्य प्रतीति का द्योतक है जो जगन्माता पार्वती के, शिव के प्रति थे। सप्तर्षियों को भी जिनके चरणों में भक्ति-प्रणाम करना पड़ा था।

पार्वती,—पर्वतकन्या। निश्छल मानसी, पवित्र, सरल ! अपने आदर्शों में उच्चतम ! अपने आचरण में पवित्रतम ! मानसद्रवण में अनुपम !!–यह अपाप विकासकामिनी कलिका पति के चरणों में सम्पूर्ण भक्ति, अनुरक्ति लेकर नमित हो रही है। यह है लोकाचार में कन्या का वैवाहिक आदर्श ! भारतीय संस्कृति का उज्ज्वलतम स्वरूप !! जीवन यहाँ भोग नहीं, महायोग की साधना बन जाता है।

उन्मन हैं। तेरे पितामह उदास फिर रहे हैं और तेरी माता तो बिलख उठी है। ओ वनप्रान्तर की कोकिला! तू इस वनखण्ड को छोड़कर कहाँ चली जा रही है?

और, सचमुच यह वनखण्ड की कोकिला परिवार को वन-खण्ड (नितान्त शून्य) बनाकर सब को विलखता छोड़कर,दूर-दूर उड़ जाती है। अपना स्वतन्त्र नीड़ बसाना उसका स्वाभाविक गुण-धर्म है। यह पराये, पोषण पाये नीड़ों में कब टिकी है भला?

o

—बेटी, तेरे बाबाजी ने, तेरे पिताजी ने बाग लगाये हैं। तेरे बिना उनको कौन सींचेगा ? ओ मेरी आम जैसे वर्णवाली, ओ मेरी नींबू जैसे वर्ण वाली कोयल।

प्रकृतिबाला हेतु स्नेह से लगाये गये ममता भरे गुरुजनों के उपवनों की अब क्या दशा होनी है ? वे सिञ्चन के अभाव में कुम्हला उठेंगे, मुरझा जायेंगे, मिट रहेंगे। अरे ! कौन उन्हें सींच-सींच कर कन्या की याद को हरी करेगा भला ?

'कोयली' सम्बोधन यहाँ विचारणीय है। "कोयली"—फुदक-फुदक कर सब दिशाओं को ध्वनि की मधुरता से भर देने वाली ! जीवन में मिठास और झंकार घोलजाने वाली कोकिला ! किन्तु वह कन्या 'काली' कोयल नहीं है। आम्रवर्णी है, —सदा हरी भरी, खिली ! नींबूवर्णी है, —अनुपम रूपवती — जिसके जीवन में सदा सहकार मौरा करते हैं, सौंदर्य खिला रहता है। हर्ष, उछाह, आशा, सुख, समृद्धि, स्नेह, सौंदर्य का प्रतीक यह कन्या जब बाबुल की खिली फुलवाड़ी को छोड़कर अपना स्वतन्त्र नीड़ बसाने "किसी" के साथ भारी हृदय से, छलकर लोचनों से, मुड़-मुड़ कर पीहर की बाट (मार्ग) निहारती, एक अनचीन्हें सुनामी के लिए अपने सभी स्नेही प्रियजनों को छोड़ती, धीमे पग आगे को बढ़ाती है तब-पाहन मन से भी अश्रुगंगा की धारायें क्या नहीं उमड़ पड़ती होंगी ? कन्या की सौभाग्य कामना से, शत-शत आशीषों में किसका आर्द्र अन्तर न झर पड़ता होगा ?

और, विदागान तो हृदय को और भी करुण बना जाता है—

"वनखण्ड की ये कोयल, वनखण्ड छोड़ कठी चाली ये,
थारी आले दिवाले गुड्या धरीं,
थारी साथ सहेल्याँ अणमणी,
थारा दाऊजी थारे बिना अणमणा,
थारा बाबामा फरे छे उदास——
मायड़ थारी बिलख रही !!
वनखण्ड की ये कोयल······"

—ओ विपिन-प्रान्तर की कोकिला ! तू इस वनखण्ड को छोड़कर कहाँ जा रही है ? स्थान-स्थान पर तेरी गुड़ियाएं रखी हुई हैं। तेरी सहेलियाँ तेरे बिना बड़ी उदास हैं, व्याकुल हैं। तेरे पिता तेरे बिना बड़े

उन्मन हैं। तेरे पितामह उदास फिर रहे हैं और तेरी माता तो बिलख उठी है। ओ वनप्रान्तर की कोकिला ! तू इस वनखण्ड को छोड़कर कहाँ चली जा रही है ?

और, सचमुच यह वनखण्ड की कोकिला परिवार को वन-खण्ड (नितान्त शून्य) बनाकर सब को बिलखता छोड़कर, दूर-दूर उड़ जाती है। अपना स्वतन्त्र नीड़ बसाना उसका स्वाभाविक गुण-धर्म है। वह पराये, पोषण पाये नीड़ों मे कब टिकी है भला ?

o

—बेटी, तेरे बाबाजी ने, तेरे पिताजी ने वा
उनको कौन सींचेगा ? ओ मेरी आम जैसे वर्णवाली,
वाली कोयल।

प्रकृतिवाला हेतु स्नेह से लगाये गये ममता भ
की अब क्या दशा होनी है ? वे सिञ्चन के अभाव में
जायेंगे, मिट रहेंगे। अरे ! कौन उन्हें सींच-सींच कर
हरी करेगा भला ?

'कोयली' सम्बोधन यहाँ विचारणीय है। "
कर सब दिशाओं को ध्वनि की मधुरता से भर देने वाली
और झंकार घोलजाने वाली कोकिला ! किन्तु वह क
नहीं है । आम्रवर्णी है, -सदा हरी भरी, खिली ! र्न
रूपवती — जिसके जीवन में सदा सहकार मौरा क
रहता है। हर्ष, उछाह, आशा, सुख, समृद्धि, स्नेह, सौंद
कन्या जब बाबुल की खिली फुलवाड़ी को छोड़कर अ
बसाने "किसी" के साथ भारी हृदय से, छलकर लोचन
पीहर की बाट (मार्ग) निहारती, एक अनचीन्हें सुनामी के
स्नेही प्रियजनों को छोड़ती, धीमे पग आगे को बढ़ाती
से भी अश्रुगंगा की धारायें क्या नहीं उमड़ पड़ती होंगी ? क
कामना से, शत-शत आशीषों में किसका आर्द्र अन्तर न भर प

और, विदागान तो हृदय को और भी करुण बना जात

"वनखण्ड की ये कोयल, वनखण्ड छोड़ कठी चाली
थारी आले दिवाले गुड्या धरीं,
थारी साथ सहेल्याँ अणमणी,
थारा दाऊजी थारे बिना अणमणा,
थारा बाबासा फरे छे उदास—
मायड़ थारी बिलख रही !!
वनखण्ड की ये कोयल...... ..."

—ओ विपिन-प्रान्तर की कोकिला ! तू इस वनखण्ड
कहाँ जा रही है ? स्थान-स्थान पर तेरी गुड़ियाएँ रखी
सहेलियाँ तेरे बिना बड़ी उदास हैं, व्याकुल हैं। तेरे पिता ते

हर तरफ मनुष्य को पुकारता फिरा

●

विश्वेश्वर शर्मा

मुँह चढ़े मुखौटों की भीड़ से घिरा,
हर तरफ मनुष्य को पुकारता फिरा ।।

जिन-जिन को जान लिया, सारे अनजाने हैं,
मेले में अपना भी मीत कहीं खोया है।
पूछा है पद-पद पर नाम नये चेहरे का,
जाने किस चादर में प्रियतम वह सोया है।।

दृष्टि जहाँ दौड़ी, अनुमान था निरा,
हर तरफ मनुष्य को पुकारता फिरा ।।

पगडंडी-पथ विस्तृत चौड़े चौराहे पर,
चीख-चीख टेर सभी ओर तो सुनाई है।
सबने मुँह खोले हैं, सब ही कुछ बोले हैं,
मन को पर कोई तसवीर नहीं भायी है।।

भूल गई नाम किसी एक का गिरा,
हर तरफ मनुष्य को पुकारता फिरा ।।

विश्व-वायु-मंडल में मेरा स्वर गूँज रहा,
श्रुतियाँ ना सुन पाएँ अन्तर तो सुनता है।
लेकिन सब गुप-चुप हैं, जानकर अजाने से,
हर कोई अपने ही बुद्धिजाल बुनता है।।

हाथ नहीं आया विश्वास का सिरा,
हर तरफ मनुष्य को पुकारता फिरा ।।

मन वृन्दावन

विश्वेश्वर शर्मा

मन वृन्दावन कान्हा है विश्वास रे।
सुधियाँ सखियाँ और राधिका प्यास रे।।

गीतों के हैं कुंज, कामना की कलियाँ।
संकल्पों की राह, भावना की गलियाँ।।
ध्यान कदम्ब समान, साधना कालिन्दी।
विविध विचारों की उड़ती विहगावलियाँ।।

जीवन ज्यों उपवन, मस्ती मधुमास रे।
सुधियाँ सखियाँ और राधिका प्यास रे।।

निश्चय का गिरिराज, आस्था के मन्दिर।
सुख-दुख भरे विहार दृश्य अभिनव सुन्दर।।
अभिलाषा वनकाम, प्रेम है वंशीवट,
भक्ति रंगीला रास, इन्दु दृग के अन्दर।।

धड़कन धीमा राग, बाँसुरी साँस रे!
सुधियाँ सखियाँ और राधिका प्यास रे!!

साहस ही बलराम, ग्वाल उत्साह सबल।
दुर्बलताएँ दैत्य, कंस विद्वेष प्रबल।।
त्याग-तपोबल नन्द, यशोदा दया क्षमा,
उद्धव ज्ञान-विवेक, धर्म अक्रूर अटल।।

देह स्वयं ब्रजमंडल का आभास रे!
सुधियाँ सखियाँ और राधिका प्यास रे!!

हर तरफ मनुष्य को पुकारता फिरा

●

विश्वेश्वर शर्मा

मुँह चढ़े मुखौटों की भीड़ से घिरा,
हर तरफ मनुष्य को पुकारता फिरा ।।

जिन-जिन को जान लिया, सारे अनजाने हैं,
मेले में अपना भी मीत कहीं खोया है।
पूछा है पद-पद पर नाम नये चेहरे का,
जाने किस चादर में प्रियतम वह सोया है ।।

दृष्टि जहाँ दौड़ी, अनुमान था निरा,
हर तरफ मनुष्य को पुकारता फिरा ।।

पगडंडी-पथ विस्तृत चौड़े चौराहे पर,
चीख-चीत्कार टेर सभी ओर तो सुनाई है।
सबने मुँह खोले हैं, सब ही कुछ बोले हैं,
मन को पर कोई तसवीर नहीं भायी है ।।

भूल गई नाम किसी एक का गिरा,
हर तरफ मनुष्य को पुकारता फिरा ।।

विश्व-वायु-मंडल में मेरा स्वर गूँज रहा,
श्रुतियाँ ना सुन पाएँ अन्तर तो सुनता है।
लेकिन सब चुप-चुप हैं, जानकर अजाने से,
हर कोई अपने ही बुद्धिजाल बुनता है ।।

हाथ नहीं आया विश्वास का सिरा,
हर तरफ मनुष्य को पुकारता फिरा ।।

आवारा बिम्बों का गीत

●

गिरिवर 'गोपाल' अलवरी

अब तो संध्या घिर आई है चलकर अपना दीप जलाएँ,
तीखी पीड़ा में घुल मिल दो चार घड़ी मन को बहलाएँ।
इन्द्र धनुष बुनतीं अम्बर में धरती की आनन्द व्यथाएँ,
आँसू टपकाते प्रभात हैं आग उगलती हैं संध्याएँ॥

यह दुनियाँ जानी पहचानी फिर भी यह कितनी अनजानी,
लेकिन इसको छोड़ नहीं सकते यह कैसी मजबूरी है।
उलझ गए हैं सब आपस में इतने ज्यादा पास पास हैं,
लेकिन जितना परिचय बढ़ता जाता है, उतनी दूरी है।
परिचय का दस्तूर यहाँ है शिष्टाचार जरूरी यहाँ है,
लेकिन कितनी घृणा जगाती हैं ये चिपकी हुई अदाएँ।
मुस्कानों से ढँकी हुई हैं मानव-मन की अंध गुफाएँ॥

इञ्च इञ्च मुस्कान बेचती फिरती है बेचैन सभ्यता,
कागज के थैलों में सूखे आँसू जमा किए जाते हैं।
चौराहों पर भीड़ लगाकर घूम रहे आवारा पर्दे,
अपनी कमजोरी के अच्छे पैसे कमा लिए जाते हैं।
अपना अपना नाम पूछते फिरते राशन की दुकान पर,
दफ्तर दफ्तर पेट पकड़ कर बैठ गईं भूखी हत्याएँ,
गलियारों से देती हैं संकेत सिफारिश की सुविधाएँ।

धर्म ग्रन्थ का पन्ना पन्ना विद्वानो ने चीर लिया है,
शब्द कहीं के कहीं उड़ गए लेकिन अर्थ वही रहते हैं।
उपदेशो के पंख पड़े हैं धर्मयुद्ध के मैदानो मे।
आए दिन अज्ञान शिला पर, ज्योति मुण्ड कटते रहते हैं,
मन्वन्तर के आदि काल से ईश्वर के प्रत्येक भवन मे,
खण्डित विश्वासों के मैथुन झेल रही लँगड़ी श्रद्धाएँ,
हाय-हाय करती फिरती हैं, पाप-पुण्य की परिभाषाएँ ॥

लाखो पदचिन्हो के लिए न खाली जगह बची रस्तो में,
उन्हीं पुराने पदचिन्हों को लगातार कुचले जाते हैं।
त्यक्त कल्पनाएँ परिधान लिए जाती हैं पीछे पीछे,
शब्दो की अर्थी पर बूढ़े नंगे अर्थ चले जाते हैं।
फटे हुए संयम की मैली चादर से कुरूपता ढाँके,
सड़ा गला शृंगार ओढ़ कर नाच रही नंगी कविताएँ।
कवियों के कण्ठों मे अटकी पड़ी स्वय अपनी चर्चाएँ ॥

अहिभोगो में फँसी हुई इस पृथ्वी का छुटना मुश्किल है,
विष अमृत के 'कण्ठ मूल में शिव के आश्रय मे रहता है।
आए दिन आलोक उबाला करते हैं आँखो मे आँसू,
अन्धकार का तीखा काजल फिर भी सजा हुआ रहता है।
पाँव पकड कर निशा पवन के झरती रहती है शेफाली,
स्वयं समर्पित देह भोग पर किस किस का पहरा बैठाएँ,
रक्त वमन करती हैं आए दिन कितनी ही प्रेम-कथाएँ ॥

लम्बे हाथ बढ़ा कर स्वागत करते हैं आने वालो का,
मुस्कानो के पीछे रखते लम्बे लम्बे दाँत छिपाए।
हम दर्दी के हाथ फिराए जाते हैं गीले गालो पर,
उजले कपडो के नीचे अजगर की लम्बी आँत दबाए,
अरे पराई बस्ती मे आने वालो हम से मत पूछो,
हमको ईश्वर का लिहाज है, किस-किस को शैतान बताएँ
इस धरती में कदम कदम पर दफनी पड़ी हुई आशाएँ।

धीरे धीरे सूर्य छिप गया धीरे धीरे रात आ गई,
धीरे धीरे इन अधरों पर. आंसू की सौगात आ गई।
चैत चाँदनी जेठ मास की गोदी में बेहोश पड़ी है,
धीरे धीरे हम रोते हैं याद पुरानी बात आ गई है।
हम किसके दुःख दर्द मिटाएँ अपने ही दुःख-दर्द बहुत हैं।
अपना दीप बुझालें फिर भी शलभों के शव कहाँ छिपाएं,
यहाँ आँसुओं के सागर में तिरतीं हैं लाखों उल्काएँ॥

अब तो संध्या घिर आई है आओ अपना दीप जलाएँ,
तीखी पीड़ा में घुल मिल दो चार घड़ी मन को बहलाएँ।
इन्द्र धनुष बुनती अम्बर में धरती की आनन्द व्यथाएँ,
आँसू टपकाते प्रभात हैं आग उगलती हैं संध्याएँ॥

सुजाता की खीर

•

अमरसिंह पाण्डेय

[१]

स्वर्ण-हास्य हँसकर ऊषा ने
किया अनावृत द्वार विश्व का
और सुगंधित मंद समीरण
बहता था करता मधु-वर्षण।
निकल पड़े थे खग नीड़ों से
कानन के प्राणों में कलरव —
और मधुर संगीत गूँजता
जीवन का नव-सर्जन लेकर।

•

खग कलरव से गुंजित थे वे
निरंजना के पुलिन मनोरम
उरुवेला के तप-कानन में—
एक नवल आभा बिखरी थी।
दधि-दूर्वा-दीपक-रोचन से
कंचन का थाल सजा लायी
कंचनवर्णी कुसुमित बाला
करती कानन को कुसुमित-सी।

सविनय-श्रद्धा से नत शिर हो
वह वृक्षराज को पूज रही
मानो तरु का पूजन करने—
थी सुन्दरता साकार हुई।

कर वृक्षराज का परिक्रमण,
कर-बद्ध पाणि-पल्लव उसने
धरती पर माथा टेक दिया
"हे वृक्षराज ! है नमन तुम्हें
क्या याञ्चा और करे नारी !
मन भावन मुझको 'वर' देना—
समकुल-समजाति-सलोना-सा,
और··· और क्या··· देव ! यही
सुन्दर-सा यक छौना देना।
हे देव ! बुहारूँ लीपूँगी—
पूजूँगी, दीप जलाऊँगी,
हे देव ! मनोरथ पुरवोगे—
मैं तुम को खीर खिलाऊँगी।"

*

गा रही बधाई कामिनियाँ
स्वर शहनाई का गूंज रहा
उठ रहा सुवासित होम-धूम
स्वर मधुर ऋचा का गूंज रहा
है आज सुजाता का परिणय
सम कुल-समजाति-सलौना-सा
मन-भावन उसने 'वर' पाया
पा रहे निछावर याचकजन।

*

'काँसी की थाली बजी कहाँ
ये आज बधाई क्यों बजती
क्यों गीत छठी के गूंज रहे ?
ये खील बताशे क्यों बटते ?'
'क्या नहीं जानते इतना भी
भर गयी सुजाता की गोदी,
कितना सुन्दर, कितना कोमल
कितना मनहर उसका छौना।
मातृत्व धन्य उसका भैया,
सब उसके पुण्यों का फल है।'

'यह आंगन में हलचल कैसी
ये गीत बधाये क्यों होते ?
यह पायल की छम-छम क्यों कर
क्यों आज सुजाता हुलस रही ?'
है आज पूर्णिमा वैशाखी
अलि, देवि सुजाता जायेगी
शुभ वृक्षराज के पूजन को
भर गयी सुजाता की गोदी
जिनके 'वर' से पाकर छौना।'

[२]

'लेकिन उपवास चले कब तक
अनशन करते तन क्षीण हुआ
इन्द्रियाँ शिथिल होती जाती
चिन्तन की शक्ति विलीन हुई
जीवन का भेद नहीं खुलता
खुल सकी ग्रंथियाँ कब दुख की ?
मिल पायी मनको शांति कहाँ
कब राह मिली जग के सुख की
उपचार मृत्यु का मिला कहाँ
कब जरा समस्या सुलझ सकी ?'
उद्विग्नमना बैठे गौतम
चिन्तन में तरुतर उलझ रहे।

[३]

तरु तल बुहारने-लेपन को
आयी, इक नारी भाग चली
'हे देवि ! चलो सत्वर पूजें
तरुराज आज साकार हुए
खुल गये हमारे भाग्य हरे।''
होकर विह्वल दासी बोली—
'हे देवि सुजाता जय-जय हो
जय वृक्ष देवता की जय हो।''

दधि-दूर्वा-दीपक-अक्षत औ,
रोचनमय कंचन-थाल सजा
ले खीर भरी थाली सुन्दर
बढ़ चली सुजाता सत्वर ही
श्रद्धा-कौतूहल भार लिये।

खुल गये सुजाता भाग्य हरे।
वह वृक्ष-देवता आज स्वयं
मानो पाने को खीर मधुर
उसका अर्चन-पूजन पाने—
साक्षात् विराजित थे तरु-तल।

होकर श्रद्धा से नत-शिर तव—
कर शीघ्र सुजाता ने अर्चन
रख दी वह खीर भरी थाली
'हे देव! लगायें भोग, धन्य?'
सहसा जाग्रत हो मुसका कर
वे गौतम खीर लगे खाने!
"हो रहा चेतना स्पन्दन
इन्द्रियाँ स्वस्थ होती जातीं
जीवन का रहस्य खुला जाता
भिद रहीं ग्रंथियाँ सब दुख की
मिल रही शांति की राह नयी
अमरत्व मिल रहा जीवन में
'निर्वाण मार्ग' खुलता सम्मुख।
'यह भोग-त्याग की दो अतियाँ
दोनों जीवन में दुख दायी
मध्यमा प्रति पद ऽ वलम्बन
जीवन में सबसे सुखदायी।"
और हुए सम्यक प्रबुद्ध
उस 'बोधि वृक्ष के तले 'बुद्ध'
खाकर शुचि खीर सुजाता की
उरुवेला के तप कानन में।

एकलिंगजी की उपत्यका में

●

परमेश्वर शर्मा

ओ भारत की मानभूमि ! तुझको प्रणाम !
ओ वीरों की जन्मभूमि ! तुझको प्रणाम !!

ये सर क्या हैं ?
शुचि जीवन की तरल सरलता,
जिसने युग-युग से
प्रतप्त पीड़ित मानव को
अपने अन्तर में—आश्रय—विश्राम दिया है,
रक्षा की है—
त्राण किया है—निज बलि देकर !

ये पहाड़ क्या हैं ?
धरती के उर की उभरन,
जिनसे स्तन्य पिलाकर मृत्युन्जय पुत्रों को
भर दी नस-नस में
जीवन की लौह-लालिमा,
अन्तर में
करने मरने की अमिट लालसा !

देख रहा हूँ आज
और यह समझ रहा हूँ !
मनुज मान के प्रति
करुणा से पूर्ण हृदय से
क्यों कठोर थे वे—पत्थर से अपने ही प्रति;
उनने पत्थर के उर का ही जो दूध पिया था !!

आज जगा दे अन्तर में वह शाश्वत ज्वाला—
जिससे भस्मीभूत बनें कलमष मानस के,
और कर्मनिष्ठा जागे निष्क्रिय जीवन में,
स्थान मिले मुझको भी तेरे शुचि आँचल में।
और मरण का वरण — अमरता का आलिंगन बन
जीवन को पूर्ण बना दे,— धन्य बना दे !

ओ अमरों की कर्मभूमि ! तुझको प्रणाम !
ओ वीरों की जन्मभूमि ! तुझको प्रणाम !!
ओ भारत की मानभूमि ! तुझको प्रणाम !!!

गीत

●

गिरिराजशरण सिंघल

मदमाते फागुन में, धरती के आँगन में,
तन मन को बोर गई, रंग की फुहार सी,
—मधु की बौछार सी।

गमक उठी ढोलक सी महुआ के पेड़न मे
झनन, झनन, झनक उठी झाँझन-सी मंजरी
कोयल की मुरली पै, रसिया की तान उड़े
बाज उठे नव-कोमल-पत्तों की खजरी
नदिया के पार जब, पछुआ बयार चले
जीवन की बगिया मे, आवै बहार सी। १ । तन मन०

दूर कही खेतों में गेहूँ भी थिरक उठे
घुंघरू सम पछुआ की ढोलक की ताल पै
फागुन की मस्ती में, चना भी बहक जाय
इठलाती, मदमाती, सरसो की चाल पै
बौना-सा-देवर जो, नाच उठा मटर सग
चंदा की चाँदनी मे खेलत धमार-सी। २ । तन मन०

जहाँ देखो रग-मकरंद औ गुलाल-गंध
रस औ आनन्द की छुपाए संग झोली-सी
मानो निकली हो प्रकृति-रानी ही सेना सहित
जगती के जीवन संग खेलन को होली-सी
यौवन मदमाती, इस रानी की एक दृष्टि
तन मन को चीर गई काजर की धार-सी। ३ । तन मन

गीत

व्रजेन्द्र भदौरिया

समझौता कर लूँगा लेकिन शर्त है
तुम न किसी दिन आना मेरे द्वार पर।

मिलना तन की आतुरता है
दूरी मन की गहराई है,
दान अर्चना का लघु जीवन
किन्तु पिपासा स्थाई है,

हाथ तुम्हारे शीतल भर दें घाव को
धर मत देना लेकिन तुम अंगार पर।

अश्रु आँख की परवशता कब
किसी दर्द का निश्छल मन है,
जो पूरी हो गई अदेखी
बुझी कामना का यह तन है,

सुख सपने दे दिये चुकाया बोझ कुछ
पीर सगी हो गई रातियाँ बाँध कर।

यदि हँस गई चमन में कलियाँ
हँसना सबको नहीं जरूरी
अधरों ने सबको स्वर बाँटे
फिर क्या है आखिर मजबूरी,

सबका यदि भर गईं बहारें दामन तो
दुआ कौन माँगेगा फिर पतझार पर।

सच बहुत बार देखा तुमने
निज स्वप्न कामना का दर्पण
माना मोहित कर जाता है
सौन्दर्य असूचित आकर्षण

इसका अर्थ नहीं होता है यह हरगिज़
दाग लगादें कहीं अयाचक प्यार पर ।

अस्त्र मत कुंठित करो तुम !

●

उमेश कुमार

युद्ध यह नूतन नहीं है, जन्म यह पहला नहीं है।
हार आंसू में बहुत है, अस्त्र मत कुंठित करो तुम !!

जय-पराजय के लिए हो, युद्ध यह ऐसा नहीं है।
मृत्यु के क्षण तक लड़ें तुम, जीत का लक्षण यही है।।

जिन्दगी थोड़ी बहुत है,
कर्ज मत बाकी रखो तुम।

यू थकन कर दूर लेते, नींद की चादर पहन हम।
किंतु मन मस्तिष्क को, विश्राम दे पाते कहां हम ?

मौत उस की ही जुगत है,
शाप मत उस को कहो तुम !

और वे क्षण जब न जीवन मे समर के तत्व होंगे।
मृत्यु को लें जीत भी, जीवित न हम उस वक्त होंगे।।

बोझ ही जीवन रहेगा,
हो भले जाओ अमर तुम।

असम-प्रवास

•

राधाकृष्ण शास्त्री

साबरमती आश्रम में यह सुनकर कि असम में बहुत धन पैदा होता है, वहाँ के लोग बहुत भोले हैं, अनपढ़ हैं, व्यापार कुशल नहीं हैं, मैं भी लक्ष्मी और सरस्वती को एक ओर करके गांधीजी के आदेशानुसार ज्ञान व कर्म का समन्वय करने अमीनगांव उतर कर, ब्रह्मपुत्र पार कर, ऐतिहासिक स्थान पांडुघाट पहुँचा, जहाँ पांचों पाण्डवों की मूर्तियां स्थित हैं। जब मैं पलाशबाड़ी (कामरूप) पहुँचा तो वहाँ दिगम्बर जैन शाला में उत्तर-प्रदेश के रहने वाले पं० सुमतिचन्द्रजी जैन बच्चों को जैन-धर्म पढ़ाते थे। सेठों के लड़के वाणिज्य, अंग्रेजी सीखने के भी इच्छुक थे। मेरे जाते ही वे सब सोने में सुगन्ध मान कर मेरे पास पढ़ने लगे। मैं भी बड़े ध्यान से उनको पढ़ाने लगा।

पं० सुमतिचन्द्रजी ज्यादा धन कमाने हेतु मणिपुर चले गये, वहाँ से जब वे लौटे तो मणिपुर की शोभा वर्णन करने लगे, वहाँ के वैभव की शोभा सुनकर उसके प्रति मेरा कुतूहल और आकर्षण तीव्र हो उठा। मैंने मणिपुर की सुषमा, वहाँ की कारीगरी, हस्तकला, जरदोजी, कसीदा एवं प्राकृतिक दृश्य की प्रतिमा अपने मन में कल्पित करली। अब मेरा मन प्रकृति के उस ध्रुव साम्राज्य में विहार करना चाहता था, जिसकी गौरवमयी विभूति अनुपम बताई गई, मगर उस समय मणिपुर जाना एक टेढ़ी खीर थी। वहाँ बिना अनुमति–पत्र लिए कोई नहीं जा सकता था। उसके लिए आठ आने जमा कराने पड़ते थे। मैंने पण्डितजी के द्वारा प्रार्थना-पत्र दे दिया और प्रतीक्षा करता रहा। एक महिने बाद स्वीकृति आ पहुँची तो मेरे आलम का ससार छा गया। शाला के अध्यक्ष श्री सुगनचन्दजी के पास पहुँचा तो वे छात्रों को साथ ले जाने के लिए बिलकुल इन्कार हो गये। उन्होंने कहा "आप अकेले भी सिर्फ तीन चार रोज के लिये जा सकते हैं।

बच्चे तो जाने के लिये एकदम अकुला रहे थे। वे मेरे साथ इतने घुल-मिल गये कि वे येन केन प्रकारेण केवल मणिपुर ही नहीं सारे असम,

बंगाल की सैर भी करना चाहते थे। छात्रों का निरन्तर उत्साह, उमंग और उल्लास देख मैंने छात्रो के अभिभावकों को देशाटन के लाभ समझाये, अन्ततोगत्वा उन्होने मेरे अनुरोध को स्वीकार कर लिया। छात्रों ने यह सुना तो वे हर्ष मग्न हो, चलने को तैयार हो, शाला मे एकत्रित हो गये।

हमने सर्वप्रथम पलाशबाड़ी में श्रीकामाख्या धाम की ओर प्रस्थान किया। यह एक महत्वपूर्ण ऐतिहासिक प्राचीन स्थान है। प्रारम्भ ही में पहाड़ की कठिन चढाई शुरू हो जाती है, यद्यपि यह प्राचीन प्रख्यात धाम है तथापि पहाड सीधा एवं कठिन मार्ग होने के कारण न तो वहाँ सड़क है और न मोटरकार जाती है। मोटे-मोटे पत्थर सीढियों की जगह उबड-खाबड़ जमे हुए हैं जिन पर फिसल जाने के भय से यात्रियो को धीरे-धीरे चढ़ना पड़ता है।

रास्ते मे पहले श्रीगणेशजी का मन्दिर आया जहाँ पर यात्रा मे विघ्न-बाधाओं के निवारणार्थ गणेश-सरस्वती की स्तुति की—

विघ्न विदारण विरदवर, वारण बदन विकास।
वरदेवहु बाढ़ै विशद, वाणी बुद्धि विलास॥
युगल चरण जोवत जगत, जपत रैन दिन तोहि।
जय जय माता सरस्वती, युक्ति शक्ति दे मोहि॥

रास्ते मे पर्वत और वृक्षों का नैसर्गिक सौन्दर्य अति रमणीय है। चारोंओर हरियाली और दृश्य सुहावना तथा मनभावना है। चढाई बहुत सख्त है मगर छात्रों का मन आनन्द से उछल रहा था। उत्साह, उमंग एव उल्लास निरन्तर बढ़ रहे थे, प्रेम की तरङ्ग में उड़कर मातेश्वरी के चरणों मे शीघ्र पहुँचकर दर्शन करने की आशा लगी थी। सब छात्र विश्वास, प्रेम एवं साहस के साथ उछल-कूद करते चढ़ रहे थे। ज्यो-ज्यों ऊपर चढते थे त्यों-त्यों थकावट मालूम होती थी, मगर शीघ्र दर्शन के मतवाले मन में तो विजय-पथ का हर्ष हो रहा था और हमारी आँखों के आगे तो शीघ्र ही सुख का सागर लहराने वाला था। हम निर्दिष्ट स्थान पर पहुँच गये। पानी के विशाल कुण्ड में हाथ पैर धो, पूजा के लिये अगरबत्ती, दीप, कपूर, पेड़ा, माला ले, हम एक विशाल मन्दिर में घुसे तो सामने एक ओर सिंह पर सोये शंकर व उनकी नाभि-कमल पर विराजमान छह मुख, दस भुजा वाली एक देदीप्यमान श्रीकामाख्यादेवी की प्रतिमा और साथ ही एक विशाल बैल पर चढ़े पाँच मुख और दस भुजा वाले शंकर की प्रतिमा तथा दूसरी ओर सिंह पर बैठी एक मुख, दस भुजा, गोदी में श्रीकृष्ण को लिये, एक हाथ से बालकृष्ण

को भगवान का लड्डू खिलाते हुए, अगल-बगल में लक्ष्मी और सरस्वती को लिये, ब्रह्मा तथा विष्णु, महेश, गणेश स्वामिकार्तिक एवं नौ ग्रह आदि विराजमान सच्चे दरबार की फोटो देखी (जैसी मैंने कभी नहीं देखी थी) हमने पूजा की सामग्री चढ़ा स्तुति की—

त्वं संस्तुता पूजिता च मुनीन्द्रैर्मनुमानवैः ॥
दैत्येन्द्रैश्च सुरैश्चापि ब्रह्माविष्णुशिवादिभिः ॥
जडीभूतः सहस्रास्यः पञ्चवक्त्रश्चतुर्मुखः ॥
यां स्तोतुं किमहं स्तौमि तामेकास्येन मानवः ॥
ज्ञानं देहि स्मृति विद्यां शक्ति शिष्यप्रबोधिनीम् ॥
ग्रन्थ कर्तृत्व शक्ति च सुशिष्यं सुप्रतिष्ठितम् ॥

जगन्माता ! मुनीश्वर, मनु और मानव—सभी तुम्हारी पूजा और स्तुति कर चुके हैं। ब्रह्मा, विष्णु, शिव, देवता और दानेश्वर प्रभृति सबने तुम्हारी उपासना की है। जब हजार मुख वाले शेष, पाँच मुख वाले शंकर तथा चार मुख वाले ब्रह्मा तुम्हारा यशोगान करने में जड़वत् हो गये, तब एक मुख वाला मैं मानव तुम्हारी स्तुति कर ही कैसे सकता हूँ। आप मुझे ज्ञान, स्मृति, शिष्यों को समझाने की शक्ति, विद्या तथा ग्रन्थ-रचना करने की कुशलता देने के साथ ही अपना उत्तम एवं सुप्रतिष्ठित शिष्य बनालो।

उस समय एक अनजान व्यक्ति जो मेरे संस्कृत श्लोकों को सुन रहा था, ने कहा "कामाख्या माई के असली दर्शन तो नीचे गुफा में हैं'। सुनकर हम लोग नीचे गये मंदिर छोटा-सा था, रोशनी का प्रबन्ध पूरा न होने से अँधेरा था। सिर्फ एक तेल का बड़ा दीपक जल रहा था। पूजा के दीपक की रोशनी से एक विशालकाय चट्टान की मूर्ति जिस पर सिन्दूर लगा हुआ था दर्शन कर ऋणहत्या निवारणार्थ तीन हजार रुपये तथा एक विद्वान् नरश्रेष्ठ पुत्ररत्न होने का वरदान माँग, साष्टांग प्रणाम करने लगा तो कान में एक आवाज आयी 'बेटा ! धैर्य धरो, एवमस्तु" उस समय जिस ज्योति के प्रकाश का भान हुआ वह अलिखनीय है। छात्रगण तो तितर-बितर हो दृश्य देख रहे थे। ऊपर आ प्रसाद बाँटने लगे तो एक साथ बहुत-सी कुमारी कन्याएँ जो ५, ७, १०, १५, २० साल की थीं, आगईं और बाबू पैसे दो, प्रसाद दो, कहने लगीं। बिना दिये उनसे छुटकारा पाना बड़ा मुश्किल था अतः किसी को प्रसाद, किसी को पैसा दे बिदा किया। हमने पंडों से इस पहाड़ के ऐतिहासिक स्थान दिखाने को कहा। तब विश्वनाथ पंडे ने कहा—"बाबूजी ! यहाँ सब कुमारी-कन्याएँ ही रहती हैं, अविवाहित रहती हैं, यहाँ पहले यंत्र, मंत्र, जंत्र, तंत्र खूब थे, जो इस पहाड़ पर आ जाता था वह वापस नहीं जा सकता था। उसने इस्माइल जोगी की धूनी

बताई जिसके नाम से कई जोगी अब भी झाड़-फूँकी करते हैं। कामरुदेश कामाख्या देवी, जहाँ बसे इस्माइल जोगी के नाम से आराम होता है। पहाड़ सबसे ऊँची चोटी पर भुवनेश्वरी देवी के मंदिर के दर्शन करवाये, जिसके बारे में भागवत में वचन है "श्री भुवनेश्वरी की सतत उपासना करने वाले को सालोक्य एवं सामीप्य मुक्ति मिलती है।"

स्थानों को देखते-देखते एक शाला में गये जहाँ वे ही अज्ञात व्यक्ति जो मन्दिर में मिले थे तल्लीन हो पढ़ा रहे थे, मुझे छात्रों सहित देख गद्‌गद् हो उठे, आनन्द विभोर हो पहले तो छात्रों से अपने मारवाड़ के रीतिरिवाज, रहन-सहन के बारे में पूछ उन्हें गुरु, माता, पिता में भक्ति का उपदेश दिया। "विद्या ददाति विनयम्" नम्रता और अनुशासन की बड़े ही रोचक शब्दों में व्याख्या की। पं० श्रद्धानन्दजी के छात्र सिर्फ असमी भाषा ही जानते थे जबकि मेरे छात्र असमी, हिन्दी और कुछ-कुछ अंग्रेजी के बोलने लग गये थे। छात्र थोड़ी ही देर में आपस में इतने घुल-मिल गये कि आपस में असमिया भाषा ही जानते थे जबकि मेरे छात्र असमी, हिन्दी और कुछ-कुछ अंग्रेजी बोलने लग गये थे। छात्र थोड़ी ही देर में आपस में इतने घुल-मिल गये कि आपस में असमिया भाषा में प्रश्नोत्तर कर मनोरंजन करने लगे। पंडितजी ने मुझे धाम की विशेषता, सभ्यता, संस्कृति, 'उठ मछन्दर गोरख आया' वाली जादू-टोने की बातें बताईं, उनसे मिलकर बड़ी प्रसन्नता हुई। यहाँ पण्डे बहुत सीधे, थोड़ा देने पर भी संतुष्ट, शान्त स्वभाव वाले थे।

पहाड़ से उतर कर नीचे आये और प्रागज्योतिषपुर (गौहाटी) पहुँच नाव में बैठकर उमानाथ महादेव गये। पहाड़ ऊँचा है, मगर शिवजी की मूर्ति नीचे गुफा में है, मंदिर छोटा है, अँधेरा रहता है। श्याम रंग की त्रिकोण महादेवजी की पंचमुखी मूर्ति पर पुष्पमाला, विल्व पत्र, जल चढ़ा पूजा की।

स्तुति—रुद्रो ब्रह्मा उमा वाणी तस्मै तस्यै नमो नमः।
रुद्रो विष्णु उमा लक्ष्मी तस्मै तस्यै नमो नमः॥

इस पर्वत का दृश्य मनोहर है, पर्वत के चारोओर कलकल नादिनी ब्रह्मपुत्र अथाह पानी के बहाव से बहती है, पाट बहुत चौड़ा है अतः समुद्र की तरह चारोंओर पानी ही पानी दिखाई देता है। पौराणिक कथन है कि राजा बलि का पोता बाणासुर यहाँ तपस्या करता था, उसने शंकर से वरदान पा, अनिरुद्ध को कैद कर, श्रीकृष्ण से लड़ाई लड़ी थी।

उमानाथ से नाव द्वारा गौहाटी पहुँचे। गौहाटी असम का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण व्यावसायिक नगर है। यहाँ का सुप्रसिद्ध फैंसी-बाजार देखा, जिसके

विषय में यह लोकोक्ति प्रसिद्ध है कि इस बाजार में अंग्रेजों के समय में कैदियों को फांसी दी जाती थी। अब वहां सेठ-साहूकारों के भव्य-भवन बनकर फैंसी-बाजार बन गया है। यहां के दर्शनीय स्थान देखने के पश्चात् हमने डीमापुर के लिए प्रस्थान किया।

डीमापुर स्टेशन पर पहुँचते ही छात्रों की अगवानी हेतु मारवाड़ी सेठ आये, क्योंकि मारवाड़ियों के लिये छात्रों का शैक्षिक यात्रा का यह पहला ही जत्था था। खान-पान के पश्चात् हम दृश्य देखने निकल पड़े। यहां जमीन पहाड़ी और समतल दोनों ही प्रकार की है। पहाड़ पर एक खंडहर है जिसे हिडम्बा राक्षसी का किला माना जाता है। पौराणिक कथा है कि भीम का पुत्र घटोत्कच यहीं रहता था। महाभारत के युद्ध में घटोत्कच ने पांडवों की ओर से युद्ध लड़ दुर्योधन को मारना चाहा था तब कर्ण ने अर्जुन को मारने के लिये सूर्य के द्वारा दिये गये वाण से दुर्योधन को बचाने के लिए घटोत्कच को मारा था।

हम लोगों ने दूसरे दिन प्रातः डीमापुर से प्रस्थान किया। मोटर से मणिपुर १२० मील दूर है। बीच में कोहिमा (नागालैंड) है! यहीं से पहाड़ की चढ़ाई शुरु हो जाती है। पर्वत की शोभा देखते, तंग सड़क की ऊँचाई, नीचाई, टेढ़-मेढ़ देखते दिन के बारह बजे कोहिमा पहुँचे। वहां दो घण्टे मोटरें इस वास्ते रोकी जाती हैं कि वहाँ से मणिपुर (इम्फाल) जाते समय बहुत ही तंग उतार का रास्ता है और उस रास्ते से सिर्फ एक ही मोटर आ-जा सकती है। दुर्घटना का हमेशा भय बना रहता है, इसलिये आने-जाने वाली कार, मोटरें, बस, ट्रैक्टर आदि दोपहर के समय एक ही बीच के चौड़े स्थान पर एकत्रित हो जाती हैं और फिर एक साथ दोनों ओर चल देते हैं।

कोहिमा में बस स्टेण्ड पर आये कुली, सभ्य पुरुष व स्त्रियों को देखा तो उनके वेश-भूषा, रंग को देखकर मेरी अक्ल दंग रह गई, आँखें चौंध गई। वे दिन में ही डरावने भूत जैसे प्रतीत होते थे। उनको देखते ही मेरे साथ का एक छात्र तिलोकचन्द डर गया और कहने लगा 'मैं तो आगे नहीं जाऊँगा,' 'आगे तो इनसे भी ज्यादा डरावने भूत होंगे।' मैंने उसको ढाढ़स बँधाया कि हम लोग तुम्हारे साथ हैं, डरो नहीं। ये लोग बिल्कुल कोयले जैसे काले थे, किन्तु इनका शरीर सुगठित था, ये अधिक परिश्रमी मालूम पड़ते थे। इन लोगों की आदतें और स्वभाव विचित्र दिखाई पड़ते थे। ये लोग क्षण में ही क्रोध-मूर्ति होकर आपस में लड़ने-भिड़ने को जरासी बात के लिए उतारू हो जाते थे और क्षण में ही शान्ति के अवतार बन जाते थे। फिर आपस में घुल-मिल पहले की भाँति ही हँसी-मजाक करने लग जाते थे। पास ही में एक मारवाड़ी

चाय वाले की दुकान थी औरथो ड़ी दूर पर सेठों के बड़े-बड़े गोले (मकान) थे। मैंने चाय वाले से पूछा "कि इन नागाओं में आप कैसे रहते हैं ?" कहकर इनके विषय में कुछ और विशेष जानकारी करनी चाही। चाय वाले ने बताया कि "ये लोग थोड़ा खाकर भी बहुत भ्रमण कर सकते हैं, किन्तु प्यास इन्हें असह्य होती है। मदिरा अधिक पीते हैं। पीते-पीते बेहोश हो जाते हैं। यह विचित्र बात है कि परिश्रमी होते हुए भी अपना बोझा पीठ पर ले जाते हैं। जंगलों में ये लोग नग्न प्रायः रहते हैं। सिर्फ आगे, पीछे लज्जा स्वरूप पत्तों से अंग ढक लेते हैं। अब कौपिन भी रखने लग गये हैं। यहाँ की स्त्रियाँ अपने बच्चों को पीठ पर बाँध लेती हैं। आभूषण पहनने के के लिए सदैव इच्छुक रहती हैं, इनके गहने बड़े अनोखे होते हैं। स्त्रियाँ हाथों में चूड़ियों की जगह पीतल और ताँबे के तार लपेट लेती हैं। उनके गहने प्रायः काँच, मूँगे, मोती के दाने आदि के होते हैं। बाहर आने वाली स्त्रियाँ अब केवल चार फीट लम्बा और पाँच फीट चौड़ा मेखला पहन लेती हैं। मर्द शुतुरमुर्ग के पंख भी सिर में खोंचे रहते हैं। पैरों में लोहे के कड़े पहनते हैं। इनके घर थोड़े-थोड़े फासले से बसे होते हैं। घर बिल्कुल झोंपड़े ही होते हैं। ये घर से बाहर अस्त्र, तीर-कमान लेकर निकलते हैं। संध्या के समय प्रकाश के लिए ये तेलिया लकड़ी जलाते हैं और रात को इधर-उधर जाने मे जलती हुई लकड़ी लेकर चलते हैं। इन लोगों मे विवाह की प्रणाली अनोखी है। कन्या प्रायः बेची जाती है। मोटी बात यह है कि जब ये लोग हम लोगों के पास सामान लेने आते हैं तो हँसते-हँसते ले जाते है, मगर अगर कोई इनको नग्न प्राय. देखकर हँसने लग जाते हैं तो शीघ्र ही त्योरी बदल झट मारने को उतारू हो जाते हैं। जंगल में तो मारते जरा भी नहीं हिचकते। वैसे ये लोग भोले एवं परिश्रमी हैं। पक्के मांसाहारी हैं।

निश्चित समय पर घंटी के बजते ही हमारी बस ने भी अपना होर्न बजाया हम लोग मणिपुर के लिये रवाना हो गये। रास्ता संकीर्ण है यदि होशियार ड्राइवर न होता, तो अनेक स्थानों पर रास्ते में मृत्यु से ही जूझना पड़ता।

सायं छह बजे मणिपुर पहुँचे जहाँ पर कई मारवाड़ी एवं मनीपुरिया छात्र पर्यटक छात्रों के जत्थे की अगवानी करने बस स्टेण्ड पर मोटर की प्रतीक्षा कर रहे थे। बस स्टेण्ड पर उतरते ही भूमि व प्राकृतिक सौन्दर्य को देख सब छात्र मारे खुशी के उछलने-कूदने लगे एवं नव आगन्तुक छात्रों से सहसा वार्तालाप, हँसी-मजाक कर खिलखिला कर हँसने लगे। वे तो एक क्षण में ही इस प्रकार घुल-मिल गये मानो कि पहले मित्र हों और कई दिन बाद

आ मिले हों। मैं दूर खड़ा इस किलोल दृश्य को देखता रहा और प्रेरणा ली कि प्रेम-पूर्वक बातों ही बातों में बच्चों को शिक्षा दी जा सकती है। यद्यपि कई छात्रों ने अपने निवास स्थान पर ठहरने का आग्रह किया तथापि हमारे छात्रों ने तो सर्वप्रथम अपने पुराने गुरु को प्रणाम कर आशीर्वाद प्राप्त करने का निश्चय किया। अतः हम सब पं० सुमतिचंद्रजी के मकान पर पहुँचे। छात्रों ने अपने गुरुदेव के चरणों में साष्टांग प्रणाम कर आशीर्वाद ली। पंडितजी हर्ष-मग्न हो उठे, मानो कि उनको पुराना खजाना मिल गया हो।

दूसरे रोज सुबह श्री राधाकृष्ण के विशाल मंदिर में राधाकृष्ण ने प्रवेश किया। मूर्ति जैपुर के श्री गोविन्ददेवजी जैसी ही विशाल थी। झांकी बड़ी ही मनोहर थी, भक्तजनों का पूरा जमघट था, नृत्य, गान, भजन-भाव हो रहे थे। मणिपुरी नृत्य (Dance) तो सबने सुना ही है, बड़ा आकर्षक और मनोरंजक था। पण्डितजी ने वहां के ऐतिहासिक खंडहर स्थान, सेठों के भव्य मकान दिखाये, विद्वानों एवं सेठों से परिचय कराया। छात्रों को छात्रों से परिचय, मेल-मिलाप, वार्तालाप कराने हेतु स्कूल में ले गये, जहाँ सम्मिलित छात्रों को कई उपदेश दिये। मुझे भी दो शब्द कहने को कहा गया। आदेशानुसार मैंने बच्चों को भारतीय संस्कृति एवं भावनात्मक एकता, मानव सभ्यता, भाषा, चरित्र एवं अनुशासन पर उपदेश दिया, जिसको सुन कर वहाँ पर उपस्थित अभिभावकों ने इसे समयानुकूल बताया। एक सज्जन ने हमें भोजन करने के लिये आमंत्रित किया। मैंने कहा "यह बात पंडितजी जानें"। उन्होंने पंडितजी से आग्रह कर स्वीकृति ली।

दोपहर बाद प्राकृतिक दृश्यों को देखते-देखते उस मैदान में पहुँचे जहाँ पर नर-मुण्ड हजारों की संख्या में स्त्रियाँ हाथ के बुने हुए कपड़े, भाँति-भाँति की वस्तुएँ लिये एक दूसरी से विनोद करती हुई हँस-मुख चेहरों के साथ खरीददारों की प्रतीक्षा कर रही थीं। मणिपुर के उद्योग-धंधे अपनी बारीक कारीगरी के लिए प्रसिद्ध हैं। वहाँ की बुनाई एवं कशीदाकारी का काम कला का जीता जागता नमूना है। वहाँ के वस्त्रों लहंगा, ओढ़ना, साफा, पगड़ी रूमाल, मफलर, जरी की चौकड़ियों से सुसज्जित साड़ियाँ, टेबल-क्लाथ आदि को देख कर ऐसा लगता है मानो प्रकृति की मनोरम छटा जरी, रेशम व सूत के रंगीन धागों में लिपट कर निखर आयी हो। कशीदाकारी में रंगों का सही मेल तथा फूल-पत्तियों की बारीक कढ़ाई में वहाँ की स्त्रियों का कला-[illegible] तथा प्रकृति के साथ उनकी आत्मीयता झाँकती-सी दिखाई देती है। स्त्री-कलाकारों की सुन्दर कारीगरी का यह बोलता-सा नमूना है।

मणिपुर प्राकृतिक सुषमा से सम्पन्न है, किन्तु आर्थिक दृष्टि से अभी पिछड़ा है क्योंकि यहाँ के पुरुष आलसी हैं। यहाँ की स्त्रियाँ मेहनत से कभी मुँह नहीं मोड़तीं। कितनी ही विपन्नावस्था में क्यों न हो, उनके मुख पर मुस्कराहट खेलती रहती है। छात्रों ने अपनी-अपनी रुचि के अनुसार नाना प्रकार की वस्तुएँ खरीदना शुरू किया जैसे कि किसी मेले में से खरीद हो रही हो। मैंने भी अपने लिये साफे, पगड़ी, मफलर, टेबल-क्लाथ तथा घर के लिए सादा व जरीदार चौकड़ी के ओढ़ने और साड़ियाँ लीं। जिनमें से कई अब भी मौजूद हैं।

इस छटा को देखने बहुत से पर्यटक आते हैं और कारीगरी की चीजें ले जाते हैं और मारवाड़ी व्यौपारी हजारों का माल सारे भारत में भेजते हैं जो कि अति सस्ता और सुन्दर है। पंडितजी ने हमें बताया कि यहाँ सारा कारोबार लेन-देन, उद्योग-धंधे, कृषि स्त्रियाँ ही करती हैं। यहाँ अनुमानतः पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियाँ अधिक हैं। फिर भी परिश्रमी व नेकचलन हैं। चीजें खरीद कर वापस आये तो कुछ अँधेरा हो आया था। स्त्रियाँ प्रकाश के लिए लेम्प की जगह एक प्रकार की लकड़ियाँ जला रही थीं, जो मोमबत्ती की तरह जलती थीं। भँवरलाल काला ने कहा—"मास्टर साहब मूलचन्द ने कपड़े खरीदते समय एक दस रुपये का नोट वहीं पर डाल दिया।" यह सुन कर मूलचन्द को ले मैं वापस गया और नोट के लिए पूछा तो उस स्त्री ने कहा "मेरे पास एक नोट विशेष है अगर आपका हो तो ले लीजिये।" मैंने उसे एक रुपया देना चाहा। उसने नहीं लिया और मुझे दस का नोट दे दिया।

असम में मणिपुर (इम्फाल) का नाम प्रख्यात है। पौराणिक कथा है कि इसी मणिपुर का राजा अहिलवती का पुत्र बर्बरीक केवल तीन बाण लेकर महाभारत के युद्ध में आया था। श्रीकृष्णजी ने पूछा "वीर! किधर से लड़ोगे?" वीर ने कहा "मैं पहले खड़ा-खड़ा युद्ध देखूँगा, मगर जिसकी हार होती दिखाई देगी, उसी की सहायता कर अपनी वीरता प्रदर्शित करूँगा। मैं एक बाण से ही दोनों दलों को खपा सकता हूँ। इन तीन बाणों से तो तीन लोक को मार, प्रलय मचा सकता हूँ, अगर विश्वास न हो मेरी परीक्षा करलें।" यह सुन श्रीकृष्ण ने एक पेड़ से पत्ता तोड़ अपने पैर के नीचे दबा लिया और कहा "कि इस पेड़ के सभी पत्तों को छेद दो।" वीर ने आदेशानुसार अपना बाण छोड़ पेड़ के सारे पत्तों व श्रीकृष्ण के पैर के नीचे के पत्ते को बेध दिया और बाण वापस तरकस में आ गया। उसकी वीरता को देख श्रीकृष्ण ने भी दाँतों के नीचे अँगुली दबाली और अपना अकाज होता देख वीर से बोले "यह समरभूमि एक बड़े वीर का बलिदान माँगती है अगर दानी हो तो शीश चढ़ाओ।" वीर ने कहा "मैं एक जगह रहकर वीरों का युद्ध देखना चाहता हूँ।"

सन्निवेश ।

श्रीकृष्ण ने झट उसका सिर काट ऊँचे पहाड़ पर रख दिया, जब युद्ध खतम हुआ सब वीर अपनी-अपनी बड़ाई करने लगे तब श्रीकृष्ण ने कहा "कि इस पहाड़ पर रखे शिर को पूछो वह सही बात बतायेगा।" तब शिर से पूछा गया तो उसने यह न्याय किया "कि युद्ध में चारों ओर श्रीकृष्ण का ही सुदर्शन चक्र मार रहा था एवं द्रौपदी काली का रूप धारण कर खप्पर भर-भर रुधिर पी रही थी।" इस सत्य वचन को सुन श्रीकृष्ण ने हर्षित हो शिर को वरदान दिया कि "कलि में तुमको श्याम कन्हाई कह कर सब स्त्री-पुरुष तुम्हारी पूजा कर पुत्र-धन आदि मनोवांछित फल प्राप्त करेंगे।"*

मणिपुर से हम लोग वापस डीमापुर आगये यहाँ से हमने तिनसुकिया के लिये प्रस्थान किया।

तिनसुकिया में पहले ब्रह्म लीन श्रद्धेय श्री जयदयालजी गोयन्दका से भेंट हुई जो आजकल 'कल्याण' गीता प्रेस, गोरखपुर में रह, समाज-सेवा करते हैं। वे छात्रों की शैक्षिक यात्रा से बहुत प्रभावित हुए, उन्होंने छात्रों को सेवा, चरित्र और अनुशासन पर उपदेश दिया और सूरदास का एक भजन भी सुनाया जिसकी प्रथम पंक्ति थी 'तजो रे हरि विमुखन को संग।"

वहाँ से श्री नानूरामजी हरितवाल के सुरमे के कारखाने को देखने गये, जो कि हिमालय से ममीरा मँगवाकर गुलाब-जल में घोटकर सुगन्धित सुरमा बनाते थे। इस ज्ञान व कर्म समन्वित उद्योग-धन्धों को देखकर मेरे कई छात्रों के मन में इस विधि को सीखने की अभिलाषा हुई। छात्रों की अधिक उत्कण्ठा देख उनकी पत्नी पार्वतीदेवी ने (जो इस कारखाने की देखभाल कर रही थीं) बड़े लाड़-प्यार से चम्पालाल, राजमल व झूमरमल को सुरमा बनाने की विधि समझायी। नानूरामजी हमें तिनसुकिया के नजदीक डिगबाई ले गये जहाँ तेल के कुओं में से पम्पों द्वारा तेल निकाला जाता है एवं साफ कर टीनों में भरा जाता है।

तिनसुकिया से हम डिब्रूगढ़ गये जो कि प्रसिद्ध व्यापारिक कस्बा है। हम श्री रामेश्वरलाल सहरिया (जिनका कालेज कालाडेरा, जयपुर में है) के चाय-बगान को देखने गये, जहाँ से चाय दूर-दूर तक जाती है, जहाँ समतल भूमि में हमारे राजस्थान के मैदानों में जो गेहूँ के खेतों की तरह उगी हुई थी। बगीचे में चाय के पौधों का निरीक्षण किया तो ज्ञात हुआ कि ऊपर ही ऊपर की छोटी पत्ती व विदेशों में अधिक प्रिय है। दूसरे नम्बर की पत्ती

सूचना:—यदि किसी महानुभाव को मेरी यह खोज कपोल-कल्पित जान पड़े, वह फाल्गुन शुक्ला बारस (द्वादशी) को खाटू (सीकर) में जो मेरे गाँव खाचरियावास से बारह मील है, आकर प्रत्यक्ष दर्शन कर वहाँ की विलक्षण मूर्ति व मनोरम दृश्य देख अपना जीवन सफल करें।

सर्वश्रेष्ठ बता बड़ी-बडी कम्पनियों को देते हैं। तीसरे नम्बर की पत्ती को इया बता कर बेचते हैं तथा चौथे नम्बर की मोटी पत्ती का उपयोग सर्व धारण व्यक्ति करते हैं। इस समय एक विचित्र घटना घटी, जब एक छात्र मल बगान में घूम रहा था तो यकायक काला सर्प निकल कर उस की फ दौड़ा, उसे देख रुड़मल चिल्लाया। उसकी चिल्लाहट को सुन हम लोग ़े और बगान का कुली हाथ मे कुखरी (एक हथियार) लेकर आया और गरे देखते-देखते झट सांप के फन को काट. उसकी पूँछ भी काट दी तथा थ मे लेकर बगान के मैनेजर के पास ले गया। मैनेजर ने उसे आठ आने गम के दिये और वह सांप खाने को भी दे दिया। मैंने जिज्ञासा की कि यह ई क्या बात है ? इतने में डाक्टर साहब आ गये, उन्होने कहा "सांप के फन ही जहर रहता है, जिसको इसने काट फेंका।" कुली लोग प्राय सांप खाया रते है। मैंने उस महान शक्ति को धन्यवाद दिया, जिसने मेरे धूल भरे हीरे ड़मल को भयकर काल के गाल से बचाया। वरना तो मेरा मुँह काला ता, मैं उसकी माता को क्या उत्तर देता !

डिब्रूगढ की स्थिति पर गौर किया जाय तो बडा आश्चर्य होता है, क ओर शहर मे ऊँची-ऊँची अट्टालिकाओ मे गरीबो की कमाई चूस कर बैठे ठ आनन्द मना रहे हैं तो दूसरी ओर बगानो मे भयकर सर्पों के मध्य बैठे ली जीवन-यापन भी अच्छी तरह नही कर सकते। न बच्चों की पढाई है, सभ्यता।

हम डिब्रूगढ से वापस लुमडिंग आये। लुमडिंग से सिलचर जाते मय रास्ते में कई लम्बी गुफाएँ आती हैं। पहाड़ो मे रेल के दोनो ओर दो जिन लगाये जाते हैं। बीच में एक बड़ी गुफा आई जो ऊँचे पहाड़ को बीच से काटकर सुरंग की तरह रेल-मार्ग के लिए बनाई गई थी, जो करीब ीन मील लम्बी थी। रेलगाडी गुफा के मध्य मे पहुँची ही थी कि कायक आगे के खीचने वाले इजन में खराबी हो गई अतः गाड़ी वही ठप्प ो गई। गुफा का अंधेरापन और धुंआधोर हो जाने से मुसाफिरो की जान घवरा गई। मैंने तो यही विचार लिया था कि अब एक दो मिनिट में प्राण-खेरू उडने वाले हैं। बच्चे ऊपर का स्वांस ले रहे थे। मैं तो मरूंगा सो मरूंगा ही मगर ये नव कलियाँ बिना खिले ही इसी डिब्बे के खन्दक मे बे मौत मुरझा जायेंगी। मैं तो श्री हनुमानजी का सकट-मोचन पाठ करने लगा। ईश्वरेच्छा बड़ी बलवान् है। प्रकृति को हम लोगो से काम लेना था, इजन ठीक हो गया, गाड़ी महासकट से पार हो गई। सभी ने खुली हवा में श्वासें लीं।

सन्निवेश।

मौत के अनेक वहाने होते हैं और जीवन-रक्षा के अनेक सहारे। शक्ति को यही मंजूर था कि हम बचे रहें। मेरे मन में लोल लहर लहि पवन के सदृश विचारों का सागर उमड़ पड़ा। जब गार्ड ने गाड़ी को सम्भाला तो उसमें तीन मनुष्य, पाँच स्त्रियाँ और नौ बच्चे वेहोश हुये मिले। आगे स्थान पर गाड़ी ठहरी तो बच्चों के कुछ खाने की इच्छा। रेल से उतर, स्टेशन पर गये तो एक चने वाले को देखा। मोहनलाल ने दो आने के चने माँगे। चने वाला कुछ चने तथा उनके ऊपर दो मछलियाँ देने लगा, तब सोहन ने लेने से इन्कार किया तो चने वाला बड़बड़ाते हुए दो मछलियाँ और देने लगा, इतने में गाड़ी ने सीटी दे दी। चने छोड़ सब गाड़ी में बैठ गये। रात्रि भर बच्चे भूखे रहे। साथ में जो अत्यल्प सामग्री थी उसी से काम चलाया। यह संतोष रहा कि जान तो बची।

फिर यहाँ से त्रिपुरा होते हुए हम चटगांव पहुँचे जहाँ समुद्र हिलोरे मार रहा था। यह नयनाभिराम दृश्य देखने पर हमारे हर्ष की सीमा न रही। चटगांव से हम फिर सिलहट होते हुए बस द्वारा शिलांग पहुँचे।

यहाँ पर्वत की चढ़ाई बहुत सख्त है। पर्वत का दृश्य सुहावना तथा मन-भावना है। जगह-जगह पर ठंडे जल के झरने मानो भगवान् को पर्वत अञ्जलि दे रहे हों। हवा बड़ी सुहावनी और शीतल बह रही थी। गर्मी का मौसम था अतः साथ में सर्दी के कपड़े नहीं ले गये थे। शिलांग में सर्दी अधिक पड़ती है। शिलांग में मन्दिर में एक सामान रख दृश्य देखने चल दिये।

असम की राजधानी होने के कारण यहाँ बड़े-बड़े बंगले बने हुए हैं। कई सेठों के अच्छे-अच्छे भव्य गोले (भवन) भी बने हुए हैं। छात्रों का मन प्रकृति-सौन्दर्य को देख उछल रहा था। उत्साह, उमंग एवं उल्लास निरन्तर बढ़ रहे थे क्योंकि यह प्रकृति की सुरम्य रंग-स्थली है। यहाँ की पर्वतमालाओं ने बड़ी उदारतापूर्वक सौंदर्य बिखेर रखा है। रुई के रेशे से भाप के बादल हमारे सिरों को छू-छू कर बेरोक घूम रहे थे, हल्के प्रकाश और अंधियारी से रंग के कभी वे पीले दीखते, कभी सफेद और फिर जरा देर में अरुण पड़ जाते, मानो वे हमारे साथ खेलना चाह रहे थे। यहाँ के पर्वत और वृक्षों का नैसर्गिक सौन्दर्य अति रमणीय था। चारोंओर हरियाली ही हरियाली नजर आती थी।

शिलांग से हमारे गोल चेरापूंजी गये जहां विश्व भर में सर्वाधिक वर्षा होती है। [illegible] बादल छाये रहते हैं। एक ओर तो [illegible] और [illegible] दूसरी ओर [illegible] सीधी खाई। [illegible]

की लू से झुलसे हुए प्राणी के लिये यह हवा बड़ी ही आनन्द-दायिनी होती है। यहाँ शादी का विचित्र रिवाज देखा। पहाड़ियों में एक माला और एक पान में शादी हो जाती है जबकि बंगालियों में सिर्फ एक बार चाय, तम्बूल (पान) माला और दो समोसों में यह रस्म पूरी हो जाती है। भगवान् की लीला विचित्र है पहाड़ी लोग निर्धन हैं, भूखे हैं, तन पर कपड़ा नहीं है, फिर भी सन्तोषी हैं, ईमानदार है। पादरियों के सम्पर्क में आए हुए कीमती वस्त्र पहन गुल-छर्रे उड़ाते हैं। दूसरे रोज शिलांग से प्रकृति सौन्दर्य-रस का नयनों द्वारा पान करते हुए गोहाटी चले। सड़क-पहाड़ काट कर बड़ी विकट टेढ़ी-मेढ़ी बनाई गई है। रास्ते में जगह-जगह घुमाव आते हैं, जहाँ बसों के टकराने का बड़ा डर रहता है, इसलिए बार-बार हार्न देना पड़ता है। अगर जरा भी चूक हो जाय तो गाड़ी और सवारियों का कहीं पता न चले। गोहाटी बस-स्टैण्ड पर पहले से ही खड़ी बस प्रतीक्षा कर रही थी अतः सब बैठ पलाशबाड़ी पहुँचे जहाँ छात्रों की माताएँ कई दिनों से बिछुड़े बच्चों के लिए *कौशल्या माता की* तरह सगुन मना रही थी। बच्चों को देखते ही सब मिल आनन्द-विभोर हो उठे और रास्ते में घटित घटनाओं को सुन भगवान् को धन्यवाद देने लगे।

ताज़ी हवा

●

श्री कृष्ण विश्नोई

ओफ़ ! भयंकर ! कितनी बदबू है सारा कमरा भर गया। इन चपरासियों के नाक पर डाट लगी है। 'मुझे तो नहीं आती।'

कल 'बायलोजीकल लेब' में पानी की कुण्डी में दम घुटकर सौ मेंढ़क मर गये। उन्हीं की बदबू आ रही है। मेंढ़क कल मरे बदबू आज ! और यहाँ इतनी दूर !

देखा न ! मैं कह रहा था न ! यहीं कुछ है। कोई चूहा मर गया है। चूहा न सही, साँप सही। मरा तो यहीं न ! मेरी ऊपर की दराज में ! सफेद पंख लगा साँप ! आश्चर्य ! मरा हुआ !

सफेद पंखी साँप बड़ा शुभ होता है, परन्तु मर गया यह बुरा हुआ। ऊपर की दराज में आया कैसे ? मैंने कहा था ऊपर की छड़ों वाली खिड़की खुली रखा करो—ताजी हवा आती रहे। यह किसे मालूम था, ताज़ी हवा के साथ साँप भी आ सकता है और वह मर भी सकता है। चलो, अच्छा हुआ वह मर गया। वरना ! वरना मैं दराज खोलता और ! साँप का मरना अशुभ है और जीवित रहना....!

अब जेठू इसे बाहर कैसे फेंके ? यह मरा हुआ साँप वह ब्राह्मण ! जब तक रामू नहीं आ जाता। क्या करें ? चलो अखबार ही पढ़ा जाय। मुख्य शीर्षक काफी है।

'गन्दे पानी के नाले में एक औरत और एक बच्चे की लाश सड़ी हुई मिली। चमड़ी गल गई। पहचानी न जा सकी। चलो अच्छा हुआ पहचानी न जा सकी।

'बाप द्वारा बेटे की हत्या'

'युवती के साथ बलात्कार'

'पुलिस ने छात्रों पर गोली चलाई, पाँच मरे, पच्चीस घायल'

'नक्सलबाड़ी मे कांड, दुकानें लुटी, पुलिस देखती रही।'

'दो करोड़ रुपये के नये कर।'

'साप्ताहिक भविष्य ! धन लाभ।'

ले आये। हाँ चार-पाँच अगरबत्ती एक साथ जलाओ, शायद खुशबू से बदबू दब जाये। हाँ जरा जल्दी, साहब राउण्ड पर हैं।

छुट्टी ! यह कैसे ?

अच्छा ! अच्छा ! वह लडका मर गया। लडका बडा अच्छा था।

बिलकुल ठीक। छात्रों की सभा मे शोक-प्रस्ताव पास करके भेज दिया जाय। भगवान् मृतात्मा की शान्ति तथा उसके परिवार को दुःख सहन की क्षमता दे।

लड़का अपनी शाला परिवार का सदस्य था। दो मिनट का मौन ! और ? काफी है।

वैसे हुआ बहुत बुरा। लड़का अच्छा था। मैंने ही उसकी फीस माफ करवाई थी। बहुत गरीब था।

परन्तु यह सब हुआ कैसे ?

दो दिन से खाना नही खाया था। कल पेपर खराब हो गया था। शहर से दो मील दूर, रेल के नीचे कट मरा। एक पाँव और एक हाथ कट गये थे, भयंकर सर्दी में तड़फ-तड़फ कर प्राण छोड़े।

ओफ ! भयंकर ! हाँ रामू आ गये ! देखो इस साँप को कही दूर गहरा खोदकर गाड़ना। कभी-कभी मरे हुए साँप जी उठते हैं। और हाँ, गेंदू तुम सुनो ! आज सारी खिड़कियाँ ठीक से बन्द करना। कही कोई और साँप-वाँप न घुस आये। और जरा देखो केशियर-साहब आ गये क्या ?

छुट्टी हुई। घर जा कर भी क्या करेंगे ! नई पिक्चर आई है— पेरिस की शाम' इसे ही देखा जाय।

"वाह ! साहब क्या कहते हैं ! आ गये ! उनसे मेरे नाम पाँच रुपये माँग लाओ। अच्छा चले ! हाँ जरा ध्यान से। सब खिड़कियाँ—ऊपर के रोशनदान सब अच्छी तरह से बन्द करना।

'साब' ताजी हवा ! अरे मारो गोली ताजी हवा को फिर कोई साँप-वाँप ! हाँ और सुनो—छोटे बाबू को बोलना—जो लड़का मरा है उसका ड्यूज तैयार रखें।

—और जिन्दगी का एक बेलाग दिन ढल गया।

टूटा हुआ मन्दिर

⊛

वेद शर्मा

आठवीं कक्षा की मूर्ति-कला की परीक्षा थी। सभी छात्र अपने-अपने कार्य में व्यस्त थे। कोई मिट्टी को पानी में भिगो रहा था तो कोई गीली मिट्टी को विशेष आकार देने में तल्लीन था, कोई बनायी हुई आकृति को अंतिमरूप दे रहा था तो कोई तरह-तरह के रंगों से आकृति रंगने में व्यस्त था—सभी छात्र एकचित्त होकर अपने-अपने कार्य में जुटे हुए थे।

कमरे के एक कोने में बैठा पिण्टू गीली मिट्टी को विभिन्न फलों के आकार में डालने में व्यस्त था—किन्तु प्रयत्न करने पर भी वह फलों की सही आकृति बनाने में अपने को असमर्थ पा रहा था—इससे उसकी झुंझलाहट बढ़ती जाती थी। मूर्त्ति-कला में कभी उसे रुचि नहीं रही। वह सदैव यही सोचा करता था—'यह भी कोई पढ़ाई का विषय है-सारे हाथ व कपड़े खराब करो मिट्टी में कुछ बनाना प्रारम्भ करो अन्त में बन जाता है कुछ और ही।'

कब से वह मिट्टी का सेव बनाने का प्रयत्न कर रहा था—वह बार-बार दृष्टि उठाकर दूसरी ओर बैठे राजू को देख लेता था जो कि बड़ी तल्लीनता से मिट्टी का मंदिर बनाने में जुटा था। 'कितना सुन्दर बन रहा है उसका मंदिर।' पिण्टू यह समझ नहीं पारहा था कि वह स्वयं क्यों नहीं बना पाता इतनी सुन्दर आकृतियां। राजू के हाथ में ऐसा कौनसा जादू है जो उसके हाथ लगाते ही मिट्टी के नये-नये सुन्दर आकार बन जाते हैं।

पिण्टू ने एक बार फिर अपने सेव को उचित आकार देने का प्रयत्न किया किन्तु इस बार उसकी आकृति और भी अधिक विकृत होगई। वह इतनी आसान-सी वस्तु भी नहीं बना पारहा था—यह सोच उसकी झुंझलाहट और भी बढ़ गई। साथ के सभी छात्र अपने-अपने कार्य में व्यस्त थे—राजू का मंदिर और भी आकर्षक बन गया था। हाथ का प्रत्येक स्पर्श उस कलाकृति को नवीन आकर्षण देरहा था। ज्यों-ज्यों राजू का मंदिर आकर्षण बन रहा त्यों पिण्टू के मन में राजू के प्रति ईर्ष्या बढ़ती जारही थी।

'इस बार फिर राजू कक्षा मे प्रथम आएगा' पिण्टू सोचने लगा। पिछले वर्ष भी राजू कक्षा मे प्रथम था और पिण्टू द्वितीय-अन्य विषयों में दोनों के अंक लगभग समान थे किन्तु मूर्तिकला मे राजू के अंक पिन्टू की अपेक्षा बहुत अधिक थे अतः वही कक्षा में प्रथम रहा था। पिण्टू को पूर्ण विश्वास था कि इस वर्ष अन्य विषयो मे उसे राजू की अपेक्षा अधिक अंक प्राप्त होगे किन्तु मूर्तिकला में राजू उससे अधिक अंक पाजाएगा और फिर वही प्रथम रहेगा। यह सोच मन ही मन अत्यन्त क्रोधित हो उठा किन्तु वह करे भी तो क्या? उसके तो सेब का आकार भी लड्डू जैसा बन गया।

तभी राजू अपने स्थान से उठा और घूमकर विभिन्न दूरियों तथा कोणों से उसने अपने बनाये मंदिर को देखा। कुछ संक्षिप्त से सुधार किए कही तनिक-सी मिट्टी लगायी, कही गीले हाथ से किसी भाग को सवारा। और अन्त मे उसे उठाकर एक कोने मे रख आया जहाँ वह सुरक्षित रह सके।

इसके बाद राजू पिण्टू के पास गया जो अभी भी फलों के आकार बनाने का प्रयास कर रहा था। आस पास कोई अध्यापक नही था—राजू ने पिण्टू की सहायता करनी चाही किन्तु पिण्टू को लगा कही राजू उसकी आकृतियाँ और अधिक खराब नही कर दे। राजू ने मिट्टी को छूकर देखा। उसने अनुभव किया कि मिट्टी आवश्यकता से अधिक गीली थी। अत उसने पिण्टू से कहा कि वह उसमें कुछ और मिट्टी लाकर मिलाए।

जहाँ मिट्टी थी उसके पास ही राजू द्वारा बनाया मंदिर रखा था। वहाँ पहुँच पिण्टू ने चारो ओर देखा, सब अपने कार्य में व्यस्त हैं—कोई भी उधर नहीं देख रहा था। पिण्टू ने शीघ्रता से अपना एक पाँव मन्दिर पर रख दिया और मिट्टी लेकर फौरन ही लौट आया। पिण्टू ने चारो ओर देखा सभी छात्र उसी प्रकार कार्य मे व्यस्त थे। उसने सन्तोष की साँस ली कि किसी ने उसे नही देखा।

राजू ने पिण्टू की मिट्टी ठीक की और शीघ्रता से कुछ फलो के आकार बनाने प्रारम्भ किए। अभी वह व्यस्त था कि दूर से उसने अध्यापक को आते देखा अत. शीघ्रता से अपने स्थान पर पहुँचा। मन्दिर को रंगने के लिए वह रंग घोलने लगा, वह मन्दिर लेने गया। पर यह क्या? वह अवाक् रह गया। यह कैसे हुआ? किसने किया? उसका सारा परिश्रम व्यर्थ हो गया—अब तो समय भी नही कि दूसरा मन्दिर बना सके। वह क्या करे समझ नही पाया। बिना किसी से कुछ कहे वह चुपचाप उसे टूटे मन्दिर को उठा लाया और सुधारने लगा। पिण्टू मन ही मन प्रसन्न था यह सब देख।

धीरे-धीरे सब छात्र अपनी बनाई वस्तुएँ अध्यापक की मेज रखने लगे। समय समाप्त हो चुका था—राजू शीघ्रता से कार्य

—

सम्नि

बाहर आया। वह बिना किसी से कुछ कहे सीधा घर की तरफ चल दिया। घूमकर देखा पीछे पिण्टू आरहा था—

पिण्टू—"तुम्हारा मन्दिर तो बहुत सुन्दर बना था राजू ! मैंने देखा था।"

राजू—"ठीक ही बन गया था। अच्छा ! पिण्टू अब मैं चलूं।"

पिण्टू—"वाह ! आज अभी कैसे ? आज तो परीक्षा समाप्त हुई है—चलो थोड़ी देर खेलेंगे।"

राजू—"नहीं पिन्टू ! माँ की तबियत ठीक नहीं है—मैं घर जाऊँगा—अच्छा चलूं परीक्षाफल के दिन मिलेंगे।"

यह कहकर राजू चला गया। पिण्टू कुछ क्षण उसी स्थान पर खड़ा रहा। उसे आश्चर्य हो रहा था कि राजू ने मन्दिर टूटने की बात किसी को नहीं बताई। कहीं उसने मुझे देख तो नहीं लिया ? नहीं यह कैसे हो सकता है ? वह तो उस ओर पीठ किये बैठा था—किन्तु उसकी ओर देख ऐसा प्रतीत होता था जैसे वह सब कुछ जानता हो– नहीं ······· नहीं यह केवल उसका वहम है—पिण्टू ने अपने आपको समझाया—राजू को कुछ नहीं मालूम— कुछ मालूम हो भी नहीं सकता।

पिण्टू घर जाने को घूमा तो देखा कि कक्षा के अन्य छात्र भी उसी ओर आ रहे थे। एक छात्र बोला—पिण्टू ! राजू कहाँ गया—उसका मन्दिर कैसा बना। भोला कह रहा था उसका मन्दिर किसी ने तोड़ दिया–क्या यह सच है ? पिण्टू—"मुझे कुछ नहीं मालूम। राजू की माँ बीमार है, मैं भी उधर ही जा रहा हूँ।"

साथियों से झूठ बोल वह अपने घर की ओर चला और सोचने लगा 'लो क्या लड़कों को भी मालूम है—हरी उसी से क्यों पूछ रहा था राजू के बारे में'—लगता है लड़कों को संदेह हो गया है मुझ पर—कहीं किसी ने मुझे देख तो नहीं लिया मन्दिर तोड़ते हुए। नहीं ·· ····नहीं सब कार्य में व्यस्त थे किसी ने नहीं देखा—कोई देखता तो उसी समय सबको कह देता उसका संदेह निर्मूल है। यह सोच सोच कर पिण्टू के मन में एक द्वन्द-सा उठ खड़ा हुआ।

उस दिन पिण्टू का मन किसी भी कार्य में न लगा। उसकी आँखों के सम्मुख बार बार टूटे हुए मन्दिर का दृश्य आ रहा था— उसे कभी अपने किए पर पश्चाताप हो रहा या तो कभी यह सोच, भय लगता कि यदि यह भेद खुल गया तो क्या होगा ? सब उससे क्या कहेंगे। कैसे वह राजू के सामने जायेगा ? राजू उसे कितना प्यार करता है, उसका कितना ध्यान रखता है–उसी राजू के साथ उसने धोखा किया।

वह ठीक से खाना भी नहीं खा पाया। रात को जल्दी सो गया किन्तु थोड़ी देर बाद फिर जग गया। मस्तिष्क मे टूटा हुआ मन्दिर घूम रहा था। काफी देर बाद नींद आई तो स्वप्न में भी टूटा हुआ मन्दिर दिखाई दिया—उसे लगा कि अध्यापक उसे संकेत करके सब लड़कों से कह रहे थे—'यह वह लड़का है जिसने अपने स्वार्थ के लिए अपने ही साथी से धोखा किया है—इसने दोस्ती के पवित्र सम्बन्ध को कलंकित किया है—अतः इसे जो भी दण्ड दिया जाय कम है और क्या दण्ड दिया जाय इसका निर्णय राजू करेगा। सब छात्र राजू की तरफ देख रहे हैं और वह अपने स्थान पर खड़ा होकर कहता है—

"सर ! पिण्टू ने यह सब जानबूझ कर नहीं किया—गल्ती से उसका पैर मन्दिर पर पड़ गया होगा—अतः उसे क्षमा कर दिया जाए।"

पिण्टू ने चीखकर रोना चाहा-पर उसकी नींद खुल गई और फिर वह पूरी रात न सो सका। उसका मन उसे बार-बार धिक्कार रहा था। वह अशांत हो उठा—पश्चाताप् की ज्वाला मे जलने लगा। इसी प्रकार इसी अशांत मन.स्थिति में किसी प्रकार चार दिन बीते और परीक्षाफल घोषित होने का दिन आया—परीक्षाफल घोषित हुआ—पिण्टू प्रथम और राजू द्वितीय।

राजू दौड़कर पिण्टू के पास गया और उसे अपनी बाहों मे भरकर बधाई दी—पिण्टू की आँखों में आँसू आ गए। उसने कुछ कहने का प्रयत्न किया किन्तु मुँह से एक शब्द भी न निकला और वह राजू से लिपट बिलखने लगा सभी छात्र स्तंभित हो यह दृश्य देख रहे थे—किसी की कुछ समझ में नहीं आया। पिण्टू को तो प्रसन्न होना चाहिए वह प्रथम आया है और वह बिलख रहा है।

बड़ी कठिनाई से अपने को सँभाल कर पिण्टू ने कहा—"नहीं राजू ! नहीं ! प्रथम मैं नहीं तुम हो—मैंने तुम्हारे साथ धोखा किया है ! मैंने तुम्हारा मन्दिर तोड़ा था। मुझे माफ कर दो। मुझे माफ कर दो राजू !" और वह फिर राजू से लिपट बिलखने लगा।

राजू की आँखें भी भर आई थी। उसने स्नेह से पिन्टू का सर सहलाते हुए कहा—"तुम्हारी तबीयत ठीक नहीं है, पिण्टू ! इसलिए तुम्हें कुछ भी ठीक से याद नहीं। मुझे याद है। मन्दिर मेरे ही हाथ से गिरकर टूटा था ...."

के प्रतीक है? यदि आप विद्यार्थी हैं तो आप व्यसनी तो नही हैं? विद्यार्थी का अर्थ समझते हुए गुरु के बताये हुए नियमों का क्या आप पालन कर रहे हैं। नियमित रूप से विद्योपार्जन में समय लगाते हैं या नही? यदि आप विद्यार्थी हैं तो "एकलव्य", "बोपदेव" और "अर्जुन की परीक्षा तथा एकाग्रता" नामक उदाहरणों पर कभी मनन किया है? जनता जनार्दन के समक्ष कोई आदर्श रखा है? क्या आपने कभी यह भी सोचा है कि आपके पीछे वाले आप से आगे बढ गये है और आप यहाँ के वहाँ हैं? क्यो? कोई आपका शत्रु तो नही है? है, तो क्यो? क्या आप विनम्र हैं? आपके व्यवहार से सभी प्रसन्न तो हैं? आपने कितने पुरुषो को सुमार्ग बतलाया? क्या आप स्वास्थ्य के नियमो का पूरा-पूरा पालन करते हैं? आपका मन व्यर्थ की चिन्ताओ से दुःखी तो नही रहता? यदि रहता है तो आपने गीता के उपदेशों का स्मरण किया है? आपने अपनी दिनचर्या बना रक्खी है? आप दिन भर कितना समय व्यर्थ की बातों मे खो देते हैं? प्रत्येक वस्तु जिसका आपसे सम्बन्ध है; क्या आप उसका सदुपयोग करते हैं? आप ऋणी तो नही हैं? आप ममत्व के अधिक वशीभूत हो अहं भाव में तो नही फँसे हैं? आपको "मैं" कहने का अधिकार है या नही? क्या यह सब जो आपके समक्ष है, आपका है? क्या आप अपनी त्रुटियो को सर्दव डायरी मे लिखकर पश्चात्ताप करते है? आपको अपने पारलौकिक जीवन की भी कुछ चिन्ता है? मरणोपरान्त पाप-पुण्य का लेखा दे सकेंगे? मृत्यु से आप भय तो नही खाते? अन्तरात्मा के विरुद्ध कोई काम तो नही करते? जो कुछ आप दूसरो को कहते हैं स्वयं भी वही सुनने को तैयार हैं? आप लोक कल्याण की भावना रखते हैं या नही? या केवल स्वार्थी बनकर अमूल्य जीवन को नष्ट कर रहे हैं? आप आशा और विश्वास का पल्लू पकड़कर उक्त प्रश्नों के उत्तर पर जो आपके अन्तरतम से निकले खूब मनन कीजिए। देखिए! आपको मनन मे कितना आत्मिक आनन्द और सुख का अनुभव होता है! आपके सभी दोष धीरे-धीरे दूर हो जावेंगे और आप सुखी बनकर जीवन का कल्याण कर सकेंगे।

गधे ही रह गये

©

सुमन तारे

मैं गधा हूँ, गरीब वेचारा सीधा-सादा गधा। दिन भर धोबी, कुम्हार आदि के लिये हाड़ पेलकर बोझ ढोता हूँ, कभी उन्हें सवारी कराता हूँ और फिर यदि कभी एक क्षण को थकान मिटाने के लिये अपने पैरों को जमीन पर झटकता हूँ तो लोग कह उठते हैं—अरे भई! दूर हटना, कहीं दुलत्तड़ न झाड़ दे। कभी दिन भर के टूटते अंगों को सीधा करने के लिए मिट्टी में लम्बा हो जाता हूँ तो लोग कहते हैं—"ब्राह्मण प्यासा क्यों, गधा उदासा क्यों?"—"लोटा न था।"

और तो और, जब कोई बालक क्रोध में हाथ-पैर पटकने लगता है तो लोग उसे भी गधे की उपाधि दे देते हैं। तरंग में आकर गाने लगता हूँ तो शाबाशी के स्थान पर डंडों से स्वागत होता है मेरा।

क्या करूँ? जब ग्रह उलटे होते हैं तो हर चीज़ उलटी ही जान पड़ती है। होम करते हाथ जलने वाली वात! अभी उसी दिन देखो न, मालकिन बाहर गयी हुई थीं, मैं आँगन में खड़ा था कि अचानक मुन्ना जाग गया और रोने लगा। पहले तो वाहर से ही देखता रहा क्योंकि घर में प्रवेश की मनाही थी, फिर जब वहुत रोने लगा तो अन्दर जाकर प्यार से उसका गाल सहला दिया कि चुप हो जाये। लेकिन आदमी की जात, वह क्या उपकार मानने वाला था, और जोर से रोने लगा। इतने में मालकिन आ गई। मैंने सोचा अव तो वे जरूर ही मुझे पुचकारेंगी, एक वार प्यार से देखेंगी, लेकिन वे तो डंडा ही लेकर आईं और मुझे मारने के साथ ही मालिक को पुकारने लगीं। मेरी जो गत बनी, वस, कुछ न पूछिये। लेकिन बाद में जो मुन्ने को देखा तो मुझे अपनी गलती मालूम पड़ी। स्पष्ट देखा कि मेरे लोहे के पंजे का उसके गाल पर अमिट निशान बन गया था। सच, मैं गधा ही हूँ, मैं इतना भी नहीं समझता? कहाँ वेचारा फूल-सा मुन्ना और कहाँ मेरा वज्र-सा पंजा! लोग ठीक ही कहते हैं— मैं गधा हूँ।

। सन्निवेश

पर, मैं हमेशा ही तो बुरे काम नहीं करता। कुछ सीखने का, देखकर अनुकरण करने का प्रयास करता हूँ, लेकिन राम का नाम लो जो मालिक जरा भी लाड़ करते हों। एक दिन का किस्सा सुनाऊँ! रोज देखता था कि मालिक के आते ही कुत्ता मोती दुम हिलाता और पंजों के बल पर चढ़ने की कोशिश करता। मालिक भी धुन में आकर धीरे-धीरे सीटी बजाने लगते। मैं समझ गया कि मालिक मोती के इसी व्यवहार पर जान देते हैं। सीखने में देर क्या सबेर क्या? मैंने उसी क्षण उसे अपना गुरु बना लिया! दूसरे दिन मालिक को देखते ही मैं अपने मीठे स्वाविष्कृत गर्दभ राग में धीरे-धीरे गाने लगा और साथ ही मेरे पैर ताल में थिरकने लगे। जैसे ही मालिक पास आये, मुझे और रंग चढ़ा। विश्वास था कि आज कुछ भूसा ज्यादा ही मिलेगा, शायद वे प्यार से पीठ पर हाथ भी फेरें। लेकिन यह क्या? अभी खुशी से गुनगुनाने वाले मालिक अचानक डंडा लेकर बरस पड़े—कहने लगे 'आते ही भडुँआ रोने लगा। कदम रखते ही असगुन। अब ले.......'

अब आप ही बताइये, मैं आखिर करूँ क्या? न मालूम किस घड़ी में जन्म लिया, कि चाहे कैसा ही कार्य करो अपनी उपाधि में तरक्की होती ही नहीं। कोई चपरासी से क्लर्क और क्लर्क से अफसर भी बन गये लेकिन हम तो गधे ही रह गये।

●

विचार प्रवाह

O

बी० एल० जोशी

क्यों ?

आज युग मौन है, साहित्य मौन है, साहित्यकार मौन है, इतिहास मौन है, इतिहासकार मौन है। महावर लगे पांवों की थिरकन थकी-थकी, नृत्य नैराश्यमय, कवि का गान गम भरा, संगीत की तान टूटी-टूटी-सी है।

क्यों ?

हास्य में रुदन, संगीत में गमभरी सिसकियाँ, जोश. में जलन, उत्साह में आत्म-हीनता है। रोटी मुक्त नहीं, रोजी गुलाम है, श्रम का शोषण होता है, पसीना पानी के मोल, खून दूध के तोल पर बिकता है।

किसने कैद कर रक्खा है ?

ज्ञान और ज्ञानी को, ध्यान और ध्यानी को, विज्ञान और वैज्ञानिक को, राज्य और राजनैतिक को, धर्म और धार्मिकता को, मानव और मानवता को, प्रकृति और प्राकृतिक को, ब्रह्म और ब्रह्मत्व को, गति और प्रगति को सैन्य और सेनापति को प्रशासन और प्रशासनिक को, चर और अचर को, समस्त समाज और सामाजिक को, समस्त क्रियाकलापों को, हलचल को।

कौन है वह जो ? —

क्षति, जल, पावक, गगन, समीरण पर अपना निरंकुश शासन स्थापित किये हैं, जो सर्व प्रभुत्व सम्पन्नता के शीर्ष पर बैठा प्रत्येक एकतंत्र तानाशाही, सैन्य तन्त्र, कुलीन तन्त्र, लोकतन्त्र व जनतन्त्र को संचालित करता है जो बाघ की तरह हर क्षण, हरपल, हर समय अपने शिकार की ताक में दम साधे ...ता है, शिकार को देखते ही शेर-सा दहाड़ कर निसंकोच दबोच ...डर होकर निर्भीकता से अजगर की तरह घनीछांव में मधुर समीरण ..., निर्मल स्वच्छ सलिल के तट पर बैठा-बैठा निगल जाता है अपने ...ा को—मानव को।

जिसकी महानता महान् से, श्रेष्ठता श्रेष्ठ से, विशालता विशाल से, उच्चता उच्च से, धार्मिकता धर्म से, कुलीनता कुल से भी ऊपर है जिनका झूठ सत्य से, पाप पुण्य से दुष्कर्म सतकर्म से, दुर्वचन हजार सत वचनों से ऊपर है।

यह कोई एक व्यक्ति, एक दल, एक धर्म, समूह या समाज नहीं है, अपितु एक पथ है, प्रणाली है, विधि और पद्धति है, प्रवाह है, सतत श्रृंखला है, उर्ध्व अधोगति की ओर तीव्र वेग से बहता जल है, मरुभूमि में बेरोकटोक धूल उड़ाता प्रचण्ड समीर है। जिसमें सभी स्वतः प्रवाह व समाहित होते हैं, बली-निर्बल, अस्थिर-स्थिर, चल-अचल, जर-अजर, मर-अमर सभी।

यह एक सतत प्रवाह है, एक गूँथी हुई श्रृंखला है, एक स्वतः आयोजित आयोजन है। किसका ? अर्थ वितरण का, श्रम व श्रमनियोजन का शोषण और अत्याचार का, पाप और पापाचार का, जो सदियोंसदियों से अनवरत क्रियाशील है।

इस प्रवाह में प्रवाहित कर हर बूँद, इस श्रृंखला से सन्निद्ध हर कड़ी, इससे प्रभावित हर प्राण, चल-अचल, जीव-अजीव, स्थिर-अस्थिर, जर-अजर स्वतः इस प्रवाह में प्रवाहित हैं। हर कार्य, हर व्यवहार, हर विचार, तदनुसार अनुसरण करने को विवश है। जिस प्रकार मानव मृत्यु से सर्वदा पराजित है उसी प्रकार यह विवशता भी अनिवार्य है, अपरिहार्य है।

इसी विवशता के विरोध में नित नूतन विचार-श्रृंखलाओं का निर्माण समय-समय पर समाज सुधारकों ने किया है, सुधारवाद, जनकल्याणवाद, समाजवाद, साम्यवाद, गांधीवाद आदि भिन्न-भिन्न वादों का जन्म हुआ है। ये शोषण के विरोध में प्रवाहित नूतन श्रोत हैं, सिसकते शोषण का शोक, रोते-कलपतों का दुख, विवशता की बेड़ियों का बंधन, मजबूरियों की मौत, मरते हुओं का खून, जिन श्रोतों से अविरल बहा है। यह मृत्यु को नवजीवन का सन्देश है, यह मृत्योर्मा-अमृतम् गमयः का मार्ग है।

यह उस सर्वशक्तिमान् की अपरिमित शक्तियों से सतत संग्राम का उज्ज्वल इतिहास है, बलवान् से निर्बलों के अनवरत विरोध का अतीत है, जिसकी प्रगति के लिए, जिसकी विजय के लिये, संसार का हर मानव मस्तिष्क कटिबद्ध, है, मोर्चे पर डटा हुआ है, ये ही आज के मानव मस्तिष्क के सुलभ ग्राह्य विचार हैं, यही मुक्ति का चरम लक्ष्य है।

किन्तु सतत वृति से प्रेरित तन, अनवरत अनुसरण की आदतें, यन्त्रवत् अतीत जीवन के प्रवाह से स्वतः वही करती चली आरही हैं, जो अब तक करने की आदत मे यन्त्रवत् ढल गया है, यान्त्रिक प्रतिक्रियाओं से विवश

मानव-मन आत्मा के इस परावलम्बन, परवशता को स्वीकार करने के उपरान्त भी वही करता चला जारहा है, जो उसका यान्त्रिक मस्तिष्क उसे करने को विवश करता है।

इसके विरोध में उभरे सभी वाद इस नासूर पर ऊपरी मरहम मात्र हैं जिसके भीतर ही भीतर यह मवाद रिस-रिस कर कैंसर बन गया है, जो असाध्य है, दुर्निवार है किन्तु जिसका निवारण अनिवार्य है, आवश्यक है।

बड़ी दीदी

●

सुरेश भटनागर

(स्कूल की घंटी बजती है। बच्चे शोर करते हैं)

कमल : मोहन तूने मेरी किताब क्यों चुराई ?

मोहन . मैंने नहीं चुराई है कमल भैया।

कमल : झूठ बोलता है। मारूँगा। बता तूने मेरी किताब क्यो चुराई ?

मोहन : (रोने की-सी आवाज) मैं झूठ नही बोलता। मैंने नहीं चुराई।

कमल : तेरे बस्ते से कैसे निकली ?

मोहन : मैं नहीं जानता। किसी ने रखदी होगी !

कमल : बताता है कि नहीं। नही अभी ......

(दीदी आती हैं)

सभी बच्चे : नमस्ते बड़ीदीदी।

दीदी : नमस्ते ! बच्चो, आज हम तुम्हें एक कहानी सुनायेंगे। वह कहानी ऐसे बालक की कहानी है जो देश का बड़ा आदमी था। वह बालक इतना गरीब था कि किताबें नहीं खरीद सकता था।

सभी बच्चे : *फिर क्या हुआ ?*

दीदी : पढने के लिए अपने गाँव के पास की एक नदी को पार करके जाना पडता था। एक दिन उसके पास पैसे न थे। नाव वाले ने उसे मुफ्त नाव मे नहीं बैठाया। तो मालूम है, उसने क्या किया ?

सभी बच्चे : वह अपने घर लौट गया होगा।

दीदी : नही। उसने नदी को तैर कर पार किया और तब वह स्कूल पहुँचा। और वह हमारे देश का प्रधानमंत्री रह चुका है।

(क्रास फेड)

कमल : किताब क्यों नही देता है ? दे नही तो दीदी से कह दूँगा।

मोहन : मेरे पास नहीं है किताब।

कमल : तो मैं कहता हूँ। दीदी ......

मानव-मन आत्मा के इस परावलम्बन, परवशता को स्वीकार करने के उपरान्त भी वही करता चला जारहा है, जो उसका यान्त्रिक मस्तिष्क उसे करने को विवश करता है।

इसके विरोध में उभरे सभी वाद इस नासूर पर ऊपरी मरहम मात्र हैं जिसके भीतर ही भीतर यह मवाद रिस-रिस कर कैंसर बन गया है, जो असाध्य है, दुर्निवार है किन्तु जिसका निवारण अनिवार्य है, आवश्यक है।

●

बड़ी दीदी

सुरेश भटनागर

(स्कूल की घंटी बजती है। बच्चे शोर करते हैं)

कमल : मोहन तूने मेरी किताब क्यों चुराई ?

मोहन : मैंने नहीं चुराई है कमल भैया।

कमल : झूठ बोलता है। मारूँगा। बता तूने मेरी किताब क्यों चुराई ?

मोहन : (रोने की-सी आवाज) मैं झूठ नहीं बोलता। मैंने नहीं चुराई।

कमल : तेरे बस्ते से कैसे निकली ?

मोहन : मैं नहीं जानता। किसी ने रखदी होगी !

कमल : बताता है कि नहीं। नहीं अभी ''''''

(दीदी आती हैं)

सभी बच्चे : नमस्ते बड़ीदीदी।

दीदी : नमस्ते ! बच्चो, आज हम तुम्हें एक कहानी सुनायेंगे। वह कहानी ऐसे बालक की कहानी है जो देश का बड़ा आदमी था। वह बालक इतना गरीब था कि किताबें नहीं खरीद सकता था।

सभी बच्चे : फिर क्या हुआ ?

दीदी : पढ़ने के लिए अपने गाँव के पास की एक नदी को पार करके जाना पड़ता था। एक दिन उसके पास पैसे न थे। नाव वाले ने उसे मुफ्त नाव में नहीं बैठाया। तो मालूम है, उसने क्या किया ?

सभी बच्चे : वह अपने घर लौट गया होगा।

दीदी : नहीं। उसने नदी को तैर कर पार किया और तब वह स्कूल पहुँचा। और वह हमारे देश का प्रधानमंत्री रह चुका है।

(क्रास फेड)

कमल : किताब क्यों नहीं देता है ? दे नहीं तो दीदी से कह दूँगा।

मोहन : मेरे पास नहीं है किताब।

कमल : तो मैं कहता हूँ। दीदी '''''''

दीदी : क्या बात है कमल ?

कमल : मोहन ने मेरी किताब चुराली है दीदी। देता नहीं है।

दीदी : क्यों रे मोहन, तूने किताब चुराई ?

मोहन : नहीं दीदी। मैंने नहीं चुराई।

दीदी : कमल, किताब कहाँ है ?

कमल : मोहन के बस्ते में।

दीदी : बस्ता दिखाओ मोहन।

कमल : अब दिखा न बस्ता। देखो दीदी, यह रही किताब।

दीदी : अच्छा मोहन, तुम इस घंटे के बाद दफ्तर में आना।

मोहन : अच्छा दीदी। (मरी-सी आवाज)

दीदी : कमल ! तुम भी वहाँ आना।

(अन्तराल)

दीदी : तो तुम दोनों आगए।

दोनों : जी !

दीदी : हूँ ऽ ऽ। मोहन तुमने कमल की किताब क्यों चुराई ?

मोहन : मेरी किताब खोगई है दीदी। मेरी माँ मुझे मारती है।

दीदी : तुम कमल की किताब वापिस कर दो।

मोहन : यह लो दीदी।

दीदी : कमल. यह लो किताब ! तुम जाओ।

कमल : अच्छा दीदी।

(जाने की चाप)

दीदी : मोहन, तुम्हारी किताब क्यों खो गई ?

मोहन : मुझे नहीं मालूम है दीदी।

दीदी : (जोर से) तुम्हें क्यों नहीं मालूम ? तुम इतने लापरवाह क्यों हो ? तुमने क्यों चुराई उसकी किताब ? बताओ।

मोहन : दीदी, मेरी माँ मुझे पीटती इसलिए मैंने उसकी किताब ले ली थी।

दीदी : तुम्हारी माँ तुम्हें क्यों पीटती है ?

मोहन : वह कहती है मैं उसका लड़का नहीं हूँ। उनका लड़का राजेश है।

दीदी : वह तुम्हें अपना लड़का नहीं मानती ?

मोहन : हाँ, और एक दिन तो दी दी····

(फ्लैश-बैक: लड़के को पीटने की आवाज : लड़के का रोना चीखना)

मां : बता ! क्यों फाड़ी तूने राजेश की किताब ?
(पीटना)
बता ! तूने ही पैर बढ़ा रक्खे हैं !
(पीटना)
तुझे ही बहुत ज्यादा आफत सूझती है ।
(पीटना)
बतादे । मरता भी तो नही है । मालूम नही कब तक सताता रहेगा ।
(पीटना : लड़का चिल्लाता है—मुझे मत मारो । मुझे मत मारो । मैंने किताब नही फाड़ी की चीख, रोना, सिसकना)

बाप : अरे रे ! क्यों लड़के का कचूमर निकाल रही हो, मार डालोगी क्या ?

मोहन : पिताजी, मुझे बचाओ । मां मुझे पीट रही है । मुझे बचाओ । मुझे बचाओ पिताजी ।

मां : इधर आ । क्या बाप की गोद मे घुसा जा रहा है । एक तो नुकसान और ऊपर से शिकायत ? देख लूंगी तेरे हिमायती को भी ।

बाप : आखिर क्या नुकसान कर दिया है इसने ।

मां : तुमने ही सिर पर चढ़ा रक्खा है इसे । देखते नहीं, राजेश की किताब का क्या हाल कर दिया है इसने ।

बाप : क्यो बे ! किसने कहा था तुझे किताब फाड़ने को ?

मोहन : मैंने नहीं, राजेश ने किताब फाडी है । मेरा नाम झूठ-मूठ लगाता है ।

मां : देखो ! तुम्ही देख लो । एक तो नुकसान और ऊपर से तोहमत । अजी क्या समझते हो, इस लड़के के पेट में दाढ़ी है, दाढ़ी । अभी से यह हाल है । आगे तो यह निहाल कर देगा ।

बाप : (थप्पड़ की आवाज) क्यो बे ? यह बदमाशी ! बता, तूने फाड़ी है किताब ?

मोहन : हां मैंने फाड़ी है । मुझे माफ करदो । मुझे माफ करदो पिताजी । आपके पैर पड़ता हूं ।

बाप : पैर मेरे नही, अपनी नयी मां के पकड़ । वही तुझे माफ करेगी ।

मोहन : मुझे माफ करदो मां ।

माँ : चल हट । अब कभी ऐसा मत करना ले राजेश, इसकी किताब तू ले ले । इसकी यही सजा है ।

(फ्लैश-बैक)

दीदी : फिर तुम्हारी माँ ने तुम्हारी वह किताब तुम्हें नहीं दी ।

मोहन : नहीं दीदी । उस दिन से वह किताब मुझे नहीं मिली ।

दीदी : फिर तुम यहाँ पढ़ते कैसे हो ?

मोहन : मैं पीछे बैठता हूँ । वहाँ से सुधा दीदी को कुछ भी दिखाई नहीं देता ।

दीदी : घर का काम कैसे पूरा करते हो ?

मोहन : रोज कोई न कोई बहाना बना देता हूँ ।

दीदी : तब तुमने कमल की किताब क्यों चुराई ?

मोहन : दूसरी दीदी ने मुझे कक्षा से बाहर निकाल दिया था । सब लोगों के सामने मेरा अपमान किया था ।

दीदी : इसलिए तुमने कमल की किताब चुराई थी ?

मोहन : हाँ दीदी ।

दीदी : मोहन, तुम्हें इसकी सजा जरूर मिलेगी । तुमने बहुत गन्दा काम किया है । जाओ, कल तुम्हें इसकी सजा मिलेगी । देखो, अपनी सुधा दीदी को भेज दो ।

मोहन : अच्छा दीदी ।

(जाने तथा आने की पदचाप)

सुधा : आपने मुझे बुलाया दीदी ।

दीदी : हाँ, बैठिए । आपसे मुझे बहुत जरूरी बातें करनी हैं सुधाजी ।

सुधा : कहिए ।

दीदी : मोहन आपकी कक्षा पढ़ता है ?

सुधा : हाँ ।

दीदी : आपने उसे कभी पीटा ?

सुधा : हाँ ।

दीदी : क्यों ?

सुधा : दीदी, वह अपना काम पूरा नहीं करता है । पीछे बैठता है । शरारतें करता है और.......

दीदी : किताबें नहीं लाता । क्यों ?

सुधा : हाँ दीदी ।

दीदी : अगर कोई बालक किताबें न लाये तो उसे कक्षा से निकाला जाता है ?

सुधा : नहीं दीदी।

दीदी : तो फिर आपने उसे क्यों निकाला ?

सुधा : वह कई दिनों से परेशान कर रहा था दीदी।

दीदी : आपको क्या अधिकार है किसी बालक को कक्षा से निकालने का ? आपको मालूम है, वह किन परिस्थितियों से गुजर रहा है ?

सुधा : नहीं दीदी।

दीदी : आपको शायद यह भी नहीं मालूम कि आपके द्वारा कक्षा से बाहर निकाल दिए जाने पर उसने चोरी की।

सुधा : किसकी ?

दीदी : उसने कमल की किताब चुराई। एक मातृहीन बालक, जिसे उसकी सौतेली माँ कभी प्यार नहीं करती। प्यार करती है तो उसका प्रदर्शन मारपीट के द्वारा होता है। उसके बाप का इतना साहस नहीं होता कि वह अपनी स्वर्गीया पत्नी की एक मात्र निशानी को अन्याय और अत्याचार से बचा सके। आपका प्यार चाहिए था। आपने उसे कक्षा से बाहर निकाला। उसे उसने अपने को अपमानित समझा। आपके क्रोध से बचने के लिए किताब चुराई और आपको पता तक न लगा कि आपका विद्यार्थी किस राह पर चल पड़ा है !

सुधा : दीदी, मुझे अफसोस है कि…

दीदी : अब अफसोस करने से क्या होता है मिस सुधा। विद्यार्थियों को उनके अपराध करने पर दंड मिलना चाहिए, पर ऐसा नहीं कि उससे दंड का प्रयोजन निष्फल हो जाय।

सुधा : भविष्य में इसका ध्यान रखूँगी।

दीदी : आपको शायद मालूम नहीं, विशृंखलित परिवारों ने बच्चों के जीवन के साथ खेल किया है। उनके कोमल मन जिस परीदेश की कल्पनायें करते हैं वहाँ परियों के साथ वे खेल नहीं पाते और राक्षस उन्हें उठाकर ले जाते हैं।

सुधा : दीदी, आप बहुत भावुक हो उठी हैं।

दीदी : हाँ, दीदी बहुत भावुक हो उठी हैं। यह वह दीदी है जिसने अपनी सौतेली माँ की बहुत कृपा प्राप्त की है। मेरी सौतेली बहनों तथा भाइयों का जीवन इतना सुखद है कि ईर्ष्या

है। उनकी शादियां अच्छे घरों में हुई हैं। उनके पास कोठी हैं, कार हैं। जीवन का समस्त ऐश्वर्य उन्हें मिला है। पर मेरे सपनों का राजकुमार अभी भी कहीं भटक रहा है। मेरे भाई के सपनों की राजकुमारी अभी तक उसके पास नहीं आ सकी।

सुधा : आप तो बहुत अच्छी हैं, दीदी। आपके जीवन में इतनी व्यथा! इसका तो किसी को आभास तक नहीं होता। आपके चेहरे पर तो सदा मुस्कान खेलती है, दीदी।

दीदी : हां! उस मुस्कान का यह रहस्य हमारे विद्यालय के बच्चे हैं। हमें उनके लिए हंसना है। उनके लिए जीना है और उनके लिए मरना है।

सुधा : यह तो ठीक है दीदी। मगर····

दीदी : मगर क्या? हमारे नन्हे-मुन्ने, जो आज हमारे विद्यालय की बेंच पर बैठे हैं, वे समस्त विश्व पर साम्राज्य करते हैं। हमें उनके लिए सोचना है।

सुधा : मगर क्या, दीदी?

दीदी : उनके मन में किसी भी प्रकार की ग्रन्थियां न बनें, नहीं तो उनका जीवन कुंठित हो जायेगा। उनका विकास रुक जायेगा, जिस तरह मेरा रुक गया था।

सुधा : आपका क्यों?

दीदी : इस मोहन की तरह एक दिन हमारे यहां भी मेरी अपनी मां के गुजरने के बाद नयी-मां आयी। उनके आते ही मैंने मां कहकर उनकी गोद में बैठना चाहा था पर उसी दिन उन्होंने मुझे सभी औरतों के सामने झिड़क दिया था और मेरा भाई विनय रोने लगा था। उस समय से रोज इस तरह की घटनायें घटनें लगीं।

(फ्लैश बैक)

नयी मां : अरी ओ कलमुंही! क्या कर रही है वहां बैठी!

विजया : पढ़ रही हूं मां। कल इम्तिहान है।

नयी मां : पढ़ रही है। यहां खाना क्या कोई और बनाकर रख जायेगा? इम्तहान बाद में होता रहेगा। पहले खाना बना उठ।

विजया : मेरा इम्तहान है, मैं फेल हो जाऊंगी।

नयी मां : उठती है कि नहीं? नहीं तो अभी बरसाती हूं डण्डा। बड़ी पढ़ लिखकर नौकरी करेगी।

विजया : मैं नहीं उठती।

नयी माँ : नहीं उठती ?

विजया : नहीं, नहीं, नहीं। जो जी में आए करलो।

नयी माँ : अच्छा, तेरी यह मजाल ? यह हिम्मत ? कलमुहीं, जबान लड़ाती है।

(डण्डे की आवाज : विजया की चीख)

विजया : हाय मर गई।

नयी माँ : अभी कहाँ मरी है। मरेगी तो अब।

(डण्डों की आवाजें, विजया का चीखना : विनय के आने की चाप : क्रासफेड · विजया का सिसकना)

विनय : मेरी बहन को क्यों पीटती हो माँ ?

नयी माँ . चल हट। बड़ा आया है बहन की हिमायत करने वाला।

विनय · मैं नहीं हटता !

नयी माँ : नहीं हटता ? तो ले तू भी ले।

(डण्डे की आवाज)

विनय . आह, मरा ···

नयी माँ : अरे, यह तो वेहोश हो गया। हाय, अब क्या करूँ।

विजया : अब अपनी छाती ठंडी करो माँ। हमारी माँ स्वर्ग से तुम्हें आशीर्वाद देंगी।

(फ्लेश बैक : सिसकने की आवाज)

सुधा : रो रही हो दीदी।

दीदी : नहीं रो रही हूँ। कुछ ख्याल-सा आगया। इसके बाद हमारे मामा को खबर दी गयी और वे हम दोनों को एक होस्टल में भर्ती करा गए। वहीं से हमारा विकास हुआ। आज हमारे मामा हमारे बीच नहीं हैं, पर मैं आज जो हूँ, उन्हीं की कृपा से हूँ।

सुधा : दीदी, आज मैंने आपसे बहुत कुछ सीखा है। मैं कभी भी अपने छात्रों के साथ बुरी तरह पेश नहीं आऊँगी।

दीदी उन्हें अपना भाई समझो। सोचो, अगर तुम्हारा अपना भाई इस परिस्थिति मे होता तो क्या होता ?

सुधा : ठीक है दीदी।

दीदी : अच्छा, अब आप जाएँ। मुझे कल मोहन को सजा देनी है।

सुधा : क्या सजा दोगी उसे ?

दीदी : यह मैंने अभी निश्चित नहीं किया है।

सुधा : कुछ तो।

दीदी : अब जाओ। मुझे अकेला छोड़ दो।

(अन्तराल : लड़कों का शोर : स्कूल की घंटी का बजना)

कमल : आज तो मोहन पर मार पड़ेगी। दीदी ने नया बेंत मँगवाया है। आज मजा आयेगा उसे चोरी करने का। समझे राजेश !

राजेश : हाँ दीदी आज उसे खूब पीटेंगी। लो, दीदी भी आगई। खड़े हो जाओ।

दीदी : बच्चो बैठो। मोहन कहाँ है ?

कमल : वह पीछे बैठा है।

दीदी : मोहन इधर आओ।

मोहन : आ-या-दी-दी······ ।

(घबराई आवाज)

दीदी : मोहन, तुम्हारे पास किताबें नहीं थीं ?

मोहन : नहीं।

दीदी : लो ये तुम्हारी किताबें हैं। अब तुम चोरी नहीं करना। यह बुरी बात होती है। तुम एक अच्छे लड़के हो। अच्छे लड़के गन्दी बातें नहीं करते। जाओ, अपनी जगह पर बैठो।

मोहन : अच्छा दीदी।

दीदी : और हाँ, आज से तुम घर नहीं जाओगे। यहीं पर होस्टल में रहोगे। समझे ?

मोहन : आपके पास दीदी।

दीदी : हाँ, मेरे पास।

(अन्तराल)

दीदी : सुधाजी, मेरे सैल रखे थे यहाँ। कल मैंने क्लास में बैटरी का प्रदर्शन किया था। लाकर रख दिये थे यहाँ। कहाँ गए ?

सुधा : मालूम नहीं दीदी। आप अपनी मेज की दराज में तो देखिए।

दीदी : वहाँ भी नहीं हैं।

सुधा : अरे हाँ, दीदी। वह मोहन उनसे कुछ कर रहा है।

दीदी : अच्छा कोई बात नहीं। नये सैल मँगा लो।

(अन्तराल)

दीदी : आज फिर सैल नहीं मिल रहे, हैं सुधाजी।

सुधा : दीदी, आज फिर उसी के पास सैल हैं।

दीदी : तो फिर नये मँगालो।

सुधा : ऐसा कब तक करती रहोगी ?

दीदी : जब तक सैल चोरी जाते रहेंगे।

सुधा : आखिर क्यों ?

दीदी : यह मैं भी नही जानती ।

(अन्तराल)

दीदी . आज फिर सैल गायब हैं सुधाजी ।

सुधा : आइए, एक दफा देख तो लीजिए । वह क्या कर रहा है सैल्स का ?

दीदी : चलो ।

(चलने की चाप)

सुधा : (दबी आवाज मे) वह देखो ! मोहन सैल जोड़ कर घंटी बजाने का प्रयास कर रहा है।

(बिजली की घंटी बजती है)

देखो, दीदी उसकी बदमाशी ?

दीदी : तुम इसे बदमाशी कहती हो ? उसके अन्दर का कलाकार जाग रहा है। खिड़की से हट जाओ। उसने हमे देख लिया है। चलो, अब यहाँ खड़ा रहना ठीक नही है।

(जाने की चाप अन्तराल)

मोहन : दीदी, मैं अन्दर आ सकता हूँ ?

दीदी : कौन ? मोहन ? आओ, आओ। तुम्हें किसी ने रोका है ?

मोहन : नहीं दीदी ।

दीदी : बोलो ! क्या काम है ?

मोहन : दीदी ।

दीदी : कुछ कहोगे भी या नही ।

मोहन : दीदी । मैंने आपके सैल चुराये थे ।

दीदी : मेरे सैल । कैसे सैल ?

मोहन : हाँ दीदी । आपके सैल, जिनसे आपने क्लास मे पढ़ाया था ।

दीदी : वे मेरे तो नही थे ।

मोहन : किसके थे दीदी ?

दीदी : वे तुम्हारे थे ।

मोहन : मेरे थे वे ।

दीदी : हाँ, वे तुम्हारे लिए ही लाई थी मैं । तुमने अपनी चीज ले ली, तो चोरी कैसे ?

मोहन : सच दीदी । मैं चोर नही हूँ ?

दीदी : नही भैया । तुम चोर नही हो । यहाँ की हर चीज तुम्हारी है । अपनी चीज की चोरी नहीं होती ।

मोहन : मैंने आपसे पूछा भी तो नहीं था दीदी।

दीदी : अरे, इसमें पूछने की कौन-सी बात है ?

मोहन : नहीं दीदी, मुझे पूछना चाहिए था। मैंने बुरा काम किया। मुझे सजा दो दीदी,मुझे सजा दो।

दीदी : तुमने कोई बुरा काम नहीं किया है मोहन, जो तुम्हें सजा दी जाय।

मोहन : अच्छा दीदी। अभी जाता हूँ, पर मुझे एक बात बताओ।

दीदी : बोलो।

मोहन : मैं अच्छा लड़का हो जाऊँगा न ? फिर तो मेरी माँ मुझे नहीं मारेगी ?

दीदी : नहीं बेटे। तुम एक अच्छे लड़के हो गए हो। बड़े होकर तुम बहुत बड़े आदमी बनोगे। तुम बड़े बड़े काम करोगे।

मोहन : सच दीदी।

दीदी : हाँ !

मोहन : तब ठीक है दीदी। मैं और मेहनत करूँगा। बड़ा आदमी बनूँगा। मैं बड़ा आदमी बनूँगा, पर आपके पास रहूँगा। आप मुझे अपने पास से अलग न करना।

दीदी : अच्छा, अच्छा। मैं तुम्हें अपने पास रखूँगी। तुम्हें खूब मन लगा कर पढ़ना होगा। समझे !

मोहन : हाँ, दीदी।

दीदी : अच्छा तुम जाओ।

(जाने की चाप)

आज मुझे लगता है मैं अपने उद्देश्य में सफल हो गयी हूँ। मोहन अब अच्छा बालक बनता जारहा है। उसकी कुंठित शक्तियों का विकास हो रहा है, ठीक ऐसे ही जैसे मेरे भाई का हुआ था। मैं अब अपने को अकेली महसूस नहीं करती। मेरे इस विद्यालय में मेरे कितने भाई-बहन हैं। मुझे इन का भविष्य बनाना है।

(दरवाजे पर दस्तक)

कौन ? सुधाजी, अन्दर आइए न। बाहर क्यों खड़ी हैं ?

सुधा : दीदी, आपने मोहन पर क्या जादू कर दिया। आजकल तो वह पढ़ने के अलावा कुछ और करता ही नहीं है। बड़ी मुश्किल से उसे आज मैच खेलने भेजा है। क्लास में तो बहुत अच्छा चल रहा है।

दीदी : हाँ, मैं उसे अच्छी तरह जानती थी। वह एक होशियार बालक है ? उसे आवश्यकता थी प्यार की, मार की नहीं। घर मे उसे प्यार नहीं मिला। माँ ने दुत्कारा, बाप ने फटकारा। बाहर वालों ने पास नहीं लगाया। और वह पलायनवादी हो गया। जबसे उसके पिताजी को समझाकर उसे यहाँ ले आई हूँ। वह कितना अच्छा हो गया है।

सुधा : यही तो आश्चर्य है दीदी। वह तो प्रयोगशाला मे नित नये प्रयोग करके सभी को आश्चर्य मे डाल रहा है।

दीदी : अभी क्या ? उस लड़के मे प्रगति के काफ़ी लक्षण हैं। आवश्यकता है, सिर्फ उसे ठीक तरह से निभाने की।

(मोहन का दौड़ते हुए, घबराते हुए आना)

क्या बात है मोहन ?

मोहन : दीदी। दीदी। कमल की मैच खेलते-खेलते हड्डी टूट गयी।

दीदी : अरे। कहाँ है वह ?

मोहन : उसे अस्पताल ले गये हैं। जल्दी चलिए आप।

दीदी : सुधाजी, जरा मेरा पर्स उठाना।

सुधा : लीजिए।

दीदी : चलो, सुधाजी, आप भी चलिए।

(अन्तराल)

मोहन : डाक्टर साहब, मेरा दोस्त कमल कहाँ है ?

डॉक्टर : तुम्हारा नाम क्या है बेटे ?

मोहन : मोहन ! और ये मेरी बड़ी दीदी हैं, ये सुधा दीदी हैं, आप जरा जल्दी बताइए न, कहाँ है वह ?

डॉक्टर : उसका ऑपरेशन हो रहा है।

दीदी : डाक्टर साहब।

(घबराई आवाज)

डॉक्टर : आप फिक्र न करें। वह खतरे के बाहर है।

आप बैठिए। ऑपरेशन के बाद मिल लीजिएगा।

दी० मो० : अच्छा, डाक्टर साहब।

(चलने का स्वर)

मोहन : देखो दीदी, कमल चुप पड़ा है यह बोलता नहीं है मुझसे।

दीदी : अभी बोलेगा यह। आराम करने दो। अभी।

सन्निवेश।

मोहन : दीदी, शायद यह अभी नाराज है मुझसे। वह देखो, उसने आंख खोली हैं।

दीदी : कमल, कैसे हो बेटा ?

कमल : ठीक हूँ दीदी। (मरी-सी आवाज) दर्द है।

दीदी : मोहन तुमसे कुछ कह रहा है। पूछ रहा है, तुम उससे क्या अभी तक नाराज हो ?

कमल : नहीं दीदी।

(मरी-सी आवाज)

दीदी : कमल ! मोहन से बोलो।

कमल : मोहन।

मोहन : कमल।

(कमल अचानक दर्द से चीखता है)

मोहन : क्या हुआ दीदी कमल को। सुधा दीदी। डाक्टर को जल्दी लाओ। लो, डाक्टर भी आगए।

(दौड़कर आने की चाप)

डॉक्टर : क्या हुआ ?

मोहन : अभी-अभी चीखकर बेहोश हो गया है।

डॉक्टर : अरे यह खून कैसे बह रहा है। शायद प्लास्टर ठीक नहीं लगा। अभी इसे ऑपरेशन थियेटर में ले जाना है। आप लोग बाहर ही रहें।

दी० मो० : अच्छा

(डॉक्टर के साथ-साथ स्ट्रेचर गाड़ी के चलने का स्वर)

सुधा : दीदी, मुझे कुछ खतरा लग रहा है।

दीदी : खतरा काहे का ! ईश्वर सब ठीक करेगा।

मोहन : कमल ठीक हो जाएगा न दीदी

दीदी : हाँ, वह ठीक हो जायेगा। हमें ईश्वर पर भरोसा रखना है।

मोहन : वह देखो। डॉक्टर साहब आ रहे हैं।

डॉक्टर : हमें कमल के खून चढ़ाना होगा। आप अपना खून दे सकेंगी ?

दीदी : क्यों नहीं।

डॉक्टर : लाइये बाँह। पहले आपका खून टेस्ट कर लिया जाय।

दीदी : लीजिए।

मोहन : दीदी, मेरे खून से काम नहीं चलेगा क्या ? जो आप अपना खून दे रही हैं ?

दीदी : डॉक्टर साहब को पहले अपना काम करने दो मोहन ।

डॉक्टर : आपका खून काम नहीं दे सकेगा ।

मोहन : मेरा खून तो देखो डॉक्टर साहब । मैं कहता हूँ, मेरा खून ही काम देगा ।

दीदी : पहले सुधा दीदी के खून की जाँच होने दो ।

मोहन : हाँ, डॉक्टर साहब बताइए न !

डाक्टर : सौरी आपका खून भी उसके खून से नहीं मिलता । मोहन अपना हाथ तो लाओ ।

मोहन : लीजिए ।

डॉक्टर : घबराना नहीं । मामूली सा-दर्द होगा । समझे ?

मोहन : मैं एक बहादुर लड़का हूँ । घबराता नहीं । आप खून लीजिए ।

डॉक्टर : शाबाश । लेटो इस मेज पर । हिलना नहीं । समझे । ओ-ह, बस काम हो गया । हूँ–हूँ–उठो मत । अभी लेटे रहो । जब मैं कहूँगा, तभी उठना । हाँ, तुम्हारा खून ठीक है ।

मोहन : सच ?

डॉक्टर : हाँ । अब तुम्हारा खून कमल को देंगे । यह आपका विद्यार्थी है न ।

दीदी : हाँ, यह मेरा विद्यार्थी है । मुझे इस पर नाज है ।

(अन्तराल)

मोहन : कमल ठीक होगया दीदी ।

दीदी : हाँ वह ठीक होगया । आज वह अस्पताल से घर आ जायेगा ।

मोहन : सच ! आज मैं उससे मिलने जाऊँगा ।

दीदी : तुमने उसकी जान बचाई है बेटे । तुम एक महान लड़के हो ।

मोहन : दीदी ।

दीदी : अच्छा । अब तुम जाओ । सुधा दीदी को भेज देना ।

(जाने की ध्वनि . आने की ध्वनि)

आइए सुधाजी । देखो आपने प्यार का जादू ?

सुधा : हाँ—दीदी ।

दीदी : सुधा, आज मैं बहुत खुश हूँ । इतनी खुश कि कह नहीं सकती । आज मेरा सकल्प पूरा हुआ ।

सुधा : क्या ?

दीदी : मोहन अभी तक अच्छा लड़का था । अब वह महान् होगया । समझी कुछ ?

सुधा : हाँ, दीदी । आप उससे भी महान् हैं ।

परम्परा

●

सुरेन्द्र अंचल

हारा-थका बूढ़ा कौवा
इधर-उधर पर मार, घूम कर
लौट-लौट आता है —
उस खड़े ठूंठ पर
इसी तरह से—परम्परागत—
अधटूटे पंखों से उड़ता भूखा-प्यासा
होली का बूढ़ा त्योहार
एक बार फिर से लौटा है,
बूढ़े-सूखे विश्वासों के खड़े ठूंठ पर
आ बैठा है,
ठूँठ कि जिस पर मधुऋतु अपनी—
रस-भीगी कंचुकी टाँक
गंध का आसव पीने आया करती
त्यौहारों की कोकिल रस पी कूका करती
कोकिल क्यों लगती है कौवा ?
मधु-ऋतु की रंगस्थली—इस खड़े ठूँठ को
परम्परा की अमरवेल यह—
कब तक चूसेगी आखिर ?
कब तक ? कब तक ?

लम्बी उदासी

महावीर योगानन्दी

रेत नही उड़ती
पेड़ गुमसुमाए
चुपचाप खड़े हैं
मैदान मे पसरी—
लौट आती है मेरी दृष्टि
पता नहीं, क्यूं
नदी के तट पर खड़ा
पीपल का पेड़
तालियाँ नही पीटता
शायद—
मौसम उदास है।

गाल को
हथेली पर टिकाए
खाली-खाली लगती है
कुँवारी नज़र
पता नही
कही खो गई है—
सुध-बुध उनकी
और
सूखे कुंतल नही उड़ते
चेहरे की धूप
नही सेकती तन
शायद—

उनके आने पर भी
कुछ बीता-बीता-सा लगता है
और
सब कुछ होने पर भी
रीता-रीता वदन
कुछ सोचने नहीं देता
शायद—
कोई चुभो गया है—
आलपिनें
मेरे और तुम्हारे बीच
दूरी के चेहरे पर
किसी और के होने का
डर लगता है।

काश, मैं मुर्दा होता !

●

हामिद जोधपुरी

मैं भूखा हूँ —
मेरे पास खाने के लिए
एक दाना भी नही है
मैं नंगा हूँ —
मेरे पास पहनने के लिए
एक चिथड़ा भी नही है,
मैं बेघर हूँ —
मेरे पास रहने के लिए
एक कोना भी नही है,

ये सब क्यो है ?
क्योंकि—
मैं जिन्दा हूँ
हाँ, इसलिए कि
मैं साँस ले सकता हूँ

अगर मैं मुर्दा होता
तो—
मेरे पास रहने के लिए
एक कब्र होती !
पहनने के लिए
एक कफन होता !
और खाने के लिए
(जिसकी मुझे जरूरत नही हो
शीरनी भी होती !
पर
काश मैं मुर्दा होता !

कोई शहर का आदमी न आये मेरे गाँव

●

श्रीकृष्ण विश्नोई

छाछ पीता हूँ,
नींद लेता हूँ,
यह बेखबर घड़ियों की मंजिल,
यों ही साँस लेता हूँ।

ताँगों की भों-भों,
लारियों का शोर,
चिमनियों का धूँआं,
नालियों की बदबू,
बलगमी खाँसी,
कोई नहीं बसते मेरे गाँव।

भोर की भोली वेला में—
चक्कियों की घूं-घूं,
मथनी की झम-झूं,
बछड़ों की बाँ-बूं,
नींद को थपकियाँ देते हैं मेरे गाँव।

लिज़े लिज़े नपुंसक,
खूंखार खंजर,
पीप, मवाद, गिद्ध,
किलबिलाते कीड़े,
सड़ांध का नवीन युग-बोध;
अभी नहीं पहुँचा है मेरे गाँव।

यदि यही आधुनिकता है,
जो मैंने
इन शब्दो मे व्यक्त -
शहर से आने वाले अखबारों मे पढ़ी हैं
तो—मैं चाहूँगा—
मेरे गाँव तक कोई सड़क न बने।
कोई स्कूल न खुले,
अधिक क्या कहूँ—
कोई शहर का आदमी न आये मेरे गाँव।

युग से—

o

ब्रजभूषण भट्ट

रंगीन शहरों की
बड़ी-बड़ी सड़कों पर—
दिन-रात—
सुनाई पड़ता है—
ठक-ठक का एक बेधड़क शोर—
लगता है—
जैसे कोई—
फुटपाथ पर सोने वाले—
निर्जीव प्राणियों पर—
ठोक रहा हो कीलें
एक लम्बे युग से ।

रेलिंग

●

चंचल

बरामदे की रेलिंग पर
एक चिड़िया आ बैठी
पीली और नीली
कुछ भूरी-भूरी-सी पाँखोवाली
कभी पूँछ उठाती, गिराती, कभी फुदक-फुदक पंख सुजाती
कभी इधर-उधर, आगे पीछे उठती-बैठती।
तभी एक चंचल बालिका आयी
चिड़िया उड़ गयी।
अब बच्ची खेल रही है–
नीली-सी लाल-सी फ्राकवाली
कभी एक हाथ से छोड़ एक से झूलती है
कभी धरती पर पैर टेक अधर लटक जाती
कभी छड़ों में से नीचे को आरपार देखती
कभी ताली बजाती।
अभी दिन भर बाद यह भी चली जायेगी
रेलिंग यों ही खड़ा रहेगा
जैसा निर्विकार अब भी है–

आकृतियाँ और प्रतिबिम्ब

○

विमला भटनागर

मेरे कमरे की
दीवार पर
वर्षों से एक
आइना लगा है;
और मैं अपना
चेहरा इसी
आइने में देखती हूँ।
लेकिन,
पता नहीं क्यों—
हर वार आकृति
बदल जाती है;
और मैं,
आइने में उतरे
प्रतिबिम्ब को
अपने में सँजो लेती हूँ।
पर कल अचानक
आइना, गिरकर टूट गया,
और मेरा विश्वास
थाली में हिले पारे-सा
थरथरा उठा;
मेरी
सारी की सारी आकृतियाँ
सिक्कों की तरह
बिखर गईं।

झौंपड़ी रोयी

●

रामनिवास टेलर

[१]

"माँ ? आज भी कुछ नही मिला। चारो तरफ घूमा फिर भी किसी ने कुछ नही दिया।" कहकर निरुत्साह से साँस छोड़ता हुआ रामू अपनी माँ के पास आकर बैठ गया।

कदली के वृक्ष के पास ही फटी हुई फूस की झोंपड़ी मे एक वृद्ध स्त्री अर्द्ध-चैतन्यावस्था में पास के कोने में फटे हुए जीर्ण-वस्त्रों में लिपटी हुई विचारों में मग्न बैठी थी। संध्या का समय था। पक्षियों का अपने नीड़ की ओर आने-जाने का तांता-सा लग रहा था।

राधा ने अपने पुत्र को प्रातः ही पास के ग्राम में रोटी माँगने भेजा था। रामू की वाणी सुनकर उसने फटी रजाई में-से मुँह निकाल कर कहा—

"क्या आज भी कुछ नहीं मिला ? अच्छा, शायद रामी को कुछ मिल जाय। आज वह रघुनाथपुर मे गयी है, आती ही होगी।" कहकर राधा ने मुँह ढक लिया।

राधा के जीवन के बारे में यह कहा जा सकता था, कि वह प्रारम्भ से ही निर्धन थी। उसका पति किशना, जिसका गत वर्ष देहान्त हो गया था, वह भी भीख माँग कर अपने परिवार का पालन-पोषण करता था। वह अन्धा होते हुए भी तम्बूरे को कुशलतापूर्वक मधुर ध्वनि से बजा लेता था। उसके साथ-साथ राधा भी मधुर स्वर मे गीत गाती थी और सबके मन को हर्षाती थी।

परन्तु आज किशना नही रहा। उसका तम्बूरा झोंपड़ी के एक कौने में बैठा हुआ रो रहा था। किशना अपने पीछे एक बालक व बालिका छोड़ गया था, जो आज क्षुधा-पूर्ति हेतु दर-दर भटक रहे हैं। जिनको यह ज्ञान नहीं कि दुनिया कितनी विशाल है, केवल सावला व रघुनाथपुर ही

पर भाग्य में भाग्य देवी ने यही भीख माँगना मात्र लिखा था। उनके दुर्बल शरीर को देखकर प्रतीत होता था, मानो अकाल ने उनके अतिरिक्त किसी अन्य को नहीं देखा था। सम्पूर्ण झोंपड़ी में अकाल का साम्राज्य व्याप्त था। दरिद्र-नारायण ने अपना प्रकोप उन पर पहाड़-सा ढा रखा था।

रामू उठकर बाहर आया। सामने से रामी आती हुई दिखायी दी। "कितनी रोटियाँ लायी हो रामी ?" रामू ने रामी के पास आने पर पूछा।

"आज तो तीन रोटियाँ व थोड़ी ज्वार की राबड़ी हाथ लगी है भैया। तुम कितनी लाये हो ?"

"रामी ! मुझ अभागे को किसी ने नहीं दी।"

"तो थोड़ी-सी रोटी से कैसे भूख शान्त होगी ? कल भी रोटियाँ थोड़ी होने से माँ ने कुछ नहीं खाया था, और...."

"आज मैं नहीं खाऊँगा रामी। तुम माँ को भोजन कराना और स्वयं भी खा लेना। मैं फिर माँगने को जाता हूँ।"

"नहीं भैया ! रामी ने रामू का हाथ पकड़ कर कहा। इनको हम तीनों माँ-बेटे मिलकर खायेंगे। अधिक नहीं तो थोड़ा-थोड़ा ही खायेंगे पर मैं तुम्हें बिना रोटी खिलाये नहीं जाने दूँगी। माँ भी तुम्हारे बिना रोटी नहीं खायेगी ?"

"अच्छा रामी ! चलो हम तीनों मिलकर खायेंगे। थोड़ी बहुत क्षुधा तो शान्त होगी।"

रामू और रामी एक गरीब माँ की पुकार, वृद्धा के आँख के तारे, घर-घर की करुण पुकार–"माँ एक रोटी दो।" अपनी झौंपड़ी की ओर चल पड़े। मूल्यवान् रत्न पथ के कण-कण को लखते हुए, कभी-कभी शून्य में ताकते हुए अपने नीड़ की ओर जा रहे थे। जिनके हृदय निरीह थे ! नैनों में नीर था तथा तन परिश्रमी था।

"माँ ? रामी आ गयी। अब थोड़ा खालो। तुमने कल भी कुछ नहीं खाया था।" रामू ने घर में प्रवेश करते ही कहा।

"तुम दोनों खाओ बेटा, मैं थोड़ी देर पश्चात् खा लूँगी।" गूदड़ी में-से मुँह निकाल कर राधा ने कहा।

"नहीं माँ ! तुमको भी खाना पड़ेगा, और देखो ना, मैं बहुत-सी रोटी लायी हूँ। हम तीनों मिलकर एक साथ खायेंगे।" रामी ने कहा।

बेटी की बात सुनकर राधा की आँखों से दो बूँद अश्रु लुढ़ककर, गुदड़ी में छिपकर उसकी दुगनी छवि बढ़ाने लगे। "तुम दोनों मेरे पास आओ !" राधा ने अश्रुओं को पोंछते हुए कहा।

रामू व रामी ! माँ के पास आकर बैठ गये। रामी ने टूटे-फूटे पात्रों में भोजन डाल दिया। राधा ने दीनबन्धु-जगदीश से करबद्ध कर प्रार्थना की। पश्चात् तीनों प्राणी भोजन करने लगे।

राधा ने धीरे-धीरे खाया, जिससे उसके लाडले भूखे न रह जायँ। अल्प भोजन होने से उनकी क्षुधा शान्त नहीं हुई। फिर भी न होने से अच्छा था।

राधा के परिवार पर झोंपड़ी की असीम कृपा थी। कई तूफान आये, फिर भी वह अडिग रही। वर्षा और सर्दी से भी वह डटकर लोहा लेती रही।

जाड़े की ऋतु थी। सर्दी अपना प्रभुत्व दिखा रही थी। रातभर एक ही गूदड़ी में तीनों माँ-बेटे सर्दी के संकट को निकाल रहे थे। वह फटी गूदड़ी ही उनकी गर्म शाल, ओवरकोट और गर्म सूट था।

आह ! क्या आज ही सब कोहरा पड़ेगा ? दाँत तक बोलने लग गये हैं। गरीबों को ऐसे ही ठिठुर-ठिठुरकर भूखे-नगे रह कर मरना पड़ता है ! आह ! यह जग की परम्परा है, विडम्बना है तथा निर्धनता की चरम सीमा है।

"माँ सर्दी लग रही है।" रामू ने कहा।

"थोड़ा और मेरे पास आ जाओ। आज जाड़ा कल की अपेक्षा अधिक है।" राधा ने गूदड़ी को रामी की ओर धकेलते हुए कहा।

"तो फिर कल सवेरे रोटियाँ माँगने कैसे जायेंगे माँ ?" रामी ने पूछा।

"बेटी ! सवेरा होने दो, तब देखा जायेगा।"

रामी चुप हो गयी। परन्तु सर्दी के मारे उसको नींद नहीं आ रही थी। उसके मस्तिष्क में मकड़ी का जाल बुना जा रहा था। जिस उलझन को सुलझाने में मग्न थी, वह थी कल की रोटी। इसी उधेड़बुन में रामी को नींद आ गयी।

करवट ली। श्रवणों में चिड़ियों के चहचहाने की आवाज आयी। रामी ने 'माँ' कहते हुए गुदड़ी में से मुँह बाहर निकाला। "उठो रामी ! थोड़ी लकड़ियाँ जलाओ, आज सर्दी अधिक है।" राधा ने कहा।

रामी उठकर लकड़ियाँ जलाती है। तीनों प्राणी उस निर्जन कानन में फूस की झोंपड़ी के पास जलती हुई लकड़ियों के समीप बैठ जाते हैं।

सन्निवेश।

कड़ाके का जाड़ा पड़ रहा था। चहुँ ओर कोहरे का अंधकार व्याप्त था। सर्वत्र सांय-सांय की ध्वनि उत्पन्न हो रही थी।

[२]

"मां, एक रोटी दो ! भगवान् तुम्हारा भला करेगा। तेरे दूध-पूत जीयें मां !"

"चले जाओ यहाँ से। सुबह-सुबह ही आ गया गधा कहीं का, न सर्दी देखते हैं न गर्मी—मां एक रोटी दो—हूँ।" गर्म वस्त्रों में लिपटी हुई एक स्त्री कहकर अन्दर चली गयी।

रामू अपना-सा मुँह लेकर उल्टे पैर वापस लौट पड़ा। सर्दी के मारे दांत बोल रहे थे। सम्पूर्ण शरीर में कम्पन की लहर उत्पन्न हो रही थी। परन्तु उसके भाग्य-पटल पर लिखा था—'रोटी'।

फिर वही स्वर—"वहन, तेरा ईश्वर भला करेगा। ठंडी-वासी रोटी हो तो दे दो ! मेरी माँ कल से भूखी है वहन ! ईश्वर दीर्घायु करे, एक रोटी दो वहन ! एक फटा-पुराना कमीज हो तो देओ वहन, सर्दी लग रही है।" कम्पन स्वर में रामू ने सारी वातें एक साथ कह डालीं।

"अभी हमने चाय-दूध पिया है, रोटी दोपहर को वनेगी, तव आना, मैं तुझे रोटी अवश्य दूंगी।" कहकर एक वारह वर्षीय वालिका ने दरवाजा वन्द कर लिया।

थोड़े समय पश्चात् फिर वही स्वर—"भैया एक रोटी देओ, मेरी मां भूखी है ! ईश्वर तुम्हारी कामना पूर्ण करेगा।"

"छोकरी, चली जाओ यहां से। यहाँ रोटी-वोटी कुछ नहीं है।""मैं कहता हूँ चली जाओ यहाँ से।"

"आप अन्दर चले आइये ! सर्दी लग जायेगी। ये कम्वख्त कहीं के सुबह-सुबह ही आ जाते हैं। एक को निकाला तो दूसरा तैयार। गधे कहीं के, मरते भी तो नहीं हैं।" अन्दर से मेम-साहव ने वड़वड़ाते हुए कहा।

लड़की अपना-सा मुँह लेकर चली गयी। निष्ठुर कहीं का, एक रोटी भी नहीं दे सका ? गरीवी, क्या तेरे भाग्य में यही सव कुछ लिखा है ? वाह-रे भगवान्, तेरा राज्य अनूठा है। कोई भूखा है तो कोई नंगा, और कोई वावू तेरे तुल्य वन वैठा है। धन्य हो ईश्वर, जो इस अनुपम दुनिया में हमारा कोई भी अस्तित्व नहीं रखा।

एक दुर्वल वालिका, ईश्वरीय सृष्टि के वारे में विचार करती हुई जा रही थी। जिसका घर-घर भीख माँगना ही सौभाग्य-चिह्न था।

कोहरे के प्रकोप से रघुशलम की सड़कें सुनसान थी। किसकी हिम्मत थी, जो उस शीत में बाहर निकलता। केवल एक बालक व बालिका उस निर्जनता मे अपनी जिन्दगी सर्दी को प्रदान कर दर-दर की ठोकरें खा रहे थे।

"माँ ! मेरी माँ भूखी है, एक रोटी दे दो माँ ?" रामी ने दूसरे घर मे प्रवेश करते ही कहा। कुछ समय तक रामी ने रोटी लाने की राह देखी। न आने पर उस शून्यता में गढी हुई आखें फाड़ कर फिर से चलने लगी।

रामी—जिसके तन पर एक फटी हुई कमीज थी और हाथो मे एक टूटा हुआ जस्ते का प्याला। पैर नगे थे। शरीर बहुत दुर्बल था। अधिक चलने-फिरने का सामर्थ्य उसमे नही था। फिर भी वह अपने पेट के लिये तथा माँ के लिये रोटी माँगने प्रातःकाल ही चल पड़ती थी।

परन्तु जाड़े ने आज उसके पेट पर लात मारी है। सर्दी के प्रभाव से रामी के तनबदन में दर्द व कराहट उत्पन्न होने लगी। दुर्बल शरीर में शीत का प्रवेश होने लगा। धीरे-धीरे रामी की आँखो में अंधेरा होने लगा। बारह वर्ष की बालिका यह नहीं समझ सकी कि आज कोहरा उसका काल बनकर आया है।

इतना कष्ट होने पर भी रामी धीरे-धीरे निरन्तर आगे बढ़ रही थी। भाग्य से रामू भी आज रघुशलम मे आया हुआ था। परन्तु वह भी कहीं भीख माँग रहा होगा। रामी सदैव की भाँति, अपनी सहेली सुधा से रोटी लेने जा रही थी।

सुधा को गरीब रामी से अत्यन्त स्नेह था। घर वालो के डाँटने पर भी सुधा, रामी को चुपके से रोटी डाल देती थी।

दोपहर होने को था। सुधा रामी की प्रतीक्षा कर रही थी। कुछ समय पश्चात् कोहरे मे एक काली-सी मूर्ति अपनी ओर आती हुई दिखायी दी। सुधा रोटी लेकर नीचे दालान मे आ गयी।

रामी कुहरे के अन्धकार को चीरती हुई तथा हृदय में उत्पन्न पीड़ा को छिपाती हुई सुधा के घर की ओर आ रही थी।

रामी का सम्पूर्ण शरीर काँप रहा था। पाँव आगे बढ़ने में असमर्थ थे। एकाएक उसे चक्कर आया और वह उस अंधकार में गिर पड़ी।

"रामी ?" कहती हुई सुधा उसके पास आ पहुँची और उसे उठाने लगी।

रामी का शरीर अकड़ गया था। सुधा ने बहुत पुकारा, परन्तु रामी ने उसका कोई प्रत्युत्तर नहीं दिया।

सुधा ने रामी के बारे में पिताजी से कहा। तीनों माँ-बेटे गर्म वस्त्रों में लिपटे हुए रामी के पास पहुँचे। सुधा के पिताजी ने उसे देखते ही कहा—"सुधा! रामी अब इस दुनिया में नहीं रही। यह मर चुकी है।"

सुधा की आँखें भर आयीं। अपनी माँ के अंक में मुँह छिपाकर वह रोने लगी।

"बहन, अब तो रोटी दो, दोपहर हो गयी है।" रामू का स्वर गूँजा और अंधकार में लुप्त हो गया। "अबे, तुझे रोटी की लगी है, और यहाँ लाश पड़ी हुई है। इधर आ?"

"क्या है बाबूजी?" डरते हुए रामू ने पास आकर कहा।

"यह लड़की किसकी है? इसे देखो, यह मर गयी है।" सुधा के पिता ने कहा।

रामू ज्योंही उसका मुँह देखता है, उसके मुँह से एक चीख निकलती है।

रामू रोता हुआ कह रहा था—'रामी! मुझे छोड़कर कहाँ जा रही हो? मैं माँ को क्या जवाब दूँगा? नहीं रामी नहीं, उठो, देखो—मैं आज बहुत, ढेर-सारी रोटियाँ लाया हूँ। उठो, रामी अब तुझे यहाँ कभी नहीं आने दूँगा। रामी? माँ भूखी होगी, वो तेरे बिना रोटी नहीं खायेगी।"

"उठो भाई! अब इसे अपने घर ले जाने का प्रबन्ध करो।"

सुधा के पिताजी की आँखें सजल हो गयी थी।

रोता हुआ रामू, अपनी मृत-भगिनी को कंधे पर उठा कर, उस कोहरे में समा गया, जिसने रामी की जान ली थी।

सुधा ने आज भोजन नहीं किया। रात को आँसुओं से गीला करती रही।

[३]

अपने घर के पास आते ही रामू फूट-फूट कर रोने लगा। रोने का स्वर सुनकर राधा ने कहा—"कौन है भाई, क्यों रो रहे हो?"

रोते हुए रामू ने, रामी की लाश अपनी माँ के समक्ष रख दी, और फूट-फूट कर रोने लगा।

"रामी! मेरी रामी! यह तूने क्या किया, तू कहाँ चली गयी?" कहकर राधा बेहोश हो गयी। रामू रो रहा था। उसने माँ को उठाया। राधा ने एक दृष्टि रामू पर डाली और वह भी उसको रोता छोड़कर चल बसी।

काल के कुचक्र ने राम् से, माँ और बहिन को छीन लिया। रामू बहुत रोया। रोते रोते उसकी आँखें सूज गयी।

रामू रोया और वह झोंपड़ी भी रोयी, जिसने आज तक उनकी रक्षा की।

रामू ने छत की ओर झाँक कर देखा, ओस की बूँदें टपक रही थी। प्रिय झोंपड़ी को रोते देख, रामू की आँखो से फिर अश्रुधारा बह चली।

रामू! भगिनी व माँ की मृत्यु पर बहुत रोया, और रात भर रोता रहा, जिससे उसका शरीर भी बहुत क्षीण हो गया था। झोंपड़ी के इर्द-गिर्द सारी रात शृगाल और श्वान रोते रहे।

प्रातःकाल शीत लहर चल रही थी। कोहरा अभी पूर्णतया स्पष्ट नही हुआ था। रामू उठा और सोचने लगा दाह–संस्कार! वह पैरो को लड़खड़ाता हुआ बाहर आया। उसका मस्तिष्क चकरा रहा था। रामू! माँ चली गयी, तू इस स्वार्थी दुनिया मे जिन्दा रह कर क्या करेगा—भीख माँगेगा? जिस भीख ने तेरी माँ और बहिन को खा डाला क्या वही भीख माँगेगा, क्या वही भीख माँगेगा?

नही! नही!? मैं अब भीख नही माँगूँगा। रामू की आँखो से नीर बहने लगा। विचार-मग्न रामू फिर आगे बढने लगा। परन्तु शरीर की क्षीणता से आगे नही बढ़ सका।

"मैं कहाँ जा रहा हूँ? मेरी मृत माँ व बहिन का क्या होगा? गीदड़, चील, कौवे, कुत्ते उनको नोंच-नोंच कर खायेंगे? नही! यह नही हो सकता। मैं उनकी रक्षा करूंगा।"

रामू वापिस लौट पड़ा। झोंपड़ी रो रही थी। उसने भी माँ व भगिनी के मृत शरीर पर अपना सिर रखकर रोना प्रारम्भ कर दिया।

रोते-रोते पता नही कब उसकी आँख लग गयी। रामू फिर नही उठा।

काल के कुचक्र ने, तीनो प्राणियो को सदैव के लिये अपनी विशाल बाहों मे समेट लिया।

उस भयानक दृश्य को देख कर झोंपड़ी रोई और बहुत रोई, जिसे किसी ने नहीं देखा।

अभिशाप या वरदान !

०

मुरारीलाल कटारिया

मैं भटक रही हूँ, गली-गलियारों में; मेलों में-खलिहानों में, महलों में, खण्डहरों में, सड़कों-चौराहों पर, दुनिया के कोने-कोने में लेकिन मुझे ऐसी देह या जगह नहीं मिलती, जिसमें समाकर मैं सदैव-सदैव के लिये लीन हो जाऊँ। ओह ! इतनी विशाल सृष्टि; फिर भी मुझ जैसी अभागिन को कहीं भी जगह नहीं मिलती। मैं तलाश में हूँ; आत्मा की नहीं, वरन् जिस शरीर में जीवन-रस हिलोरें ले रहा हो ! जो मुझको समझ सके, मुझसे प्रणय, स्नेह या वात्सल्य दर्शा सके ! सचमुच, उस समय मुझे हर्ष होगा, जबकि मैं किसी की अंकशायिनी बनूंगी; भगिनी बनूंगी या फिर पुत्री बनूंगी ! परन्तु इस असीम सृष्टि में मुझे कोई नहीं मिला और शायद मिलेगा भी नहीं। मैं अमर होते हुए भी सदैव कुंठा की आग में झुलसती रहूँगी; शायद यहीं मेरे भाग्य में बदा है। ओह ! कैसा मेरा जीवन है; माता-पिता-विहीन; स्नेह-रहित प्रणय, प्रणय-विहीन !

मुझे कोई भी तो नहीं अपनाता। राजा से लेकर रंक तक; कोई भी मेरा आदर नहीं करता। अतीत की गहराइयों में मैं पैठकर देखने का प्रयत्न करती हूँ, तो कुछ धुंधला-धुंधला–सा नजर आता है कि मुझे अंशतः स्थान मिला है, तो साधु-संन्यासियों में ! नहीं–नहीं, यह भी पूर्णरूपेण उपयुक्त नहीं ! मुझे वहाँ भी स्थान नहीं मिला। उनमें भी एक बारगी तो अपने जीवन को सर्वोच्च आदर्शमय दर्शाने की आकांक्षा सताये रहती है। आदर्शवादी, तपस्वी, साधु कहलाने की उत्कण्ठा उनमें भी सदैव बनी रहती है। वस्तुतः मैं स्वयं में पूर्ण नहीं, तभी तो दूसरों को भी अपूर्ण ही रखती हूँ।

सजीव तो क्या निर्जीव द्वारा भी तो मैं नहीं अपनायी गयी। पत्थर की प्यास नहीं बुझी, हवा की आकांक्षाएँ उत्तरोत्तर बढ़ती जा रही हैं। यही नहीं, अपितु 'माटी' (मातृ-भूमि) की पिपासा (बलिदान-रूपी) भी शान्त नहीं

हो रही। एक नहीं, दो नहीं, असंख्य करोड़ों वीरों ने आहुति देकर देश की 'माटी' को सन्तुष्ट करना चाहा। लेकिन, क्या आज तक भी उसकी पिपासा शान्त हुई ? जबाव है, नही; नही ! माटी की प्यास के बुझाने के लिये ही तो चारो ओर युद्ध के काले बादल मँडरा रहे हैं ! मानव दिनवदिन नवीन सौतनों को मेरे सामने ला पटकता है। एक सौतन मर जाती है, पुनः दूसरी जाग उठती है। मैं वही की वही मुँह ताकते रह जाती हूँ।

मानव ने अभी तक मुझे स्थान दिया भी है, तो केवल मस्तिष्क में, अपने हृदय में नही। मैंने भिखारी को अपने हाथों से ताज पहनाया, गिरते हुओं को उठाया; मन स्ताप में झुलसतों को नया जीवन दिया. परन्तु आश्चर्य कि मानव मुझे एक ताक में रखकर मेरी सौतनों के पीछे-पीछे भागा फिरता है। उफ; मानव कितना स्वार्थी है ! यदि मानव अतीत की गहराइयों में पैठ कर देखे, तो उसे ज्ञात होगा कि वह पहले किस अवस्था मे था ! नग्न था, अकेला भटकता था। मेरी सौतनें (आवश्यकताएँ) दिनवदिन बढती गईं, मैं पूर्ण करती रही, लेकिन मनुष्य फिर भी मेरी सौतनो से घिरा रहा।

मैं चीखती हूँ, ढूंढती हूँ; हरेक मानवीय हृदय को जिसमें मैं वास कर सकूँ; वर्षा की बूँद की तरह मोती बनकर सीपी का मान बढाऊँ, लेकिन असहाय हूँ ! मुझे मानव कुछ क्षण के लिये अपने हृदय में स्थान दे भी देता है, लेकिन अन्यावश्यकताएँ मुझे उसके हृदय से भगा देती हैं और मैं स्वय को असहाय पाकर अपनी सौत को खुश करने में जुट जाती हूँ, परन्तु निरर्थक !

कभी-कभी अन्तस्थल चीत्कार कर उठता है और कहता है कि मैं इस सजीव प्राणी को छोड़कर लाशों में समाजाऊँ ! शायद; मेरे नसीब में यह भी नहीं लिखा। मानव की भटकती आत्मा पुन. मुझे झकझोरती है और वह लाश को पीढ़ी-दर-पीढ़ी को सताती रहती है; क्रियाकर्म, श्राद्ध आदि कराने को मजबूर करती है। सच पूछो, तो मुझे लाशों में भी चैन नहीं मिलता। आप कहेंगे, मैं कायर हूँ, जो सौतनों से घबराकर भागती फिरती हूँ। इस पहलू के अलावा यदि मेरा दूसरा पहलू देखो, तो समझोगे कि मैं कितनी मुसीबतें सहकर भी धैर्यता के साथ मुकाबला कर रही हूँ।

फिर भी; वस्तुतः मैं हताश हूँ; भागती फिर रही हूँ ! क्या मुझ जैसी का कोई नाथ बनने को तैयार है ? क्या मुझ जैसी कलंकिनी का कोई प्राणेश्वर बनना स्वीकार करेगा ! सचमुच मैं उस दिन अपने आपको सौभाग्यशाली

अभिशाप या वरदान !

o

मुरारीलाल कटारिया

मैं भटक रही हूँ, गली-गलियारों में; खेतों में-खलिहानों में, महलों में, खण्डहरों में, सड़कों-चौराहों पर, दुनिया के कोने-कोने में लेकिन मुझे ऐसी देह या जगह नहीं मिलती, जिसमें समाकर मैं सदैव-सदैव के लिये लीन हो जाऊँ। ओह ! इतनी विशाल सृष्टि; फिर भी मुझ जैसी अभागिन को कहीं भी जगह नहीं मिलती। मैं तलाश में हूँ; लाशों की नहीं, वरन् जिस शरीर में जीवन-रस हिलोरें ले रहा हो ! जो मुझको समझ सके, मुझसे प्रणय, स्नेह या वात्सल्य दर्शा सके ! सचमुच, उस समय मुझे हर्ष होगा, जबकि मैं किसी की अंकशायिनी बनूंगी; भगिनी बनूंगी या फिर पुत्री बनूंगी ! परन्तु इस असीम सृष्टि में मुझे कोई नहीं मिला और शायद मिलेगा भी नहीं। मैं अमर होते हुए भी सदैव कुंठा की आग में झुलसती रहूँगी; शायद यहीं मेरे भाग्य में बदा है। ओह ! कैसा मेरा जीवन है; माता-पिता-विहीन; स्नेह-रहित प्रणय, प्रणय-विहीन !

मुझे कोई भी तो नहीं अपनाता। राजा से लेकर रंक तक; कोई भी मेरा आदर नहीं करता। अतीत की गहराइयों में मैं पैठकर देखने का प्रयत्न करती हूँ, तो कुछ धुंधला-धुंधला–सा नजर आता है कि मुझे अंशतः स्थान मिला है, तो साधु-संन्यासियों में ! नहीं–नहीं, यह भी पूर्णरूपेण उपयुक्त नहीं ! मुझे वहाँ भी स्थान नहीं मिला। उनमें भी एकबारगी तो अपने जीवन को सर्वोच्च आदर्शमय दर्शाने की आकांक्षा सताये रहती है। आदर्शवादी, तपस्वी, साधु कहलाने की उत्कण्ठा उनमें भी सदैव बनी रहती है। वस्तुतः मैं स्वयं में पूर्ण नहीं, तभी तो दूसरों को भी अपूर्ण ही रखती हूँ।

सजीव तो क्या निर्जीव द्वारा भी तो मैं नहीं अपनायी गयी। पत्थर की प्यास नहीं बुझी, हवा की आकांक्षाएँ उत्तरोत्तर बढ़ती जा रही हैं। यही नहीं, अपितु 'माटी' (मातृ-भूमि) की पिपासा (बलिदान-रूपी) भी शान्त नहीं

अतृप्ति

●

रमेशचन्द्र शर्मा 'मधुप'

सतयुग का समय था। संसार सुख-सागर में हिलोरें लेता था। सर्वत्र चैन की वंशी बजती थी। पाप-पुण्य की समस्या नहीं थी क्योंकि पाप का परिचय मनुष्य को मिला नहीं था। उसने निषिद्ध फल चखा नहीं था। अभी वह स्वर्ग में ही था। देव-दानव, यक्ष-किन्नर सभी उसके मित्र थे। सुमन सुरभित थे। जीवन-वाटिका महमहकर महक रही थी। सर्वत्र तृप्ति और संतोष का साम्राज्य था।

ऐसे स्वर्णिम समय में भी अतृप्ति निश्वासों से दोलित थी। उसका मुख म्लान था। खिन्नता रोम-रोम से टपक रही थी। 'आह ! मुझे कहीं दो पग ठौर भी नहीं !"

माया—उसकी चिर सखी ने उसके दु.ख से अभिभूत हो पूछा—"हे सखी ! इस आनन्द-सागर में तुझे क्या परिताप है कह तो ?"

अतृप्ति—'आह माये ! तुम परिताप की पूछती हो ? मुझे कहीं एक क्षण विश्राम भी तो नहीं।"

माया—क्यों ?

अतृप्ति—"मनुष्येतर योनियों की तो बात ही छोड़ो, ये तुम्हारे वशवर्ती मनुष्य भी मेरी अवहेलना करते हैं।"

माया ने एक प्यार भरी चपत जमाते हुए कहा "चल पगली इतनी-सी बात ? ले, *सब मनुजमात्र तेरे इर्द-गिर्द घूमेंगे।*"

और दोनों सहेलियाँ आलिंगनबद्ध हो गईं।

उधर मानव ने निजी संपत्ति बनाई, कृषि की, यंत्र बनाये, दास रखे, मुद्रा को जन्म दिया। भाइयों का रक्त पानी बनाया। न जाने कितने महाभारत हुए। बूढ़े विधाता ने एक दीर्घ श्वास लेकर समाधि लगा ली।

समझूंगी, जिस दिन मैं किसी के हृदय में स्थान पा लूंगी। वही दिन मुझे सनाथ बना देगा। मैं उस दिन का धैर्यता के साथ इन्तजार कर रही हूं, जिस दिन मुझे कोई सजी हुई डोली में दुल्हन की तरह बिठाकर ले जाएगा और मेरी सौतन को फूटी आँख से देखना भी पसन्द नहीं करेगा! शायद कब आये वह दिन; कौन मुझे अपनाये; इससे पूर्व मैं स्पष्ट कर दूं कि मैं कौन हूं ?

मैं हूं : तृप्त ! स्वयं में ही अतृप्त !! यह मेरा अमरत्व; अभिशाप है या वरदान ?

अतृप्ति

●

रमेशचन्द्र शर्मा 'मधुप'

सतयुग का समय था। ससार सुख-सागर मे हिलोरें लेता था। सर्वत्र चैन की वशी बजती थी। पाप-पुण्य की समस्या नही थी क्योंकि पाप का परिचय मनुष्य को मिला नही था। उसने निषिद्ध फल चखा नही था। अभी वह स्वर्ग मे ही था। देव-दानव, यक्ष-किन्नर सभी उसके मित्र थे। सुमन सुरभित थे। जीवन-वाटिका महमहकर महक रही थी। सर्वत्र तृप्ति और सतोष का साम्राज्य था।

ऐसे स्वर्णिम समय मे भी अतृप्ति निश्वासों से दोलित थी। उसका मुख म्लान था। खिन्नता रोम-रोम से टपक रही थी। 'आह ! मुझे कही दो पग ठौर भी नही !"

माया—उसकी चिर सखी ने उसके दुःख से अभिभूत हो पूछा—
"हे सखी ! इस आनन्द-सागर मे तुझे क्या परिताप है कह तो ?"

अतृप्ति—'आह माये ! तुम परिताप को पूछती हो ? मुझे कही एक क्षण विश्राम भी तो नही।"

माया—क्यों ?

अतृप्ति—"मनुष्येतर योनियो की तो बात ही छोडो, ये तुम्हारे वशवर्ती मनुष्य भी मेरी अवहेलना करते है।"

माया ने एक प्यार भरी चपत जमाते हुए कहा "चल पगली इतनी-सी बात ? ले, सब मनुजमात्र तेरे इर्द-गिर्द घूमेगे।"

और दोनो सहेलियाँ आलिगनबद्ध हो गई।

उधर मानव ने निजी सपत्ति बनाई, कृषि की, यंत्र बनाये, दास रखे, मुद्रा को जन्म दिया। भाइयों का रक्त पानी बनाया। न जाने कितने महाभारत हुए। बूढ़े विधाता ने एक दीर्घ श्वास लेकर समाधि लगा ली।

तब से मानव सुख की खोज में भटक रहा है। हर क्षण उसे लगता है कि सुख अब मिला—अब मिला पर सुख है कि गूलर का फूल है? अँजुली के जल-सा सरक-सरक जाता है।

आज भी तृप्ति के लिए, सुख की सुरा के लिए सुसंस्कृत मानव बेचैन है। वह ईश्वर और प्रकृति को ललकार रहा है परन्तु सुख तो लुटा चरित्र हो गया।

और अतृप्ति संतुष्ट उसकी नेत्र-ज्योति—उसका यौवन उभार पर है।

वसन्त-गीत

●

भगवतीलाल व्यास

नही खिला कोई भी खेतों का फूल,
पोखर मे उग आये ढेर से बबूल।
सपनो के मोहल्ले में प्रश्नो के द्वन्द्व,
अपनों की अटारी पर बेगानी गंध।

केवल वक्तव्यो से कही आया है बसन्त ?

नहीं पड़ी ढोलक पर कही एक थाप,
सूरज ने रिक्त गगन लिया खूब माप।
चंग रही चिपकी बूढी दीवार से,
कुढ़ती रही चूनर रूखे व्यवहार से।

क्या सचमुच नहीं आओगे महन्त ?

किस उदास झाडी से उलझ गया चीर,
सुरसा है निगल रही सुख का महावीर।
कोयल खुद डरती है अपनी आवाज़ से,
झाड़ेगा कौन गर्द पड़े हुए साज से।

क्या यूँ ही होगा इस नाटक का अन्त ?

●

अनबोली साँझ कोई

●

जगदीश 'सुदामा'

डाल-डाल धूल भरी किरणों को टाँक गई,
जानी पहचानी-सी अनबोली साँझ कोई।

चिपकी दीवारों से उजियाली कतरन को,
छाया-सी महरी ने झाड़ लिया फेंक दिया।
फटी-फटी खिड़की की आँख पड़ा जाला है,
आँगन में पंछी ने तिनकों का ढेर किया॥

मुँह लटके छज्जों के अधर हँसी फूट पड़ी,
परदेशी बदरा ने बदले हैं रूप कई।

कितनी ही बरसातें रो-रो कर रीत गईं,
कभी इसी छाजन पर सोन-परी उतरी थी।
अँधियारी राहों ने युग-युग तक टेरा है,
रातें जो बीत गईं, गूंगी थीं, बहरी थीं॥

मुँह काढ़े झुके-झुके बाँसों की परछाईं,
(भित्ति) पर गाड़ गई कीलें कुछ नई-नई।

महका है स्मृतियों का वातायन आज अधिक,
अगहन की शीत लहर हियरा-कचोट गई।
अभी-अभी, हरे-भरे तुलसी के झाड़ तले,
मंगलमय दीप जला, जैसे तुम लौट गईं॥

जाने कब जंगले पर चढ़ बैठी बेल नई।
क्यारी का फूल कोई मुरझाये देर हुई॥

उगते सूरज को सभी सलामी देते हैं

•

गोपाल प्रसाद मुद्‌गल

ढलते सूरज को कौन झुकाता है माथा,
उगते सूरज को सभी सलामी देते हैं।

बुझते दीपक से कौन लगाता है नेहा,
जलते दीपक पर लाखों प्राण चढ़ाते हैं।
ढलते चन्दा को कौन बिछाता है आँखें,
उगते चन्दा को ही सब अर्घ्य चढ़ाते हैं।

मुरझाये फूलों को अलि गीत सुनाते कब,
पर खिले गुलों पर सौ-सौ फेरे देते हैं।
ढलते सूरज को कौन झुकाता है माथा,
उगते सूरज को सभी सलामी देते हैं।

उजड़े खंडहर से कौन मुलाकातें करता,
हर एक महल मीनारों को ललचाता है।
पतझर की चर्चा होती है किसके मुख पर,
हर एक बसन्ती का बन्दी बन जाता है।

बिगड़ी हस्ती का कौन सगाती दुनिया में,
झट बनी बनी के सब साथी हो लेते हैं।
ढलते सूरज को कौन झुकाता है माथा,
उगते सूरज को सभी सलामी देते हैं।

•

अनबोली साँझ कोई

●

जगदीश 'सुदामा'

डाल-डाल धूल भरी किरणों को टाँक गई,
जानी पहचानी-सी अनबोली साँझ कोई।

चिपकी दीवारों से उजियाली कतरन को,
छाया-सी महरी ने झाड़ लिया फेंक दिया।
फटी-फटी खिड़की की आँख पड़ा जाला है,
आँगन में पंछी ने तिनकों का ढेर किया॥

मुँह लटके छज्जों के अधर हँसी फूट पड़ी,
परदेशी बदरा ने बदले हैं रूप कई।

कितनी ही बरसातें रो-रो कर रीत गईं,
कभी इसी छाजन पर सोन-परी उतरी थी।
अँधियारी राहों ने युग-युग तक टेरा है,
रातें जो बीत गईं, गूँगी थीं, बहरी थीं॥

मुँह काढ़े झुके-झुके बाँसों की परछाई,
(भित्ति) पर गाड़ गई कीलें कुछ नई—नई।

महका है स्मृतियों का वातायन आज अधिक,
अगहन की शीत लहर हियरा-कचोट गई।
अभी-अभी, हरे-भरे तुलसी के झाड़ तले,
मंगलमय दीप जला, जैसे तुम लौट गईं॥

जाने कब जंगले पर चढ़ बैठी बेल नई।
क्यारी का फूल कोई मुरझाये देर हुई॥

उगते सूरज को सभी सलामी देते हैं

गोपाल प्रसाद मुद्गल

ढलते सूरज को कौन झुकाता है माथा,
उगते सूरज को सभी सलामी देते हैं।

बुझते दीपक से कौन लगाता है नेहा,
जलते दीपक पर लाखो प्राण चढ़ाते है।
ढलते चन्दा को कौन बिछाता है आँखें,
उगते चन्दा को ही सब अर्घ्य चढ़ाते हैं।

मुरझाये फूलो को अलि गीत सुनाते कब,
पर खिले गुलों पर सौ-सौ फेरे देते हैं।
ढलते सूरज को कौन झुकाता है माथा,
उगते सूरज को सभी सलामी देते हैं।

उजड़े खडहर से कौन मुलाकातें करता,
हर एक महल मीनारो को ललचाता है।
पतझर की चर्चा होती है किसके मुख पर,
हर एक बसन्ती का बन्दी बन जाता है।

बिगडी हस्ती का कौन संगाती दुनिया मे,
झट बनी बनी के सब साथी हो लेते हैं।
ढलते सूरज को कौन झुकाता है माथा,
उगते सूरज को सभी सलामी देते हैं।

द्वार बन्द हो गया

करणीदान बारहठ

सद्दीक अपनी पुस्तक छोड़कर ललित की मेज के पास चला गया। ललित कीट्स के ओड्स में फँसा हुआ था। पुस्तक पर झुककर सद्दीक ने कहा—'क्या पढ़ रहे हो, यार ?'

'यह कीट्स बड़ा तंग कर रहा है।' ललित ने झुँझलाते हुए कहा किन्तु उसने अपना ध्यान पुस्तक से हटाया नहीं।

'छोड़ो, यार,' सद्दीक पलंग पर लेटते हुए बोला, 'आज तो मूड ही नहीं है।' किन्तु ललित उसी प्रकार अपनी पुस्तक से चिपटा रहा। वह 'ऑफ मैलंकली' तैयार कर रहा था।

सद्दीक जब अधिक तंग करने लगा तो ललित को अपनी पुस्तक छोड़नी पड़ी और वह भी कुर्सी छोड़कर पलंग पर आ गया।

सद्दीक ने ललित से पहला प्रश्न वही किया जो वह प्रायः किया करता था—'यार, ललित, तुमने कभी किसी से प्रेम किया या नहीं ?'

ललित इस प्रश्न पर सदैव चुप रहा। वह केवल मुस्करा कर टरका देता। आज भी उसने वैसा ही किया।

सद्दीक ने अपनी कहानियाँ कहनी शुरू कर दीं। उसने कई कमला, चपला, विमला, निर्मला की कहानियाँ कह डालीं।

सद्दीक और ललित एम. ए. के छात्र थे। वे दो वर्ष से इसी कॉलेज में एक ही कक्षा में पढ़ते थे और इसी मकान में एक ही कमरे में रहते थे। सद्दीक जाति से मुसलमान था, किन्तु साम्प्रदायिक संकीर्णता से कोसों दूर। ललित पंजाब का क्षत्रिय हिन्दू, किन्तु भावनाओं से अति उदार। इसीलिए दोनों की अधिक पटती थी। एक थाली में खाना, एक गिलास से पीना, और क्या ? यही उदारता के लक्षण होते हैं। और ये उन दोनों में थे। सद्दीक ने अंग्रेजी विषय इसलिए चुना कि उसको उसमें रुचि थी, ललित का दृष्टिकोण

अपने भविष्य को सुधारना था। सद्दीक की अन्य रुचियाँ भी भिन्न थीं। वह अच्छा गायक था और संगीत की गोष्ठियों में भी सम्मिलित होता था, किन्तु ललित को इस प्रकार की कोई रुचि नहीं थी। वह तो अपने पलंग का राजा था। पुस्तकें उसको चारोंओर घेरे रहती थी, फिर भी साहित्य के बलिष्ठ पहलवान उसके लिए भय के प्रतीक थे, सद्दीक उनके निकट न रह कर भी निकट था।

सद्दीक और ललित दोनो ही दोपहर को साथ आ गए थे। आते ही सद्दीक ने अपने नौकर को आवाज दी—'अनूपा'

अनूपा रसोई में बैठा था। आवाज के साथ ही हाजिर हो गया। सद्दीक ने आदेश निकाला—'चाय बनाओ, अनूपा फस्ट क्लास !'

अनूपा चाय में जुट गया। दोनो मित्र पढ़ने के सम्बन्ध में योजना बनाने लगे। सद्दीक ने प्रस्ताव रक्खा—'आज तो मिल्टन' के 'पैराडाइज लॉस्ट' को रगड़ कर फेंक देना है, क्यों ललित ?'

ललित तो पहले से ही तैयार था। उसने तो इस पुस्तक को पहले से ही तैयार कर रखा था। सद्दीक के साथ पुनरावृत्ति का अवसर मिल जायेगा। उसने मिल्टन पर प्रोफेसर के दिए हुए 'नोट्स' निकाल लिए और साथ में पुस्तक भी। सद्दीक भी पूरा 'मूड' बनाकर बैठ गया।

सद्दीक मिल्टन की पुस्तक देखकर एक पंक्ति कह गया—'यार ललित, बेचारा मिल्टन भी वास्तव में सहानुभूति का पात्र है। इस नारी ने उसे भी धोखा दिया। नारी विश्वसनीय तो नहीं है, मित्र।' इतना कहकर उसने अपना पुराना प्रश्न दोहरा दिया—'ललित, क्या तुमने कभी किसी से प्रेम नहीं किया ?'

ललित के चेहरे पर विषाद की हल्की-हल्की रेखायें उभर आईं। वह मौन रहा। उसने फिर टालने का प्रयत्न किया। इतने में अनूपा चाय लेकर आ गया। चाय की घूँट लेकर सद्दीक ने अभी-अभी सम्पर्क में आई हुई अनिता का चित्रण प्रारम्भ कर दिया। वह विगत संगीत-गोष्ठी के बाद ही तो उससे परिचित हुई थी। वह उसके घर भी जाने लगा था। उसने उसे अपने दो-तीन गीत भी सुनाये थे। सद्दीक ने उसके सौन्दर्य का वर्णन शुरू कर दिया। ललित सुनता रहा।

चाय समाप्त हो गई। सद्दीक मिल्टन पर दिये गए नोट्स पढ़ने लगा। ललित ने 'पैराडाइज लॉस्ट' की पुस्तक उठाली। किन्तु सद्दीक टिक नहीं सका। वह तुरन्त खड़ा हो गया। 'पढ़ना नहीं क्या ?' ललित ने पूछा।

'यार, अनिता याद आ गई।' सद्दीक ने कहा,' अभी आ जाता हूँ।' कहकर सद्दीक ने अपनी साइकिल उठाई और चल पड़ा।

ललित सद्दीक के सम्बन्ध में सोचता रहा। वह कुछ दिन पहले सौदामिनी की चर्चा करता था। उसका फोटो भी लाया था। अपने 'एल्बम' में उसे स्थान भी दिया था। उसकी ओर देखकर शैले और कीट्स की पंक्तियाँ भी दोहराया करता था। और अब अनिता.......। सौदामिनी के स्थान पर अब आ गई। सौदामिनी के पहले भी वह किसी की चर्चा किया करता था। ललित ने कुछ समय तक उसका नाम भी याद करने का प्रयत्न किया था, उसकी धुँधली स्मृति में वह नाम कहीं लुप्त हो गया था। किन्तु ललित के सामने तो एक ही तो नाम था कई वर्षों से। उसने उसे याद किया और उसके साथ जुड़ी हुई कई स्मृतियाँ ही शेष रह गई थीं उसके जीवन में, जिन्हें वह घोल-घोलकर पीता रहता और उससे एक अनूठा रस मिलता। भोला-भाला था उसका चेहरा, उसने फिर याद किया। किन्तु अब, अब तो वह विवाहित है। एक सैनिक के साथ उसका सामाजिक सम्बन्ध जुड़ा हुआ है, हार्दिक नहीं, उसे तो ऐसा विश्वास है। वह पिछले दिनों में ही तो उससे मिलकर आया था। उसने कहा भी था—'ललित, भूल जाओ मुझे सदा के लिए।'

उसने भी कहा था—'मैं भूल नहीं सकता।'

'प्रयास करो।' वह बोली थी।

'प्रयास करता हूँ।' उसने भी कहा था।

और फिर उसकी आँखों से आँसू की मोटी-मोटी बूँदें आ गिरी थीं और फिर ढेर-सा अवसाद का कुहरा उस कमरे में आ घिरा था। वह उठकर आ गया था। वह नहीं भूल सकेगा उसे। एक ही नाम, प्यारा नाम, केवल दो अक्षरों का नाम—श्यामा।

उसने शेक्सपियर का प्रसिद्ध नाटक 'ओथेलो' उठा लिया। बेचारा 'ओथेलो !'

उसने 'ओथेलो' के दो चार पृष्ठ पढ़ डाले। सद्दीक घूमकर आ गया। सद्दीक के ओठों पर स्मिति खिल रही थी ! आते ही कहा उसने — ललित, भई अनिता तो लाखों में एक है। क्या स्वर मिला है उसे ? और उसने बैठे हुए ललित को बाँहों में भर लिया।

'क्या मिल गया आज ?'' ललित ने उत्सुकता से पूछा। 'तुम क्या जानो यार, प्रेम को ?' सद्दीक का उत्तर था, 'ईश्वर ने तुम्हें अच्छी शक्ल-सूरत

दी है। कोई भी छोकरी तुम्हारे इस चेहरे पर मर सकती है, किन्तु तुमने तो कुछ नहीं किया, यार।' इतना कहकर सद्दीक ने ललित को छोड़ दिया।

ललित ने तुरन्त ही सद्दीक को आने वाली परीक्षा की याद दिला दी, किन्तु सद्दीक ने निश्चित होकर कहा, 'क्यों चिन्ता करते हो, मित्र ? अभी तो, पढ़ने बैठ जाते हैं, किन्तु पहले खाना खा लें। और उसने अनूपा को खाना खिलाने को कहा।

दोनों मित्रों ने खाना खा लिया। उनके कार्यक्रम के अनुसार 'बेकन' को पढ़ना था। ललित ने पुस्तकें मेज पर ला रक्खी। दोनों ने पढना चालू किया। थोड़ी ही देर में सद्दीक को नींद ने दवाना शुरू कर दिया। सद्दीक ने खूँटी तान ली। ललित पढ़ता रहा।

शरद्-अवकाश के उपलक्ष मे कॉलेज बन्द हो गया। दोनों मित्र कुछ समय के लिए विछुड़ गये थे। सद्दीक जयपुर चला गया। वहाँ कोई संगीत का कार्यक्रम था। ललित दिल्ली चला गया।

दस दिन के बाद ही कॉलेज खुला और दोनो मित्र फिर आ मिले। सद्दीक एक नये नाम के साथ था—'थोड़ी साँवली सूरत, मृगनयनी, मृदुभाषिणी।' अनिता की तस्वीर उसके दिमाग के एल्बम से निकल चुकी थी। उसका नया नाम था—'मालती'। सद्दीक उसी के गीत गाने लगा। उसकी विशेषता भी बतायी। वह स्वतन्त्रता-प्रेमी है। खुली बोलती है, खुला विचरण करती है, वातायन की तरह खुली।

किन्तु ललित इस बार एक नया संदेश लेकर आया था, श्यामा का। उसने सद्दीक के सामने अपना सारा रहस्य खोलकर रख दिया। इसका एक कारण था, ललित ने बताया—'मेरी श्यामा अपने पति को तलाक देने को तैयार है। उसने मुझे विश्वास दिलाया है। मैं उससे मिला था।'

ललित ने उसके सौन्दर्य का वर्णन करते हुआ बताया—'सौ बसन्त का लावण्य है उसमें और सौ वसन्त का सौरभ।'

सद्दीक यह सब कुछ सुनकर नाच उठा था। उसने संगीत का माधुर्य बिखेर दिया। सद्दीक ने प्रस्ताव रक्खा—'मैं जाकर उसकी अन्तिम तिथि ले आऊँ।'

'ठीक है।' ललित भी सहमत हो गया।

दोनों मित्रों ने एक भूमिका बनाई। एक पत्र लिखा जाना तय हुआ। ललित ने भी साथ जाने का निर्णय लिया।

सद्दीक ने पत्र तैयार करने में तीन दिन लगाए। प्रेम के सम्बन्ध मे

अंग्रेजी, हिन्दी, उर्दू के विभिन्न कवियों और लेखकों की पंक्तियाँ उद्धृत कीं गईं। फिर ललित ने सुन्दर कागज पर सुन्दर लिखावट में उसकी प्रतिलिपि तैयार की।

दोनों का दिल्ली प्रस्थान ! दिल्ली पहुँचते ही एक योजना बनी। केवल सद्दीक ही श्यामा के घर उसके पति की अनुपस्थिति में जायेगा। ललित चाँदनी चौक में सद्दीक के आने की प्रतीक्षा करेगा।

'खट्, खट्, खट्' सद्दीक ने श्यामा के द्वार पर दस्तक दिए। भीतर से एक महीन आवाज–'कौन है ?'

सद्दीक का हृदय धक्-धक् धड़क रहा था। सद्दीक ने साहस बटोर कर कहा–'खोलिए तो !'

द्वार खुल गया। श्यामा सामने खड़ी थी। ललित ने इसका ठीक चित्र प्रस्तुत किया था। सद्दीक के काल्पनिक चित्र के समानान्तर ही वह खड़ी थी।

श्यामा ने पूछा––'कहिए।'

'मैं दो बात करना चाहता हूँ आपसे।' सद्दीक ने बताया।

'आइये,' कहकर श्यामा ने बैठक में सोफे पर स्थान दे दिया और उसके सामने बैठ गई।

सद्दीक ने दस पृष्ठ का प्रेम-पत्र श्यामा के सामने रख दिया। 'क्या है यह ?' श्यामा ने उन कागजों को इधर-उधर करते हुए पूछा।

'ललित का पत्र,' सद्दीक का उत्तर था।

सद्दीक ने श्यामा के चेहरे को पढ़ना शुरू किया। एक-एक क्षण के बाद वह बदल रहा था। वह तो अभी तक मौन थी। उस पत्र को भी पढ़ा नहीं। उसके चेहरे पर केवल विभिन्न प्रकार की रेखायें दौड़ रही थीं जिनको समझना आसान नहीं था। उसके हाथ काँपने लग गये थे। एकदम कुछ पसीने की बूँदें उसके माथे पर झलकने लगीं। झटके से उसने उस पुलिन्दे को उठाया और मेज की एक दराज में फेंक दिया। यह घटना कुछ ही क्षणों में घटित हो गई। अब वह कुछ सुनने और सुनाने की स्थिति में आ गई थी जैसे कि एक तूफान आया और निकल गया।

उसने अब पूछा, 'क्या चाहता है, ललित ?'

'आपसे बात करके गया है ?' सद्दीक ने कहा।

'क्या बातचीत ? श्यामा ने पूछा जैसे कि वह बिल्कुल अनजान हो।

'तलाक की।' सद्दीक ने निर्भीक होकर कह डाला।

श्यामा का शरीर तन गया। उसकी गोल-गोल आँखें उभर आईं। । में कम्पन पैदा हो गया। हरी धोती के आँचल ने वक्षस्थल को खुलाकर

दिया। उरोजों की नोकें तीखी हो गईं। गोरे कपोल एकदम रक्तिम हो गए जैसे सद्दीक ने जंगल में सोई सिंहनी को जगा दिया हो।

सद्दीक भयभीत हो गया। श्यामा ने गरज करके कहा—'आप पढ़े-लिखे हैं। ललित भी पढ़ा लिखा है। आप दोनों मूर्ख हैं। मैं अपने पति को तलाक देना चाहती हूँ, शर्म नहीं आती आपको यह बात कहते हुए।' इतना कहते ही वह खड़ी हो गई। उसने दराज से दस पृष्ठों का पूरा पत्र निकाला और सद्दीक के मुँह पर दे मारा—'ले जाइये और अभी निकल जाइये यहाँ से।'

सद्दीक के होठों पर सील लग गई। वह तुरन्त खड़ा होकर चलने लगा। वह घर से निकल कर थोड़ा आगे बढ़ा ही था कि श्यामा ने उसे फिर पुकारा—'सुनिए।'

सद्दीक साहस करके फिर पीछे आया। उस समय उसने श्यामा की आँखों में झलकते हुए आँसू देखे। आँसुओं ने लुढ़क कर कृत्रिम सफेदी के बीच में-से एक रेखा बना ली थी। वह केवल इतना ही कह सकी—'वे ललित को अच्छी तरह जानते हैं और पहचानते भी हैं। उससे कह देना कि वह कभी मेरे घर के आस-पास भी न आए। उन्होंने देख लिया तो ……उनके गले में हरदम पिस्तौल लटकी रहती है।' इतना कहकर उसने अपने आँचल से आँखें पोंछ डाली और द्वारा बन्द हो गया।

दो तोला अफ़ीम

●

जी. वी. आजाद

ओफ़—हो, नांनसेंस यहां भी सो रहा है।

मैं कहती हूँ यह रावण का भाई नहीं रावण का बाप है। सुबह-शाम, दिन-रात जिस समय देखो, सोता रहता है। चाहे बबर्चीखाना हो या बैठक, इसे सोने में कहीं रुकावट नहीं होती। कैसा मनहूस है न जाने ? इसने तो मानो सोने ही की नौकरी करली है। रामा ! ओ रामा !!

हड़बड़ा कर भय-विस्मित नेत्रों से पीछे खड़ी हिन्दुस्तानी मेमसाहब की ओर देखते हुए रामा ने कहा "जी मेमसाहब," और बिना किसी उत्तर की प्रतीक्षा किये हाथ के तौलिये को यंत्रवत् चीनी की प्लेटों पर घुमाना प्रारम्भ कर दिया।

मेमसाहब की मुद्रा क्रोधपूर्ण अवश्य थी किन्तु स्वर ऊँचा नहीं था। वे बोलीं, "मैं कहती हूँ तुम आदमी हो या गधे ? कितनी बार कहा कि काम के समय न सोया करो किन्तु तुम हो कि आदत से बाज नहीं आते। अरे ! बर्तन मल रहे हो या सो रहे हो ?"

रामा अपनी मालकिन के स्वभाव को खूब पहिचानता था। आश्वस्त होते हुए बोला—"जी मेमसाहब बर्तन मल रहा हूँ। हुक्म करिये, क्या साहब ने याद फरमाया है ?"

"साहब ने नहीं मेमसाहब ने—बर्तन जल्दी मल लो तो आकर मेरे कमरे को जरा ठीक कर दो। शाम को कुछ भले आदमी चा पर आने को हैं, समझे ? अभ्यस्त गर्दन को हिला रामा ने कहा, 'जी'।

खाक 'जी' मेमसाहब ने तनिक खिसियाते स्वर में कहा अभी तो पहाड़ जितने बर्तन साफ करने को रखे हैं कब ये खत्म होंगे और कब तुम कमरा ठीक करोगे ? ऊँह ! नाक को वक्र करते हुए मेमसाहब गोरी एड़ियों की धुरी थोड़ी-सी घूमी और बिना दृष्टि घुमाये ही कहा, "जरा जल्दी करना.....।"

कार्यरत रामा ने मुक्त-वायु में क्षीणध्वनि को प्रसारित कर दिया, 'जी'।

"जी, जी, बेवकूफ कहीं का," कहते हुए मेमसाहब पोर्च की ओर कर बगीचे में निकल गई और रामा पुनः श्वेत चीनी के बर्तनों पर गीला मलीन तौलिया फेर-फेरकर सफाई करने में जुट गया। सुनहरे फूल-पत्तो उन चीनी के बर्तनों को वह ऐसी सावधानी से साफ करता जैसे कोमल, हाथों पर से सूखी मेंहदी को छुड़ा रहा हो। और इस प्रकार उसे उन चीनी के बर्तनो को साफ करने में पर्याप्त समय लगता। बेचारा रामा ज कार्य करता बड़ी लगन और तत्परता से करता। साहब के काम में किसं प्रकार की अस्वच्छता नहीं रखता—अधूरा काम नहीं छोड़ता और जहां होता कोई भूल भी नहीं करता। बस, उस बेचारे की एक ही भूल है कि नींद आती है—बहुत नींद आती है। अलसाया शरीर और अंगड़ाइयाँ लेते पैर नींद के बंधन में स्वतः बँध जाते हैं। नींद लेने के लिये उसे परिश्रम करना पड़ता-नींद तो उसे ऐसे आती है जैसे बिना बुलाये मौत। यह भी कि नींद लेने का उसे कोई शौक हो—वह बहुत चाहता है, उसे नींद न *साहब के बँगले पर वह सारा कार्य बड़ी सतर्कता से करे किन्तु वह विवश* बँगले पर काम की कमी नहीं है परन्तु वह काम से नहीं घबराता—व केवल साहब की नाक पर रखे गुस्से से डरता है। न जाने कब साहब पड़ें ? रामदयाल को मेमसाहब से उतना भय नहीं है। वह जानता मेमसाहब के पास एक शान्त और करुण हृदय है। सच तो यह है कि साह इतने क्रोधी और हठी होने पर भी मेमसाहब रामदयाल के प्रति सहानुभूति व्यवहार रखती हैं जिससे रामदयाल को मन ही मन उनके प्रति श्रद्धा है। मेमसाहब की इस सोहार्दता का एक कारण और भी है क्योंकि वह ज है कि रामदयाल सवेरे आठ बजे आता है और रात को आठ बजे जात बीच में अवकाश मिला तो घण्टे-आध घण्टे को अपनी पागल पत्नी को आता है।

रामदयाल के और है ही कौन ? दो बच्चे हुए थे। एक पैदा हो वर्ष भर बाद ही अपने दादा-दादी के साथ देहात चला गया। क्योंकि द दादी पागल बहू के पास रहना पसन्द नहीं करते थे। दूसरा तो रामदयाल की पत्नी को विक्षिप्तावस्था में ही प्राप्त हुआ था। पित स्वामि-भक्ति पूर्णवृत्ति तथा माता की विक्षिप्तावस्था के कारण नन्हाँ ब *निमोनिया का शिकार होकर रामदयाल को चिन्ता-मुक्त कर गया।* म वैसे ही दीन-दुनिया से चिन्ता-मुक्त थी ही। उसे न अपनी देह की सुध और न भोजन की। न अपना, न पराया। पागलों की भाँति चीखती, घ निकल जाती—कहीं बैठ जाती। कभी घण्टों हँसा करती तो कभी वि

से निवृत्त कराकर और कुछ खिला-पिलाकर उसे परमात्मा की दया पर छोड़ बँगले पर चल देता। रात भर पत्नी चीखती-चिंघाड़ती, किवाड़ खोलकर भागती, बर्तन गिराती-तोड़ती-फेंकती और बेचारा रामदयाल, विवशता का पिण्ड सब कुछ देखता, ठीक करता, उसे सुलाने की चेष्टा करता, दरवाजा बन्द कर स्वयं सोना चाहता किन्तु रात की हर घड़ी का घण्टा मानो उसे सम्बोधित करके ही निकलता। रात भर रामदयाल घण्टों की प्रत्येक ध्वनि को मन ही मन दोहराता और जागते-जागते रात बिता देता। कई दिनों रामदयाल की यही हालत रही। रात की निद्रा पूरी न होने के कारण दिन में बँगले पर काम करते-करते भी उसे नींद घर दबाती और ज्यों ही मौका देखता वह ऊँघ लेता, सो लेता। किन्तु अब वह जागने का आदी हो गया है। नींद उसे अब उतना नहीं सताती जितनी मनुष्य को इच्छायें।

उस दिन रामदयाल को अपेक्षाकृत जल्दी ही बँगले पर जाना था। अतः वह नियमित कार्य से मुक्त होकर निकलने ही को था कि पागल पत्नी ने चूल्हा पोतने का बर्तन उठाकर उस पर फेंक दिया और फिर ठट्ठामारकर ज्यों ही आगे बढ़ी स्वयं उस चिकने पानी में फिसल कर गिर पड़ी। गिरने के साथ ही दरवाजे के किवाड़ से उसका सिर जा टकराया और खून बह निकला। नेक पति रामदयाल ने पत्नी को उठाकर कमरे में लिटाया, कपड़ा जलाकर उसके घाव में भरा और उसे सुलाकर बँगले को चल दिया। आज उसके मन में एक भयंकर अंधड़ चल रहा था उसके विश्वास और आस्थायें नीवों के सहारे हिलने लगी थीं। उसने अनुभव किया मानो विद्रोही भावनाओं को सत्ता का संरक्षण प्राप्त हो गया हो। उसके मुख पर तूफान के पूर्व की-सी शान्ति थी। बँगले पर पहुँचकर जिस अनिष्ट से वह बचना चाहता था उसीसे उसकी प्रथम भेंट हुई। साहब ने उसे देखते ही भारी और कर्कश आवाज में पुकारा, रामदयाल!

"जी"

अब आये हो? तुम बिल्कुल नामाकूल हो!

"जी"

तुम लापरवाह हो, कामचोर हो!

"जी"

चले जाओ, निकल जाओ यहाँ से ब्लडी ब्लास्टर

"जी"

"मूर्ख कमीना नौकरी करने आया है!" रामदयाल को ऐसे मुहावरे सुनने का पूर्ण अभ्यास था। इस बार उसने कोई उत्तर नहीं दिया और

[illegible] और [illegible] की लड़ाई में छूट
[illegible] मानो साहब ने
[illegible] खड़ी
[illegible] गाँव की
[illegible] प्रताड़ना के
[illegible] दिया गया
[illegible] से आये। आज
[illegible] और इसलिए उन्हें समय
[illegible] इसीलिये वह
[illegible] में जुटा
[illegible] किन्तु वह अपनी विवशता की
[illegible] किसे सुनाता कि उसे देर क्यों हुई? वह किसे कहता है कि अपनी
[illegible] पत्नी के प्यार को साहब के कुत्ते पर न्यौछावर नहीं कर सकता।

रामदयाल का मन वितृष्णा से भर गया। उसे लगा, दो पैरों मेंसे एक में गैंगरीन होगया है, यदि उसे शीघ्र कटवाया नहीं गया तो सारा शरीर सड़कर नष्ट हो जायेगा। वह दिन भर इसी उधेड़बुन में लगा रहा—धड़ या पैर? धड़ के लिये पैर या पैर के लिये धड़? किन्तु कुछ भी समझ न सका वह केवल इतना ही जानता है कि धड़ में हृदय है और हृदय में ही धड़कन इसीलिये तो पत्नी के पागल होने पर भी उसे ढोते रहने का ममत्व छोड़ नहीं पाता। किन्तु आज दिन भर की घुटन के पश्चात् उसे लगा जैसे वह किसी निष्कर्ष पर पहुँच गया है। उसने अपने में एक स्फूर्ति का अनुभव किया। अपना काम जल्दी-जल्दी पूरा करना प्रारम्भ किया कि तभी मेमसाहब ने आकर कहा, "हम आज रात बड़ेसाहब के साथ शिकार देखने जायेंगे—इसलिये तुम्हें आज बँगले पर ही सोना होगा!" एक ही सांस में यह निर्देश देकर मेमसाहब लौट गईं। रामदयाल शून्य भित्ति की ओर देखते हुए अनुभव करने लगा मानो उसके मार्ग में कोई रुकावट आगई है, किन्तु दूसरे ही क्षण वह पुनः स्वस्थ होगया जैसे उसे उसका हल मिल गया हो।

[illegible] दयाल घर की ओर जाने को निकला किन्तु आज वह [illegible] न जाकर बाजार की ओर चल दिया। बाजार में कुछ [illegible] दुकान पर रुका, उसने वहाँ से कुछ लिया और चल [illegible] उसने देखा उसकी पत्नी कमरे के बीच में सोई हुई है। [illegible] अभिप्रायहीन मुख को वह निर्निमेष नेत्रों से कई पलों तक [illegible] किसी प्रश्नसूचक चिह्न को देखकर प्रकट किये जाने वाले

हल के औचित्य पर पुनर्विचार कर रहा हो। धीरे-धीरे उसके हाथ जेब की ओर बढ़े, एक पुड़िया जेब से बाहर निकाली, उसने उसे पानी में घोला और पत्नी के मुख में उँगलियाँ डालकर उसे उड़ेल दिया। पत्नी जगी, आँखें खोली किन्तु बिना कोई प्रतिक्रिया प्रकट किये करवट बदल कर पुनः सो रही। उद्विग्न रामदयाल अब अधिक नही ठहर सका, उसका मन ज्ञात परिणाम से सिहर उठा और वह बँगले की ओर चल दिया।

आज रात रामदयाल ही बंगले का स्वामी था। वह आराम से सो सकता था क्योंकि यहाँ उसकी पागल पत्नी के पितूरों से वह मुक्त था। परन्तु इतनी रात गये भी रामदयाल को नींद नही आरही थी। कभी इस करवट लेटता तो कभी उस करवट। लम्बी-लम्बी जम्हाइयाँ लेता किन्तु नींद का उसकी आँखों में प्रवेश नही हो रहा था। आधी रात बीते कुछ पल के लिये ज्योंही उसकी आँख लगी वह हड़बड़ा कर जाग पड़ा। अस्फुट स्वरो मे वह कुछ कह रहा था। "ओह ! मैंने कितना बड़ा अनर्थ किया। पागल ही सही किन्तु थी तो मेरी विवाहिता पत्नी। 'दो तोला अफीम' ओह ! मैंने उसे विष दिया है, मैंने उसकी हत्या की है। अपनी पत्नी की, अपने पुत्र की ममतामयी माँ की ! ओह ईश्वर कैसे क्षमा करेगा ? अब तक तो वह मर ......"

सोचते-सोचते उसे रोमांच हो आया। उसे लगा जैसे बड़ी ऊँची मीनार से वह नीचे की ओर धकेल दिया गया हो। धरातल पर आने के पूर्व नाश और अंधकार का निराशाजनक दृश्य उसकी आँखो के सामने खिंच गया। लेकिन तभी उसे लगा जैसे बुझी ट्यूब लाइट मे प्रकाश की रेखा एकदम घनीभूत होगई हो—"रोज-रोज की झंझट से मुक्त हो जाऊँगा. मोहल्लेवालों की शिकायतें, नौकरी का खतरा, नौकरी है तो पत्नी की सेवा भी किन्तु यदि नौकरी ही चली गई तो ... . " सोचते-सोचते उसे अनुभव हुआ जैसे उसके कार्य में संगति है, वह जो कुछ कर रहा है, ठीक कर रहा है, उसमे औचित्य है। पहाड़ जैसा जीवन और फौलाद-सा बोझ जर्जर जूए पर कैसे और कब तक खींच सकूँगा ? लेकिन दूसरे ही क्षण उसे प्रतीत हुआ जैसे कोई अज्ञात शक्ति उसकी न्यायोचित दलील को स्वीकार करने से इन्कार कर रही है। एक भीषण द्वन्द चल रहा था। विचारो का ऊहापोह रात की शून्यता मे बढ़ती गई। शरीर और मस्तिष्क दोनों ही थककर नीरव निशा के ढलते चरणो मे लुढ़क गये।

मोटर का होर्न सुनकर रामदयाल जब चौंकता हुआ उठा तो उस समय तक सारे बँगले मे धूप फैल चुकी थी। साहब शिकार से लौट आये थे। रामदयाल अपने नियमित कार्य मे जुट गया। किन्तु आज उसका मन अस्त-

व्यस्त था। शरीर थककर चूर हो गया था, टाँगें लड़खड़ा रही थीं और अपराध का विष उसे अशक्त किये दे रहा था। उधर मेमसाहब की सदयता के कारण चाय के पश्चात् रामदयाल को घर जाने की छुट्टी मिल गई।

आज घर की ओर जाते रामदयाल का हृदय जोरों से धड़कने लगा–पैर लड़खड़ाने लगे उसका अपराधी मन निराशा और आशंकाओं से घिर आया तभी बड़ेसाहब के बबर्ची युसुफ ने उसे सम्बोधित करते हुए कहा "क्या घर जा रहे हो ?"

रामदयाल ने स्वस्थ्य होते हुए कहा, "सलाम युसुफ भाई हां, घर ही जा रहा था।" युसुफ ने फिर पूछा और कहा "तुम्हारी पागल बीबी का क्या हाल है?" रामदयाल को लगा जैसे वह रंगे हाथों पकड़ लिया गया हो। किन्तु तत्काल सम्भलते हुए उसने अपने होठों पर फीकी मुस्कराहट फैलाते हुए कहा, अब जो भी है युसुफ उसे सहन तो करना ही होगा। हां ! हां !! क्यों नहीं युसुफ ने कुटिल हँसी हँसते हुए कहा "तुम्हारी मेमसाहब भी तो ऐसे जिद्दी और बेरहम साहब को बर्दास्त करती है ना ? और उसने बात को बदलते हुए कहा–चलो, यहां तक आये हैं तो आज तुम्हारी बीबी ही को देख आयें। हां, हां, क्यों नहीं। रामदयाल ने कहने को तो कह दिया, किन्तु उसे लगा जैसे उसके किये अपराध के प्रति उसकी स्वीकृति लेने के लिये युसुफ एक सहादत बनना चाहता है–उसके पाप से उसे परिचित करना चाहता है।

रामदयाल जब घर के सामने पहुँचा तो उसका धड़कता हृदय मानो बिखरी स्वासों को बटोर रहा था। घर का दरवाजा जो बिल्कुल खुला देखा–तो उसकी स्वास ही रुक गई। उसने शीघ्रता से घर के भीतर झांका तो लगा उसकी पलकों को पक्षाघात हो गया हो उसे उसकी आंखों पर विश्वास नहीं हो रहा था। जैसे कोई स्वप्न देख रहा हो। पाँच वर्ष पुरानी गृहस्थी का साकार चित्र। वह चकित था। उसने अपनी आँखों को बारबार मला और उन्हें फाड़फाड़ कर देखने लगा लेकिन उसके मुख से आवाज नहीं निकल रही थी। सारा मकान धुला हुआ—साफ-सुथरा और व्यवस्थित। पत्नी स्वच्छ श्वेत परिधान पहिने स्निग्ध लम्बे काले अनियंत्रित बालों को कंघी से सुलझा रही थी। रामदयाल और उसके मित्र को आया देख उसने छोटा-सा घूँघट खींच लिया और उन्हें बैठने के लिये एक खाट खिसका दी।

युसुफ श्रृंगार में रत रामदयाल की पत्नी को देखकर कह उठा 'अच्छा तो ये ठाठ हैं ?' और रामदयाल वेदान्तियों की भाँति इस अप्रत्याशित प्रतिक्रिया को देख मन ही मन सोच रहा था–अफीम ! मौत !! जीवन !!!

ऋण - उऋण

●

जनकराज पारीक

आखिरी कश लेकर वसन्तु ने पीपल के तने से रगड़ कर बीड़ी बुझा दी।

तेज धूप के कारण जमीन तवे-सी तप रही थी ! आसपास की हवा गर्म होने के कारण कांपती-सी नजर आ रही थी। कभी-कभी गर्म हवा का झोंका आता और पीपल के पत्ते खड़खड़ा उठते। इस तपती दुपहरिया में वसन्तु पीपल की छाया में चारपाई बिछाए आराम कर रहा था। पास ही उसकी बैलों की जोड़ी बैठी जुगाली कर रही थी। इस संसार में वसन्तु का जीवन बिल्कुल एकाकी है ! उसका सब कुछ यही बैलों की जोड़ी है जिसे वह जी-जान से प्यार करता है। मरते समय बाप ने कहा था, "बेटा, यही मेरी सम्पत्ति है जो तुझे सौंप रहा हूँ, इन्हें मैंने उतना ही प्यार किया है, जितना तुझे। तू भी इन्हें प्यार से रखना। मेरी सम्पत्ति को बेचना मत, हाँ बेटा। इन्हें बहुत ही प्यार से रखना।" और बैलों की रस्सी वसन्तु के हाथों में थमाकर उन्होंने मृत्यु का आलिंगन कर लिया था।

पीपल वसन्तु के दादों-परदादों में-से किसी का लगाया हुआ है। बूढ़ा होकर भी पीपल इस समय पूरी जवानी पर है।

वसन्तु बैल की पीठ पर हाथ फिरा रहा था कि उसे लगा जैसे पीछे से कोई आया हो। उसने मुड़कर देखा तो देखता ही रह गया। नजरें झुकाए मेंहदी सिमटी-सी खड़ी थी।

मेंहदी गाँव की एक साधारण युवती और असाधारण सुन्दरी थी। उसका गोर वर्ण धूप के कारण अब कुछ रक्तिम-सा नजर आ रहा था, उसके पतले सुर्ख होठ मोतियों-सी सफेद दंत-पंक्तियों को ढके हुए थे। उसकी झुकी हुई आँखें कभी-कभी ऊपर उठने का असफल प्रयत्न कर रही थी। उसकी दाँयी आँख के भौंह पर काला-सा तिल, जिस पर अब से बारह साल पहले वसन्तु

अपनी तर्जनी टिका कर कहता था, "मेंहदी, तेरा यह तिल बहुत सुन्दर है री!" अब भी उतना ही सुन्दर और उतना ही बड़ा था पर अब वसन्तु उसके बड़े से तिल को नहीं छुएगा, अब वह बड़ी जो हो गई है। और वसन्तु भी अब कोई छोटा थोड़े ही है। तब तो दोनों कोई आठ-नौ साल के ही थे।

बचपन में ही वह वसन्तु के साथ खेला करती थी। वसन्तु की बातों को वह सहज ही मान लेती थी।

अभी कुछ साल पहले उसका विवाह पास वाले गाँव में हुआ। उसका पति एक अनपढ़ नवयुवक था। खेती-बाड़ी का काम करता था। देखने में साँवला किन्तु सुन्दर था। उसके परिवार में माँ के सिवाय कोई निकट सम्बन्धी नहीं था। मेंहदी अपने पति और सास से पूर्णतया सन्तुष्ट थी। कुछ समय पहले मेंहदी की सास इस दुनिया से जाती रही थी। अब मेंहदी और उसके पति को घर सूना-सूना लगने लगा। दोनों को माँ का अभाव बुरी तरह खलने लगा। चिन्ता और परिस्थितियों के कारण मेंहदी के पति को तपैदिक का रोग हो गया और इसी बारे में वसन्तु से कुछ बातें करने वह चली आई। वसन्तु को कुछ सूझ ही नहीं रहा था कि वह क्या कहे ? खुशी के मारे पागल-सा हो रहा था। सचमुच आश्चर्य और प्रसन्नता के मेल से मानव किंकर्त्तव्य-विमूढ़ हो जाता है। यही वसन्तु के साथ हुआ था, उसके मुँह से निकला, "अरी मेंहदी, तू कब आई रे ?"

मेंहदी ने गर्दन झुकाली। वसन्तु हैरान था—क्या यह वही मेंहदी है ? इतनी शर्मीली हो गई ? इसकी तो आँखें ही नहीं उठ रहीं। मेंहदी ने मंद स्वर में गर्दन झुकाए ही कहा, "कल ही आई थी, तुझ से एक बात करनी थी, इसलिये चली आई !"

"तो फिर देरी क्या करती है, कह डाल जो कुछ कहना है।" वसन्तु ने कहा, "ले, चारपाई पर बैठ पहले तो, फिर बात करना।"

मेंहदी ने उदास चेहरा ऊपर उठाकर फिर झुका लिया और हिचकिचाती-सी चारपाई पर पैताने बैठ गई !

वसन्तु ने उत्सुकता से कहा, "अरे भई, इतनी शर्म भी तो किस काम की ? उगल दे न जल्दी से।"

मेंहदी ने आँचल ठीक करते हुए कहा, "देख वसन्तु तुझे तो मालूम ही है कि इस बार दाने अच्छे नहीं हुए और फिर उन्हें जानलेवा रोग लगा हुआ है ! उनके इलाज में पैसा पानी की तरह बहा दिया ! ताल वाली जमीन बेच दी, बैलों की जोड़ी इतनी सस्ती बेची मानो मुफ्त की हों, और

भी घर की कई छोटी-मोटी चीजें बेच दी लेकिन अभी तक उनका रोग पूर
तरह नहीं गया ! अब वखारी में मुश्किल से चार-छह मास खाने लायक दान
हैं, इसीलिये मैं .. ....! देख वसन्तु, माँगना तो मुझे भी पसन्द नहीं
लेकिन उनके लिये आना पड़ा है ! कुछ रुपये पैसे की जरूरत है, अगली फसल
तक लौटा दूँगी।"

वसन्तु का मस्तिष्क एक क्षण मे ही अपनी छोटी-सी झौंपड़ी
कोने-कोने में घूम गया लेकिन उसे कहीं कोई ऐसी चीज नजर नहीं आई जिस
बेचकर वह पैसे प्राप्त कर सके। मन में तो मेंहदी की सहायता करने की
प्रबल लालसा थी लेकिन परिस्थितियों ने उसे उदास कर दिया बोला
"मेंहदी ! चाहता तो हूँ कि तेरे लिये बहुत कुछ करूँ पर कुछ नहीं कर
सकता। पिताजी के मरने के बाद मेरी हालत बहुत खराब हो गई है ""।"

वसन्तु पूरा कह भी नहीं पाया था कि मेंहदी बोल पड़ी, "तो फिर
जवाब है न ?"

"मैं मजबूर हूँ मेंहदी" वसन्तु की आवाज में करुणा थी !

बिना कुछ कहे मेहदी उठ खड़ी हुई। एक क्षण करुणाभरी दृष्टि से
वसन्तु की ओर देखा, फिर चलदी ! निराश वसन्तु जो सामने की ओर देखा
एक छोटा-सा लड़का और एक छोटी लड़की आपस मे कुछ बातें कर रहे
थे ! लड़का वसन्तु के बैलों की ओर इशारा करते हुए कह रहा था, "वह
जोड़ी मेरी है, उसे मैंने तुझसे पहले रोका है इसलिये उसका गोबर मैं
उठाऊँगा।"

लड़की तपाक से बोली, "अरे जा-जा, मैं तो कब से यहाँ बैठी हूँ और
ये आया है बड़ा गोबर उठाने वाला !"

एकाएक वसन्तु के हृदय पर एक धक्का-सा-लगा। एक टीस-सी उठी
और वह अतीत में खो गया।

वसन्तु कोई नौ साल का रहा होगा, उसकी माँ तो उसे जन्म देने के
दो साल बाद ही चल बसी थी, तीसरा साल शुरू हुए, कुछ ही दिन हुए थे कि
वसन्तु के बाप ने दूसरा विवाह कर लिया था। सौतेली माँ को वसन्तु आँखों
देखा अच्छा नहीं लगता था पर यह वसन्तु का सौभाग्य समझो या सौतेली माँ
का दुर्भाग्य कि नई माँ के कोई संतान नहीं हुई। इसी बात को लेकर उसका
वसन्तु के बाप से झगड़ा हो गया था ! वह भला बाँझ क्यों कहलाने लगी ?
गुस्से में आकर उसने भी कुँए मे छलांग लगादी थी।

हाँ ! तो वसन्तु कोई नौ साल का रहा होगा और यही आठ-नौ की

मेंहदी थी ! दोनों एक साथ गोबर उठाने जाया करते थे। घर जाकर उपले बनाते थे। इसी पीपल के नीचे बैठकर गोबर इकट्ठा करते थे। यदि वसन्तु कभी डलवा कुछ खाली ले जाता तो सौतेली माँ का गुस्सा सातवें आसमान पर होता था, और मुँह से धधकता हुआ ज्वालामुखी फूटता, "क्यों रे पाजी, छोकरों के साथ लँगड़ी टाँग खेलने लग गया था क्या ? गोबर उठाने में तो नबाब साहब को शर्म आती है। खाली डलवा ही ले आता तो क्या बुरा था ?"

वसन्तु जाता तो पीपल नीचे डलवा मेंहदी को सौंप कर खेलने में मस्त हो जाता। जब घर जाने का समय होता तो मेंहदी के पास जाकर गिड़गिड़ाता, "मेंहदी, मेरी माँ मुझे मार देगी यदि मैं घर खाली गया तो। तू मुझे आधा डलवा गोबर दे दे, कुछ इधर-उधर से उठा लूँगा तो काम चल जाएगा !' मेंहदी आँख मसलती हुई कहती, "न बाबा न, कबकी यहाँ बैठी हूँ तब इतना इकट्ठा किया है, तू तो सारा दिन मजे उड़ाता है।"

वसन्तु करुणा का अभिनय करता हुआ कहता "ना मेंहदी, तू ऐसा मत कह ! माँ मुझे मार देगी तो तेरे साथ कौन आया करेगा ? बस तू जरा-सा गोबर दे दे। बड़ा होकर तेरा सारा कर्जा उतार दूँगा।" और मेंहदी इतने पर ही राजी हो जाती, "अच्छा भई, जिद ही करता है तो भरले एक डलवा।"

मेंहदी का हृदय बहुत ही कोमल था। इसका पता वसन्तु को चल गया था इसलिये वह गिड़गिड़ाकर, आँखों में आँसू भर कर मेंहदी से हर काम करवा लेता था ! लड़ाई में मेंहदी बहुत पीछे थी। गाँव का बिल्कुल कमजोर बच्चा भी अगर उसे पीट देता तो कोई आश्चर्य की बात नहीं थी। यदि मेंहदी पर कोई हाथ उठा लेता तो बेचारी वसन्तु को ही जाकर शिकायत करती थी।

वसन्तु को अच्छी तरह याद है कि एक बार वह खेल कर डलवा लेने मेंहदी के पास गया था तो मेंहदी बैठी हुई रो रही थी वसन्तु ने उसके पास बैठते हुए पूछा था, "अरी मेंहदी ! रो क्यों रही है ? किसी ने मारा है क्या तुझे !" मेंहदी बिना कुछ कहे आँसू पोंछने लगी थी। वसन्तु ने फिर कहा था, "यूँ ही रोए चली जा रही है, बता तो सही क्या बात है ?" मेंहदी ने कहा था, "वसन्तु ! आज सुगनु ने आकर मुझ से एक डलवा गोबर माँगा तो मैंने कहा कि मैं तुझे गोबर नहीं दूँगी ! मेरे पास पहले से ही कम है जिसमें से वसन्तु को भी देना है, पर वह नहीं माना। जिद करता रहा। मैंने साफ इन्कार कर दिया तो उसने मुझे पीटा और सारा गोबर उठाकर भाग गया।" वसन्तु आग-बबूला हो गया था। मेंहदी को कोई पीटे और वह बदला न ले ?

आस्तीनें चढ़ाते हुए उसने कहा था, "मेंहदी, तू रो मत। एक बार मिलने तो दे उस सुगनु के बच्चे को।"

वसन्तु भी उस दिन खाली हाथ घर लौटा था। घर पहुँचने पर सौतेली माँ ने उसकी जो दुर्दशा की थी वह उसे आज भी याद है। दूसरे दिन उससे सुगनु को गले से पकड़ लिया था। अभी दो-तीन हाथ ही जमाए थे कि मेंहदी ने आकर छुड़ा दिया, "वसन्तु। बस अब और मत मार, छोड़ दे बेचारे को!" और जब वसन्तु मेंहदी से गोबर का डलवा भरवाकर घर पहुँचा तो सौतेली माँ की बाछें खिल गई थी, शायद जीवन में पहली बार ही उसने प्रसन्न हो वसन्तु को इकन्नी दी थी पर वह इकन्नी मेंहदी के पसीने की कमाई थी जिसकी वसन्तु ने अकेले ही चौपाल में बैठकर चाट खाई थी।

वसन्तु के विचारों की श्रृंखला टूटी, उसने सामने की ओर देखा, छोटा लड़का अभी तक जिद कर रहा था, "तू चाहे न मान, पर वह जोड़ी तो मैंने ही रोकी है, उसका गोबर भी मैं ही उठाऊँगा।" लड़की ने 'तड़ाक-तड़ाक' दो थप्पड़ लड़के के गालों पर जमा दिये, "बड़ा आया है गोबर उठाने वाला। कह दिया कि जोड़ी मेरी रोकी हुई है, गोबर भी मैं ही उठाऊँगी फिर भी जिद ही किये जा रहा है!" लड़का चुपचाप डलवा उठाकर चल दिया।

वसन्तु का दिल भर आया वह सोचने लगा यदि मेंहदी भी मेरे साथ ऐसा ही वर्ताव करती, तो? नहीं! नहीं!! मेंहदी देवी है, मेरे ऊपर उसका बहुत कर्जा है, मुझे उसका कर्जा चुकाना होगा! एकाएक हवा का झौंका आया, पीपल के पत्ते खड़खड़ा उठे, मानो वसन्तु पर हँस रहे हों कि कैसा चुकाया है उसने मेंहदी का कर्जा? बेचारी न जाने क्या-क्या आशाएँ लेकर आई थी। सबको उसने एक बारगी ही कुचल दिया।

वसन्तु का अन्तःकरण चीख उठा। वह अपने आपको कोसने लगा। एकाएक वह चिल्लाया, "मैं उसके सुहाग की रक्षा अवश्य करूँगा! यह मेरा कर्त्तव्य है! मैं उस देवी की सहायता अवश्य करूँगा। उसका मुझ पर कर्जा है। पर कैसे? पैसे कहाँ से लाऊँ ......?"

उसके मुँह पर निराशा के चिह्न छा गये। फिर एकाएक वह खुशी के मारे ठहाका मार कर हँस पड़ा। मुस्कराहट की एक लम्बी रेखा उसके होठों से लेकर आँखों तक फैल गई। उसकी नजर शानदार बैलों की जोड़ी पर पड़ी। लपक कर उसने बैलों की रस्सी पकड़ली और मेंहदी के ऋण से उऋण होने के लिये, बाप की सम्पत्ति को बेचने वह बाजार की ओर चल पड़ा।

सन्निवेश

डायरी के पृष्ठ

सुखदेव रामावत

कुल्लु व मनाली से हमारी एन. सी. सी. की टीम लौटकर आयी। पहले हमारा प्रोग्राम ९ तारीख से १२ तक था, किन्तु कुछ कारण विशेष से १३ से १५ रखा गया। हम १०२ कैडेट आफीसर १३ तारीख की सुबह मिलिट्री-ट्रकों से मण्डी से मनाली के लिए रवाना हुए। मनाली मण्डी से ६८ मील व कुल्लु से २५ मील है। पूरी सड़क व्यास नदी के किनारे बड़ी मेहनत व होशियारी से बनाई गयी है। सड़क पर यातायात केवल एक ही तरफ हो सकता है (One Way Traffic) १३ मील पर पण्डोह का मासूली पहाड़ी नगर आता है। इससे पूर्व हमारी सड़क नदी के दाहिने किनारे पर थी अब एक झूलते हुए पुल को पार करके नदी के बाँये किनारे पर आ गयी है।

यह पुल १९२३ में बनाया गया था। सवारियों को पुल पर पार करने के पूर्व ही उतरना पड़ता है और खाली गाड़ी पुल पार करती है। आठ बजे सुबह के रवाना हुए हम नौ बजे से पूर्व वहाँ पहुँच गये थे। गाड़ियों की कतार लगी हुई थी ९-३० पर आगे बढ़ने का संकेत मिला और हम लोग अपने-अपने ट्रकों पर सवार हुए। चारों ओर N.C.C. ही नजर आ रही थी–दो ही मिनट में सिमट कर एक हो गये और आगे बढ़ चले। हाँ, यहाँ की एक विशेषता यह है कि इसी स्थान पर एक बहुत बड़ा बाँध बन रहा है। बाँध में व्यास का पानी रोककर एक सुरंग (करीब १२ मील लम्बी) द्वारा उस पानी को सतलज में डाला जायगा। योजना पर कार्य चालू है। करीब १०,००० व्यक्ति इन योजना को पूर्ण करने में लगे हुए हैं। पण्डोह से दूसरा स्थान ठहराव का औट (Aut) आया।

यह पण्डोह से १२ मील अर्थात् मंडी से २५ मील दूर है। यहाँ रुकते ही हमारी निगाह फल बेचने वालों की दुकान पर गई, जहाँ भीड़ लगी हुई थी। खुमानी ३५ से ५० पै. किलो के हिसाब से बिक रही थी। फौजियों ने जी भर कर खुमानियाँ खाईं। एक न.पै. की एक और बढ़िया से बढ़िया एक

बड़े आँवले के बराबर १।। न.पै. के हिसाब से बिक रही थी। ५०० ग्राम खुमानिया २५ न. पै. की मैंने भी खरीदीं और खाकर चित्त बड़ा प्रसन्न हुआ। यह भी एक छोटा-सा पहाड़ी गाँव है। इस २५ मील के हरे-भरे इलाके में चारोंओर पहाड़ी ढलानों पर पहाड़ी झोपड़े, पहाड़ी मकान व जव के खेत नजर आ रहे थे। कहीं-कहीं नदी घाटी ५ मील तक चौड़ी है और कहीं ५०० गज के अन्दर सिकुड़ कर रह गयी है। खुमानी जंगलों में अपने यहाँ के बेरों की तरह लगती है, लेकिन उसके सुधरे हुए रूप मे आजकल पहाड़ी किसानों ने अपने छोटे-छोटे पहाड़ी खेतो में खुमानी के पेड़ लगाने शुरू कर दिये हैं। यह मौसम खुमानी की ही है। अखरोट, आडू व सेब का मौसम जुलाई के बाद आता है।

मुझे मोटर की सफर बड़ी कष्टदायक होती है। थोड़ा-सा भी चलने के बाद-पैट्रोल या डिजल की गैस से मेरा पेट खराब हो जाता है। पठानकोट से मंडी आते वक्त १३२ मील मे तो मेरी हालत बड़ी ही खराब हो गयी थी। ओट तक मुझे कुछ भी महसूस नहीं हुआ था। यहाँ मैंने इलायची व लौंग उल्टियों से बचने के लिए खरीद लिये थे, किन्तु कुल्लू पहुँचते-पहुँचते खुमानी व उसके पूर्व खाया पीया सब निकल गया।

खाया-पीया सब निकल जरूर गया किन्तु जी हल्का हो गया। कुल्लु हमारा तीन घण्टे का ठहराव था।

कुल्लु एक बहुत अच्छा पहाड़ी शहर है। यह कुल्लु जिले का Dist. H. Q. है। कुछ समय पूर्व यह इलाका भी कांगड़ा जिले का एक भाग था। स्वतन्त्र रूप से और शीघ्र विकास करने के लिए कांगड़ा जिले को अब तीन स्वतन्त्र जिलों में बाँट दिया गया है। (१) कांगड़ा, (२) कुल्लु व (३) लाहुल स्पिति। यहाँ सब प्रकार की रौनक नजर आती है। पंजाबी युवक व युवतियाँ सुन्दर वस्त्रों में दृष्टिगोचर होते हैं। बीच-बीच में पहाड़ी किशोरियाँ तीन-तीन चार-चार के गिरोह में सिर पर लाल रूमाल बाँधे फौजियों के लाल-लाल वीहिकल्स को विनोदपूर्ण निगाहों से देखती, मुस्कराती निकल जातीं। यहाँ ऊनी वस्त्रों व पहाड़ी फलों की बड़ी-बड़ी दुकानें हैं। अखरोट, नाशपाती, सेव, खुमानी, आडू आदि फल बहुतायत से पठानकोट व दिल्ली को रवाना किये जाते हैं। ऊनी व रेशमी-ऊनी वस्त्रों की दुकानदार काफी अच्छा मुनाफा लेकर यात्रियों को बेचने में सफल हो जाते हैं।

यहाँ व्यास की घाटी बहुत चौड़ी हो जाती है। दूर पहाड़ी ढालों पर नजर जाने पर हरे-भरे पेड़ों के बीच पहाड़ी बागवानों के बँगले व बस्तियाँ

नजर आती हैं। नाश्ता करने के पश्चात् व कुल्लु की सड़कों पर काफी चहल-कदमी करने के बाद हमारा काफिला मनाली के लिये रवाना हुआ।

खुली ट्रक से चारोंओर का मनोहर दृश्य नेत्रों को तृप्त कर रहा था। बीचबीच में तिब्बती शरणार्थी डेरा डाले पड़े थे। बड़ी भद्दी व गन्दी वेशभूषा में नजर आने वाले इन लोगों के चेहरों पर मुस्कराहट विराजमान थी। हमारे फौजी ट्रकों को देखकर ये लोग बड़े उल्लास से हाथ हिलाने लगे–शायद समझते हों कि उन वदमाश चीनियों से ये मोर्चा लेने जा रहे हैं जिन्होंने उन्हें वेघरवार करके उनके प्यारे वतन से अलग कर दिया था। हमारे ट्रक नगर पहुँचे यहाँ करीव २० मिनट का ठहराव था। जाते वक्त तो सिवाय वस स्टैण्ड के चारोंओर उड़ती निगाह डालने के सिवाय हम कुछ न देख सके। किन्तु एक दिन मनाली से विशेष प्रोग्राम बनाकर हमारा दल इस पहाड़ी गांव को देखने आया। नगर का मुख्य गांव बस स्टेशन से करीब दो मील की कड़ी चढ़ाई चढ़कर पहुँचना पड़ता है। चढ़ाई वास्तव में बहुत कठोर, एकदम सीधी व जोड़ों को हिलाने वाली है। जिस समय हम उस चढ़ाई पर चढ़ रहे थे—हमने सोचा हमें किसी पहाड़ी चोटी पर दूर-दूर के दृश्य देखने ले जाया जा रहा है किन्तु करीब डेढ़ घण्टे की चढ़ाई के बाद हमारे आश्चर्य का ठिकाना न रहा, जब हमने इतनी ऊँचाई पर एक सुन्दर गाँव बसा पाया।

बहुत बड़े-बड़े मैदानों की तरह लहलाते हुए पहाड़ी खेत जब, गेहूँ व आलू के लम्बे चौड़े फलों के बगीचे व सुन्दर पहाड़ी मकान। किसी समय कुल्लु के राजा गर्मियों में यहाँ आकर रहा करते थे। उनकी एक लकड़ी की तीन मंजिल की कोठी उस अतीत की याद दिलाती है। आजकल यह कोठी किराये के लिये खाली है और सर्वसाधारण मामूली किराया देकर उसका उपयोग कर सकता है। यहाँ हवा बड़े जोरों से चल रही थी—बादल कोठी के कमरों में घुसकर भीतरी वस्तुओं को नम बना रहे थे। चढ़ाई चढ़ते-चढ़ते हमारे सारे वस्त्र पसीने से तरबतर हो गये, और बहुत ज्यादा अकुलाहट महसूस हो रही थी किन्तु ऊपर पहुँचते-पहुँचते पसीने से कपड़े भीगे होने से व ठण्डी हवाओं से हमें बहुत जबरदस्त सर्दी महसूस होने लगी। दो सस्मित वदन साहसी युग्म जो हमारे आगे-आगे उस कोठी की छत पर पहुँचे थे, हमारे हाँफते हुए ऊपर चढ़ने का दृश्य देख रहे थे और रूमाल हिला-हिलाकर हमारा उत्साह बढ़ा रहे थे। यहाँ एक कोठी के नीचे एक पुराना वैष्णव मन्दिर पुरातत्व विभाग की संरक्षता में सुरक्षित है। गुम्बज का शिल्प उसी प्रकार का है जैसे देलवाड़े के मन्दिर व अन्य तीर्थ स्थानों के मन्दिरों का।

१३ जून को ४ बजे मगर से हम कई छोटे-छोटे पहाड़ी नालों के पुलों को पार करके है मनाली पहुँचे। मनाली करीब ६००० फीट की ऊँचाई पर नया बसा हुआ व बस रहा है एव बहुत छोटा किन्तु बहुत ही मनोहर पहाड़ी स्थान है। यहाँ प्रकृति का अत्यन्त रमणीय रूप सामने आता है। जंगलात विभाग के घेरे हुए क्षेत्र के सामने हमारे तम्बू लगाये गये थे। वर्षा आरम्भ हो चुकी थी। कभी-कभी एकदम बादल घिर आते, ओले पड़ते और आसमान बिल्कुल साफ हो जाता। हमें तम्बू के चारोओर पानी से बचने के लिये खाई खोदने का आदेश मिला। हम एक तम्बू में आठ अधिकारी थे। पूर्ण रूप से तम्बुओं की व्यवस्था करने के पश्चात् आँखें तृप्त करने के लिये हम लोग तम्बुओं से बाहर निकले। सामने देवदार के वृक्षों का विस्तृत पुञ्ज जिनकी छतरीनुमा गगन चुम्बी आकृतियाँ आने वाले यात्रियों का अनायास ही ध्यान खींच लेती हैं। कुछ पेड़ तो १५ फीट व्यास के घेरे के १०० फीट से भी अधिक ऊँचे अपनी विशालता में भी एकाकी नजर आते। दूर पहाड़ी चोटियाँ सच पूछो तो मात्र उनकी ऊँचाई की भव्यता आदमी को अभिभूत करने को पर्याप्त हैं। ये पहाड़ी चोटियाँ चाँदी-सी चमकती, बादलों से आँख मिचौनी खेलती नजर आती। मुख्य सड़क पर जगलात के डाक बँगले तक जाकर व व्यास के पहाड़ी रूप की दिव्य छटा निहारकर हम लोग समय पर अपने-अपने तम्बुओं में वापिस आ गये।

कैम्प की प्रथम रात में ही हमारी कड़ी परीक्षा आरम्भ हुई। बड़े जोरों से मूसलाधार वर्षा होने लगी। ऊपर की छोलदारी से पानी चू-चूकर भीतरी छोलदारी पर गिर रहा था और हमारा दिल बैठा जा रहा था कि कहीं यह भीतरी छोलदारी भी चूने न लग जाय। वर्षा रुकने का नाम भी नहीं ले रही थी—इतने में हमारे N. C. C. का दल बिस्तरे उठाये हमारे कैम्पों में आया। उनका तम्बू बन चुका था। पास का बारह माह बहने वाला दो फीट का नाला अपनी सीमाओं का उल्लघन कर चुका था। वह फौजियों के तम्बू में अनधिकार रूप से घुस पड़ा और उन्हें वहाँ से खदेड़ बाहर किया। आखिर वर्षा रुकी फिर भी दो-दो गरम कम्बल होते हुए भी सर्दी के मारे नींद न आ सकी। प्रातः बड़ा सुहावना था—सब कुछ धुलाधुलाया साफ। बादल हट चुके थे। हम लोग वशिष्ठ गाँव की ओर रवाना हुए। मनाली के मुख्य कस्बे से दो मील दूर पहाड़ी पर बसा हुआ यह किसानों का एक छोटा-सा गाँव है। प्रथम बार हमे पहाड़ी लोगों का कठोर फिर भी सीधा-सादा व संतुष्ट जीवन निकट से देखने का अवसर मिला। पुरुष प्रायः कठोरताओं से विवश, सख्त व भद्दी शक्ल के, किन्तु तरुणियाँ कार्य-रत शायद पुरुषों से अधिक

नजर आती हैं। नाश्ता करने के पश्चात् न कुल्लु की सड़कों पर काफी
चहलकदमी करने के बाद हमारा काफिला मनाली के लिये रवाना हुआ।

खुली ट्रक से चारोंओर का मनोहर दृश्य नेत्रों को तृप्त
था। बीचबीच में तिब्बती शरणार्थी डेरा डाले पड़े थे। बड़ी भ
वेशभूषा में नजर आने वाले इन लोगों के चेहरों पर मुस्कराहट
थी। हमारे फौजी ट्रकों को देखकर ये लोग बड़े उल्लास से हाथ
शायद समझते हों कि उन बदमाश चीनियों से ये मोर्चा
जिन्होंने उन्हें बेघरबार करके उनके प्यारे वतन से अलग
हमारे ट्रक नगर पहुँचे यहाँ करीब २० मिनट का ठहराव था
सिवाय बस स्टैण्ड के चारोंओर उड़ती निगाह डालने
न देख सके। किन्तु एक दिन मनाली से विशेष प्रोग्राम
इस पहाड़ी गाँव को देखने आया। नगर का मुख्य गाँव
दो मील की कड़ी चढ़ाई चढ़कर पहुँचना पड़ता है।
कठोर, एकदम सीधी व जोड़ों को हिलाने वाली है
चढ़ाई पर चढ़ रहे थे—हमने सोचा हमें किसी पहा
दृश्य देखने ले जाया जा रहा है किन्तु करीब डेढ़
हमारे आश्चर्य का ठिकाना न रहा, जब हमने
गाँव बसा पाया।

बहुत बड़े-बड़े मैदानों की तरह लहलाते
व आलू के लम्बे चौड़े फलों के बगीचे व सुन्द
कुल्लु के राजा गर्मियों में यहाँ आकर रहा
तीन मंजिल की कोठी उस अतीत की याद
किराये के लिये खाली है और सर्वसाधा
उपयोग कर सकता है। यहाँ हवा बड़
के कमरों में घुसकर भीतरी वस्तुओं को
हमारे सारे वस्त्र पसीने से तरबतर
महसूस हो रही थी किन्तु ऊपर पहुँच
व ठण्डी हवाओं से हमें बहुत जबर
वदन साहसी य
हमारे
ह

लोगों का उन दोनों ने स्वागत किया। बाहर दोनों दुकानों के बीच हमने चन्द समय के लिए आसन जमाया, चाय के साथ उसकी माधुर्य से सनी हुई वाणी के चन्द अल्फाज भी सुने । पहाड़िन बिना 'जी' के बात नहीं करती थी—'हाँ जी'—'यहाँ के हैं जी'—अब भी कानों में गूँज रहे हैं। इतने में सात-आठ बालकों का गिरोह वहाँ आया। स्वभाव-वश मैंने एक बालक की छोटी पहाड़ी टोपी उतार कर सिर पर रखली—फिर तो जैसे हँसी का फुव्वारा फूट पड़ा हो—सब बालक कूद-कूद कर हँसने लगे। हमने बालकों को एक एक बिस्किट दिया, बालकों की जेबों में कुछ पीले बेर जैसे पहाड़ी फल थे, उन्होंने निकाल-निकाल कर जबरदस्ती खिलाना शुरू किया। कितने भोले कितने पवित्र ये बच्चे थे। संसार के सारे बच्चे चाहे, वे किसी रंग रूप व मजहब के हों, वे एक ही बन्धन में बाँधे जा सकते हैं-और वह है प्रेम का बन्धन। हँसते-हँसते बच्चों ने हमें 'जय हिन्द', 'जय भारत' के अभिवादन के साथ विदाई दी और फिर से आने का आग्रह किया।

सोने का बिगुल बज चुका है-साथी कम्बल में घुस चुके हैं। रोहतांग पास का बर्फीला दृश्य अभी भी आँखों के सामने घूम रहा है, कलम अविरल चलना चाहती है किन्तु कैंप-अनुशासन विराम का तकाजा कर रहा है सो आज इतना ही

●

कार्य करने वाली, फिर भी सुन्दर खुशमिजाज और आह्लादपूर्ण नजर आती। यहाँ नवम्बर से फरवरी तक रास्ते बर्फ से रुके रहते हैं और चींटी की तरह उन्हें भी अपने यहाँ संग्रहीत सामान पर गुजारा करना पड़ता है। वर्षा ऋतु भी इनके लिये कोई अच्छी मौसम नहीं होती—जून से अगस्त तक खूब पानी पड़ता है। चारोंओर काई जम जाती है, मच्छर बहुत हो जाते हैं और यात्रियों का आवागमन रुक जाने के कारण मेहनत-मजदूरी भी नहीं हो पाती है। बहुत तेज बहते पानी में खेती हो नहीं सकती, हाँ, कुछ लोग छोटी छोटी पहाड़ी ढलानों पर तीन-तीन, चार-चार पट्टियों पर आलू व चावलों की खेती करते हैं। मार्च से मई तक का मौसम यहाँ स्वर्ग होता है। न गर्मी, न सर्दी, फलों के पकने का मौसम, यात्रियों का बहुतायत में आना, सब मिलाकर इन महीनों की कमाई पर ही इन लोगों का पूरा साल चलता है। अपनी खुशहाली को भुलाकर और मंदिरों के लिये दशमी की तरह [illegible] लोग [illegible] में [illegible] करते हैं।

लोगों का उन दोनों ने स्वागत किया। बाहर दोनों दुकानों के बीच हमने चन्द समय के लिए आसन जमाया, चाय के साथ उनकी माधुर्य से सनी हुई बातों के चन्द अल्फाज भी सुने। पहाड़िन बिना 'जी' के बात नहीं करती थी—'हाँ जी'—'यहाँ के हैं जी'—अब भी कानों में गूंज रहे हैं। इतने में सात-आठ बालकों का गिरोह वहाँ आया। स्वभाव-वश मैंने एक बालक की छोटी पहाड़ी टोपी उतार कर सिर पर रखली—फिर तो जैसे हँसी का फुव्वारा फूट पड़ा हो—सब बालक कूद-कूद कर हँसने लगे। हमने बालकों को एक एक बिस्किट दिया, बालकों की जेबों में कुछ पीले बेर जैसे पहाड़ी फल थे, उन्होंने निकाल-निकाल कर जबरदस्ती खिलाना शुरू किया। कितने भोले कितने पवित्र ये बच्चे थे। संसार के सारे बच्चे चाहे, वे किसी रंग रूप व मजहब के हों, वे एक ही बन्धन में बाँधे जा सकते हैं-और वह है प्रेम का बन्धन। हँसते-हँसते बच्चों ने हमें 'जय हिन्द', 'जय भारत' के अभिवादन के साथ विदाई दी और फिर से आने का आग्रह किया।

सोने का बिगुल बज चुका है-साथी कम्बल में घुस चुके हैं। रोहतांग पास का बर्फीला दृश्य अभी भी आँखों के सामने घूम रहा है, कलम अविरल चलना चाहती है किन्तु कैंप-अनुशासन विराम का तकाजा कर रहा है सो आज इतना ही

●

फौलादी-ग्रान

●

नन्दकिशोर शर्मा

"पीथल अपने भाई को समझा दो।"
"वह अपनी धुन का पक्का है।"
"मान जाओ-राज्य के हाथ लम्बे होते हैं।"
"उसके लिये नहीं।"
"उसे भी जिन्दा पकड़वाया जा सकता है।"
'राजपूत जिन्दा पकड़े जाने की अपेक्षा मरना ज्यादा उचित समझता है और अमरसिंह को जीवित पकड़ लाने में आपकी सारी सेना भी कम पड़ेगी।'
'इतना गुमान है।'
'हाँ।'
'तो अमरसिंह जीवित ही पकड़ कर लाया जायगा।" और दरबार बर्खास्त कर दिया गया। अकबर अपने तमतमाये चहरे को ले उठ गया।'

× × ×

बीकानेर के कल्याणमल राठौड़ के तीन पुत्र–रायसिंह, पृथ्वीराज और अमरसिंह। गद्दी के लिये कोई झगड़ा नहीं हुआ। परम्परानुसार रायसिंह को गद्दी पर बैठाया गया। रायसिंह ने अकबर की आधीनता स्वीकार करली। पृथ्वीराज को अपनी विद्वता व कवित्व के कारण अकबर के नौ रत्नों में स्थान मिल गया। अन्य रत्नों की अपेक्षा बीरबल, तानसेन और पृथ्वीराज अकबर के अधिक प्रिय थे।

अमरसिंह राठौड़–छरहरा बदन बड़ी-बड़ी आँखें, तीखा नाक-नक्श और रौबीला व्यक्तित्व अपनी शान अलग ही रखता था। वीरता व शौर्य सिखाने व बताने से नहीं आते हैं, उनका प्रादुर्भाव स्वतः ही होता है।

बचपन से ही घुड़सवारी, तलवारबाजी और द्वन्द-युद्ध का शौक था। स्वतंत्र विचरण तो राजपूती आन के अनुकूल ही रक्त-मिश्रित था, मगर वह भी अनुशासित स्वभाव के साथ। मन को मोहनेवाली वाणी के कारण अपने साथियों के प्रिय थे। मगर रोष के कारण कभी किसी को कुछ कह देते तो उसे मना भी लेते थे।

बचपन की चौखट को पार कर जब यौवन में पहला कदम रखा तो राज्य के हिस्से को सम्हालने की आज्ञा मिली और उसका कर चुकाया जाय अकबर को। अमरसिंह को यह स्वीकार नहीं इस पर रायसिंह ने उन्हें डाँट दिया तो शेर अपने भाई की माँद से निकल कर अपनी माँद बसाते चल दिया। वह गुलाम नहीं रह सकता, रहेगा तब तक आजाद, नहीं तो मौत का आलिंगन करेगा।

कुछ साथियों ने राज्य को हथियाने की सलाह दी मगर इसे धर्म के विरुद्ध समझा। अमरसिंह ने कहा, 'साथी ! राजपूत के हाथ की तलवार ही उसे राज्य प्रदान करती है। जीवित रहता है तो स्वतन्त्र और मृत्यु भी स्वतन्त्रता के वातावरण में पसन्द करता है।'

समय के साथ खाने-पीने की समस्या सामने आई क्योंकि बीकानेर की सरहद को पार कर उन्होंने एक स्वतन्त्र पहाड़ी की गुफा मे रहना शुरू कर दिया था। भाग्यवश उन्हीं दिनों मे अकबर का खजाना जा रहा था। तलवार का धनी चुप बैठे और वह भी जबकि उसके शत्रु के खजाने के जाते वक्त। अमरसिंह ने अपने कुछ साथियो सहित खजानें पर आक्रमण कर दिया। कुछ ही क्षणो में खजाना अमरसिंह के हाथ आ गया। मुग़ल सैनिक मारे गये कुछ भाग गये और जो जीवित पकड़े गये उन्हे कुछ दिन बाद छोड़ दिया गया।

एक राज्य का राजकुमार, परिस्थितिवश अकबर के साम्राज्य का डाकू बन गया। अब अकबर के हर आने व जाने वाले खजाने को खतरा पैदा हो गया। खजाने की रक्षा हेतु जाने वाले मुगल सैनिक काँपते थे। अमरसिंह के नाम से उनके शरीर में एक झुरझुरी-सी उठती थी मगर नौकरी के कारण साथ जाना ही पड़ता और नतीजा होता मौत !! क्योंकि अमरसिंह व उसके साथियों की तलवार के वार से उनका बच पाना नितान्त असम्भव था।

अकबर ने अपने सभी प्रयास किये थे मगर सभी प्रयास लगभग निष्फल रहे और अन्त में बहुत बड़ी फौज को अपनी सेना के उप-सेनापति व एक शहजादे के साथ अमरसिंह को जीवित कैद कर लाने को रवाना कर दिया।

अमरसिंह [illegible]

दुनिया में अगर अमर को कुछ प्यारा था तो उसका घोड़ा, हाथी और नींद। नींद से प्यार का मतलब यह ठीक नहीं कि वह आलसी था। मगर नींद में खलल देने वाले को बुरी तरह डांट देता था। अतः नींद लेते समय सभी डरते थे।

आज एक चारणी उससे मिलने आयी थी। श्वेत वस्त्र, गौरवर्ण और सुन्दरता व सौम्यता की जीती जागती मूर्ति। वह एक कवयित्री थी। कहते हैं कि उसकी वाणी में जादू था—जीभ पर सरस्वती विराजती थी। कविता करना तो उसका अपना प्रिय विषय था। कविता की हर पंक्ति और कंठ की मधुरता से कायर को भी हाथ में तलवार लेकर भिड़ जाने की शक्ति दे देती थी। उसका नाम था पदमाबाई।

पहाड़ी की सीमा में पैर रखते ही पहरेदारों ने रोक दिया। परन्तु अपना परिचय देने पर पदमाबाई आगे बढ़ गई। अमरसिंह ने नमस्कार कर अगवानी की। चारण और ब्राह्मण को नमस्कार करना राजपूत अपनी शान समझते हैं और ब्राह्मण व चारण की रक्षा में अपने प्राण दे देना तो मान समझा जाता था। पदमाबाई ने भी आशीर्वाद दिया।

'आज कैसे कृपा की पदमाबाई ?'

'आपकी प्रशंसा सुनी थी, दर्शन करने चली आई।'

'मेरा अहो भाग्य है देवि— कोई सेवा ?'

'हाँ'

'क्या ?'

'मुझे अपनी बहन का विवाह करना है – सो .....'

'चिन्ता की क्या बात है बाई मैं हर सम्भव मदद का प्रयत्न करूँगा।'

'आपसे ऐसी ही आशा थी—राठौड़। आप अपनी हस्ती के एक ही व्यक्ति हैं।

'सुना है आपकी तलवार आग बरसाती है। होना भी यही चाहिए—राजपूत की तलवार का पानी तो रण में ही आंका जाता है।'

'सच है देवी ! परन्तु मैं इस योग्य नहीं कि मेरी प्रशंसा की जा सके। मैं आज के साम्राज्य का डाकू हूँ। लेकिन फिर भी प्रसन्न हूँ क्योंकि स्वतन्त्रता से जी रहा हूँ। सच मानो पदमाबाई गुलामी के नाम से मेरा खून खौल उठता है··· ' और अमरसिंह का हाथ अनायास ही तलवार की मूठ पर जा पहुँचा और मूँछें तनकर भौंहों को छूने लगी।

'आप सही कहते हैं। राजपूत जन्म से स्वतन्त्र रहना चाहता है और वीर तो अपना वसन्त रण में ही मनाते हैं। तलवारों की झंकार हो तो उनको मधुर संगीत सुनाई देता है' पदमाबाई ने कहा।

'हाँ देवी – लेकिन लगता है राणा प्रताप को छोड़कर सभी राजपूतों के खून में सफेदी आ गई है। सभी अपना सिर झुकाकर चलते हैं। मैं पूछता हूँ क्यों ? अरे राजपूत हो तुम्हारे पास तलवार है फिर क्यों झुकाते हो सिर ? सिर झुकने से पहले कट जाय तो अच्छा है। मैं तो केवल इतना समझता हूँ कि मैं जीऊँगा तो सिर उठाकर ही, नहीं तो रण में मृत्यु का वरण करूँगा '', वीर की आँखों से चिनगारियाँ फूटने लगी।

पदमाबाई अमरसिंह के वीरता भरे वचन सुन मुग्ध हो उठी। अनायास ही उसके मुँह से निकल पड़ा—"वाह वीर वाह! तुम्हारे साहस और शौर्य पर ही तो आज हिन्दुत्व जीवित है।"

'अच्छा पदमाबाई अब आप आराम करें। प्रातः आपकी आवश्यकता को पूरा कर दिया जायगा। वीरसिंह बाई के विश्राम का उचित प्रबन्ध कर दो।" और अमरसिंह पास की शिला पर सो गया। साथी बड़ी मुस्तैदी के साथ पहरा दे रहे थे। एक ओर मशालें जल रही थी। घोड़े बँधे हुए थे। पहरेदारों को छोड़ सभी साथी सो रहे थे।

प्रातः के आगमन की सूचना प्राची की लाली ने नभ में फैलकर दी। पदमाबाई उठी और स्नानादि से निवृत्त हो पूजा करके उठी और जब पहाड़ी के चारों ओर नजर डाली तो उसे काले-काले धब्बे दिखाई दिये। लेकिन अँधेरे के हटते-हटते वे धब्बे स्पष्ट होने लगे। इतने में पहरेदार ने आकर खबर दी—

'बाई–आप इधर आजाइये हमे शत्रु ने चारों ओर से घेर लिया है।'

'घबराने की कोई बात नहीं भाई आज ही तो मौका मिला है मुझे अपना कवित्व आजमाने का–मैं चारणी हूँ–जगदम्बा की सौगन्ध खाकर कहती हूँ कि सरस्वती की कृपा से सबमें आग भर दूँगी जो शत्रु को भस्म कर देगी·· ····।' कहते-कहते पदमाबाई की आँखें लाल हो उठी।

'देवी ! अमरसिंह अभी तक सोये हैं—उन्हें अगर हम जगायेंगे तो शायद वे…… ।'

'………नाराज हो जायेंगे ?' पदमावाई ने वाक्य पूरा करते हुए कहा 'आज मैं जगाऊँगी–अमरसिंह को–उसके वीरत्व को। जो जागकर शत्रुओं पर आग बरसायेगा।' और पदमावाई के कदम स्वतः ही उस शिला की ओर बढ़ गये जिस पर अमरसिंह सो रहा था।

पदमावाई ने प्रभाती में एक गीत शुरू किया। कोकिल कंठी की तीखी और तेज आवाज चारोंओर गूंज उठी……'हे सोये राजपूत जाग! अब तेरे सोने का समय नहीं है। प्रातः की इस शुभ वेला में प्रथम किरण के पहले ही शत्रु तेरे द्वार आ खड़ा हुआ है। उठ, धरा के वीर, आज अपनी माँ के दूध को उजाल दे। धरती के आँचल को शत्रुओं के रक्त से रंग दे। उठ, तेरे जगने का सही वक्त आ गया है।

'वाई की आवाज ने अमरसिंह की नींद उड़ादी और साथ ही उसने कहा, 'कौन है जो नींद में खलल डाल रहा है ?'

'मैं पदमावाई हूँ। जागो वीर शत्रु ने तुम्हारी पहाड़ी को चारों ओर से घेर लिया है। अकबर की सेना शेर को अपनी माँद से जीवित पकड़ने को आई है। धरा के सिंह ! बता दे शत्रु को कि सिंह को पकड़ना आसान नहीं।'

'सही बात है पदमावाई' और धरा को नमस्कार करता हुआ अमरसिंह उठ बैठा। उसने चारों ओर दृष्टि दौड़ाई तो सूरज की पहली किरण के साथ उसे शत्रु सेना देखने को मिली जहाँ तक दृष्टि जाती सैनिक ही नजर आ रहे थे। अमरसिंह के चेहरे पर मुस्कान फैल गई–मानो एक बालक को उसका खिलौना मिल गया हो। अपने साथियों की ओर देखा तो उनको रण की तैयारी करते पाया। उसका हाथ अचानक ही तलवार की मूठ पर जा गिरा। उसने साथियों से कहा……'ठहरो।' सभी चौंक पड़े। प्रश्नसूचक रेखाएँ सभी के चेहरे पर उभर आयीं। आज अपने साथी की तलवार का कमाल देखो !' अमरसिंह ने कहा।

'लेकिन इतनी बड़ी फौज अकेले आप ……?'

'……कैसे लड़ेंगे ? रणजीत तुम यही कहना चाहते हो। मित्र ! आज ही तो मुझे अवसर मिला है कि मैं अपने शौर्य का प्रदर्शन कर सकूँ— ताकि तुम छाती फुलाकर चल सको कि तुम्हारा सरदार कायर नहीं वीर था।' यह कहते-कहते अमरसिंह उठ खड़ा हुआ।

'तो इसका मतलब यह हुआ कि हम सब कायर हैं ?' महावीरसिंह बोला।

'नहीं,' अमरसिंह ने कहा—"मैं यह तो नहीं कहता कि आप सब कायर हैं–लेकिन दोस्तो आज दुश्मन ने शेर को उसकी मांद में आकर ललकारा है। शायद अकबर ने मुझे जीवित पकड़ने के लिये सेना को भेजा है।" पद्मावाई की ओर मुड़ते हुए वह बोला'''''' '''बाई आज तुम भी देखो कि राजपूत को ललकारने वाले पर क्या बीतती है ? आज अकबर को भी पता चल जायगा कि राजपूत को जीवित पकड़ना असम्भव है। सिर पर कफन बांध कर चलने वाले को गुलाम बनाने का प्रयास अपनी मौत को निमंत्रण देना है।'

साथियों ने बहुत समझाया लेकिन अमरसिंह ने एक न सुनी। वीर वेश-धारण कर जब वह अपने सफेद घोड़े के पास पहुँचा तो घोड़ा भी परिस्थिति का मान कर हिनहिना उठा। घोड़े पर सवार होकर जब वह रवाना होने लगा तो उसने कहा ''''''।

'साथियो ! आज अवसर आया है कि मैं अपनी तलवार से अपनी धरती की प्यास बुझा सकूं। पद्मावाई मुझे दुःख है कि मैं तुम्हें कुछ न दे सका। '''''' लो।' और अमरसिंह ने अपने गले का हार तोड़कर पद्मावाई को दे दिया–'यह थोड़ी-सी भेंट। जीवित रहा तो और भी दूंगा।'

'धन्य हो अमरसिंह आप धन्य हो—युद्ध को जाते-जाते भी अपनी दान-वीरता नहीं भूले। लेकिन मुझे तो आज वह चीज मिलेगी जो वर्षों से नहीं मिली है। मैं तुम्हारी वीरता को अमर कर दूंगी।"

'अच्छा जय जगदम्बा।' और घोड़े के ऐड़ लगा अमरसिंह तूफान की गति से शत्रु-सेना की ओर रवाना हो गया !

शत्रु-सेना में हलचल मच गई। 'आया-आया' शब्दों की गूंज सुनाई दी। इतने में तो अमरसिंह उनके बीच जा पहुँचा। उसकी तलवार बिजली बन गई। वह सेना को काटता, सेना के उस किनारे जा पहुँचा और पलक झपकते सिरों को काटता वापस इस किनारे आ पहुँचा। जिधर उसका घोड़ा मुड़ जाता—लाशों का अम्बार लग जाता–मुग़ल-सैनिक मुर्दों की ओट में छिपने का प्रयत्न करते, उससे पहले ही अमरसिंह की तलवार उन्हें मृत्यु की गोद में पहुँचा देती। 'या खुदा या अल्लाह' के शब्द मुंह से पूरे बाहर ही नहीं आ पाते थे कि सैनिकों को मौत अपने आगोश में ले लेती।

उधर अमरसिंह की तलवार शत्रु-सेना पर कहर ढा रही थी तो उस पहाड़ी पर पदमावाई की वाणी अमरसिंह की वीरता का, तलवार संचालन का, अचूकवारों के गीत गढ़ती जा रही थी। अमरसिंह का इस पार से उस

पार जाकर लौटने तक एक गीत की रचना कर देती थी। वाणी और तलवार के बीच एक होड़-सी लगी थी।

पन्द्रह चक्कर पूरे हो चुके। लाशों का ढेर लग गया, खून की नदी बह निकलीं। चारोंओर धुँआधार मच गया था। मुग़ल-सैनिक भाग रहे थे। सोलहवें चक्कर में जाने से पहले अमरसिंह की दृष्टि हाथी पर बैठे शहज़ादे पर पड़ी जों अमरसिंह की तलवारबाजी को भौचक्का होकर देख रहा था। उसके पास ही उसका सेनापति अश्व पर चढ़ा, उसकी रक्षार्थ खड़ा था।

अमरसिंह ने घोड़े के ऐड़ लगाई—घोड़ा हाथी की ओर दौड़ पड़ा। और लगाम के खींचते ही घोड़े की दोनों ही टाँगें हाथी के मस्तक पर थीं। अमरसिंह ने भाले को उठाकर वार करना चाहा। पास खड़ा सेनापति चौंक पड़ा। अमरसिंह को मारता है तो अकबर के आदेश का उल्लंघन होता है और नहीं तो शहजादा मारा जायगा। शहजादे के मरने पर भी बादशाह नाराज होंगे। कुछ भी हो शहजादे के प्राण बचाने आवश्यक हैं। यह निर्णय कर उसने अपनी तलवार का वार अमरसिंह की कमर पर किया क्योंकि सिर तक तो पहुँचना उसके वश में नहीं था। वार भरपूर था। अमरसिंह का शरीर दो भागों में बँट गया। मगर अगला हिस्सा उछल कर हाथी के हौदे पर बैठे शहजादे तक जा पहुँचा और भाला शहजादे के कलेजे को चीरता हुआ हाथी की चमड़ी में घुस गया।

सैना लौट चली। दिल्ली में दरबार लगा। अमरसिंह की लाश दो टुकड़ों में बँटी-चादर से ढकी हुई पड़ी थी। पृथ्वीराज ने अकबर से कहा—'हजूर मैंने आपसे पहले ही कहा था कि राजपूत को जीवित पकड़ना मुश्किल है।' अकबर की आँखें नीचे झुकी हुई थीं। शायद शर्म के कारण ऊपर उठना उनके लिये नामुमकिन था।

इतने में मुग़ल दरबारी फुसफुसा उठे—"या खुदा ये राजपूत किस मिट्टी के बने होते हैं, जो मरना ही जानते हैं।"

उतर भीखा म्हारी वारी

•

नृसिंहराज पुरोहित

म्हारे माथे सांवरिया रा हाथ रे
राणोजी म्हारे कांई करसी ?

घ र र''''घ र र''''घ र र''''प्रभात के समय मीठी और धीमी लय के साथ चाकी चल रही थी और चाकी के साथ-साथ मीठे सुर में चल रहा था मीरा का भजन—

म्हारे माथे गिरधारी रा हाथ रे
राणोजी म्हारे कांई करसी ?

स्वर बड़ा मधुर था और गाने वाली थी टेवरिया भांबी (चमार) की घरवाली रंभाड़ी। गरीब भांबी के घर में जन्म लेने से वह रंभा से रंभाड़ी हो गई थी। नहीं तो रंभा रंभा ही थी। यथा नाम तथा गुण। तन की सुन्दर और मन की उज्ज्वल। गोरा रंग, मदभरे नयन, तीखी नासिका और कमर के नीचे तक लटकती हुई केशराशि, नयनों मे काजल, हाथों मे मेंहदी और मूठिये पर मठोज। नथ का काला डोरा सदा तना हुआ रहता और चांदी की जंजीर में पिरोई हुई काजल की कूंपली हरदम बांये कंधे पर से छाती पर किसी कचुकी पर लटकती रहती। झूमर के रंग का लट्ठा का घाघरा और फूल छाप ओढ़नी उसे गजब की फबती थी। रंभा का शरीर मानो सांचे में ढला था और यौवन उस पर फट पड़ा था। इसलिए लोगों का ध्यान अनायास ही उसकी ओर आकर्षित हो जाता।

गाँव के जागीरदार का आदमी हाजरिया तो जब कभी भी उसे देखता कट कर रह जाता। मँझली कद, चमकदार आँखें, बिच्छू के डंक की-सी मूँछें और आंटेदार गोल साफे वाला यह व्यक्ति गाँव के जागीरदार की मूँछ का बाल था। यही व्यक्ति अछूतों की बस्ती में बिना नकेल का सांड़ था। अतः उसे देखकर वह जब लम्बी-लम्बी साँसें भरने लगता तो

पार जाकर लौटने तक एक गीत की रचना कर देती थी। वाणी और तलवार के बीच एक होड़-सी लगी थी।

पन्द्रह चक्कर पूरे हो चुके। लाशों का ढेर लग गया, खून की नदी वह निकलीं। चारोंओर धुँआधार मच गया था। मुग़ल-सैनिक भाग रहे थे। सोलहवें चक्कर में जाने से पहले अमरसिंह की दृष्टि हाथी पर बैठे शहज़ादे पर पड़ी जो अमरसिंह की तलवारबाजी को भौचक्का होकर देख रहा था। उसके पास ही उसका सेनापति अश्व पर चढ़ा, उसकी रक्षार्थ खड़ा था।

अमरसिंह ने घोड़े के ऐड़ लगाई—घोड़ा हाथी की ओर दौड़ पड़ा। और लगाम के खींचते ही घोड़े की दोनों ही टांगें हाथी के मस्तक पर थीं। अमरसिंह ने भाले को उठाकर वार करना चाहा। पास खड़ा सेनापति चौंक पड़ा। अमरसिंह को मारता है तो अकबर के आदेश का उल्लंघन होता है और नहीं तो शहजादा मारा जायगा। शहजादे के मरने पर भी बादशाह नाराज होंगे। कुछ भी हो शहजादे के प्राण बचाने आवश्यक हैं। यह निर्णय कर उसने अपनी तलवार का वार अमरसिंह की कमर पर किया क्योंकि सिर तक तो पहुँचना उसके वश में नहीं था। वार भरपूर था। अमरसिंह का शरीर दो भागों में बँट गया। मगर अगला हिस्सा उछल कर हाथी के हौदे पर बैठे शहजादे तक जा पहुँचा और भाला शहजादे के कलेजे को चीरता हुआ हाथी की चमड़ी में घुस गया।

सैना लौट चली। दिल्ली में दरबार लगा। अमरसिंह की लाश दो टुकड़ों में बँटी-चादर से ढकी हुई पड़ी थी। पृथ्वीराज ने अकबर से कहा—'हजूर मैंने आपसे पहले ही कहा था कि राजपूत को जीवित पकड़ना मुश्किल है।' अकबर की आँखें नीचे झुकी हुई थीं। शायद शर्म के कारण ऊपर उठना उनके लिये नामुमकिन था।

इतने में मुग़ल दरबारी फुसफुसा उठे—"या खुदा ये राजपूत किस मिट्टी के बने होते हैं, जो मरना ही जानते हैं।"

बनकर चमारवाड़े की तरफ गया। टेपरिया के झोंपड़े में पिछवाड़े पहुँचते ही अत्यन्त मीठे सुर मे भजन की कड़ियें उसके कानो गूँजने में लगी —

म्हारै माथै साँवरिया रा हाथ रे
राणोजी म्हारै काँई करसी।

हाजरिये का मन हरा हो गया। राँड़ कितना मीठा गाती है, कोयल-सी कुहूकती है। जैसा रूप है वैसा ही सुरीला कंठ भी है। यूँ मत गा राँड यूँ गा—

म्हारै माथै हाजरिया रा हाथ रे
टेपरियो म्हारै कांई करसी।

झोंपड़े की किवाड़ी (जो केवल आड़े-सीधे डंडो से बनी थी) बन्द थी और पर्दे के रूप मे अन्दर की तरफ ओढ़नी डाली हुई थी। हाजरिया आँगन में जाकर रुक गया। कानों से इत्र की सीकें थोड़ी बाहर निकाल लीं, मूँछों पर ताव दिया और रावली डाँग (लट्ठ) जोर से पटकर खाँसने लगा। चाकी चलती-चलती एकदम रुक गई और भजन बन्द हो गया।

हाजरिया अपने सुर में अमृत घोलते हुए बोला—अरे तूने गाना बन्द क्यों कर दिया रंभा ? मैं तो यों ही इधर कुछ काम से आया था कि प्रभात की वेला मे तेरा मीठा सुर सुनकर मस्त हो गया। वाह भई वाह ! क्या गजब का गला है, कमाल है ! सुनकर मेरी तो कली-कली खिल गई।

और झूठ नही सचमुच हाजरिये के दिल की कली-कली खिल गई थी। मीठे सुर मे भजन सुन कर नही बल्कि रंभा को उघाड़ी देख कर। ओढ़नी तो पर्दा बनी लटक रही थी सो आंगन में किसी मर्द का खाँसना सुनकर उसने फुर्ती से सिर पर डाली, इसी बीच हाजरिये ने रूप-रस का एक घूँट तो भर ही लिया।

रंभा को बड़ा अचंभा हुआ कि जो आदमी हमेशा उसे चमारी, राँड़ और छिनाल के सिवाय अन्य किसी नाम से सम्बोधित ही नहीं करता था, आज एकदम कैसे बदल गया। औरत की जात ने व्यावहारिक बुद्धि से खतरे को पहिचान लिया। वह पूठ देकर आँगन में खड़ी होगई। हाजरिया एक टूटी-सी खटिया पर बैठ गया और इधर-उधर देखकर धीमे सुर में बोला—

"रंभा, प्यारी रंभा तुझे बेगार मे काम करते देखकर मेरे दिल में बड़ा दर्द होता है। ये गोरे-गोरे और नरम-नरम हाथ क्या बेगार का काम करने लायक हैं ? भगवान् ने बड़ी भूल की जो तुझे चमार के घर में जन्म दिया। तुझे तो किसी रानी की कोख में जन्म देकर राजकुमारी बनना चाहिये था।

रंभा का छोटा-सा दिल जोर-जोर से धड़कने लगता। वह अज्ञात आशंका से काँप उठती और भयभीत कबूतरी के समान विस्फारित नेत्रों से इधर-उधर ताकने लगती। क्योंकि उसने अपनी सहेलियों से उस बदमाश व्यक्ति के संबंध में कई भयावने किस्से सुन रखे थे। उसने यह भी सुन रखा था कि राह चलते किसी की इज्जत और व्यक्ति की पगड़ी उछाल कर जूते लगवा देना उसके बाँये हाथ का खेल था। अतः ऐसी परिस्थिति में बिचारी रंभा की तो औकात ही क्या थी।

वह अपने मन में कहा करता—चमारिन की जात और मेरे ही सामने घमंड। समंदर में रहकर मगरमच्छ से वैर ? देखता हूँ कितने दिन सीता-सतवंती बनी फिरती है।

और प्रकट में लोगों को कहा करता—'देखो, देखो, कैसा घोर कलियुग आ गया है। ये चमारी के लच्छन हैं। कैसी ईसवर की गवर सी बनी-ठनी मटक-मटक कर चलती है। पूरब की गधी और पश्चिम की चाल। राम राम धर्म के डूबने का समय आ गया है।

परन्तु कई दिनों लगातार कोशिश के करने बावजूद भी हाजरिया अपनी इच्छा पूरी नहीं कर सका। वैसे जागीरदारी के नियमानुसार बस्ती की सब चमारिनों को बारी-बारी से रावले बेगार में काम करने के लिए आना पड़ता है। हाजरिया बिना बारी ही बार-बार रंभा को बेगार में टोल ले जाता और कठिन से कठिन काम करने का हुक्म लगाता, पर रंभा ने कभी उफ़ तक नहीं किया। जितना भी काम उसे करने के लिए दिया जाता वह उससे ड्योढ़ा करके रख देती।

रावले से चमारिनों को बेगार में नाज पीसने के लिए दिया जाता था। हाजरिया जान बूझ कर रंभा को अधिक से अधिक नाज पीसने के लिये देता और ऊपर से महीन एवं तुरन्त पीसने का हुक्म भी लगाता, परन्तु वहाँ भी हाजरिये को ही मात खानी पड़ती। कारण कि वह जो समय देता उससे पूर्व ही मैदे के समान महीन पीसा हुआ नाज तैयार मिलता। अब करे तो वह क्या करे और उधर उसके हमजोली-साथी रोज उसे फटकारते हुए व्यंग्य बाणों की वर्षा करते—'धिक्कार रे नादार तुझे ! ठाकुर की मूँछ का बाल बना फिरता है और अभी तक एक चमारिन भी तेरे काबू में नहीं आ सकी। चुल्लू भर पानी डूबकर मर जाना चाहिये।'

वह भी हैरान था। अतः अन्त में उसने बहुत सोच-समझ कर पैंतरा बदला। दण्ड नीति छोड़कर दाम नीति अपनाई। एक दिन प्रातः पूरा छैला

बनकर चमारवाड़े की तरफ गया। टेपरिया के झोंपड़े में पिछवाड़े पहुँचते ही अत्यन्त मीठे सुर में भजन की कड़ियें उसके कानों गूँजने में लगी—

म्हारे माथै साँवरिया रा हाथ रे
राणोजी म्हारे काँई करसी।

हाजरिये का मन हरा हो गया। रौड़ कितना मीठा गाती है, कोयल-सी कुहुकती है। जैसा रूप है वैसा ही सुरीला कंठ भी है। यूँ मत गा रौड़ यूँ गा—

म्हारे माथै हाजरिया रा हाथ रे
टेपरियो म्हारे काँई करसी।

झोंपड़े की किवाड़ी (जो केवल आड़े-सीधे डंडों से बनी थी) बन्द थी और पर्दे के रूप मे अन्दर की तरफ ओढनी डाली हुई थी। हाजरिया आँगन में जाकर रुक गया। कोनों से इत्र की सीकें थोड़ी बाहर निकाल ली, मूँछों पर ताव दिया और रावली डांग (लट्ठ) जोर से पटकर खाँसने लगा। *चाकी चलती-चलती एकदम रुक गई और भजन बन्द हो गया।*

हाजरिया अपने सुर में अमृत घोलते हुए बोला—अरे तूने गाना बन्द क्यों कर दिया रंभा ? मैं तो यों ही इधर कुछ काम से आया था कि प्रभात की वेला में तेरा मीठा सुर सुनकर मस्त हो गया। वाह भई वाह ! क्या गजब का गला है, कमाल है ! सुनकर मेरी तो कली-कली खिल गई।

और झूठ नहीं सचमुच हाजरिये के दिल की कली-कली खिल गई थी। मीठे सुर में भजन सुन कर नही बल्कि रंभा को उघाड़ी देख कर। ओढनी तो पर्दा बनी लटक रही थी सो आंगन मे किसी मर्द का खाँसना सुनकर उसने फुर्ती से सिर पर डाली, इसी बीच हाजरिये ने रूप-रस का एक घूँट तो भर ही लिया।

रंभा को बड़ा अचंभा हुआ कि जो आदमी हमेशा उसे चमारी, रौड़ और छिनाल के सिवाय अन्य किसी नाम से सम्बोधित ही नहीं करता था, आज एकदम कैसे बदल गया। औरत की जात ने व्यावहारिक बुद्धि से खतरे को पहिचान लिया। वह पूठ देकर आँगन मे खड़ी होगई। हाजरिया एक टूटी-सी खटिया पर बैठ गया और इधर-उधर देखकर धीमे सुर मे बोला—

"रंभा, प्यारी रंभा तुझे वेगार में काम करते देखकर मेरे दिल में बड़ा दर्द होता है। ये गोरे-गोरे और नरम-नरम हाथ क्या बेगार का काम करने लायक हैं ? भगवान् ने बड़ी भूल की जो तुझे चमार के घर में जन्म दिया। तुझे तो किसी रानी की कोख मे जन्म देकर राजकुमारी बनना चाहिये था।

रंभा का छोटा-सा दिल जोर-जोर से धड़कने लगता। वह अज्ञात आशंका से काँप उठती और भयभीत कबूतरी के समान विस्फारित नेत्रों से इधर-उधर ताकने लगती। क्योंकि उसने अपनी सहेलियों से उस बदमाश व्यक्ति के संबंध में कई भयावने किस्से सुन रखे थे। उसने यह भी सुन रखा था कि राह चलते किसी की इज्जत और व्यक्ति की पगड़ी उछाल कर जूते लगवा देना उसके बाँये हाथ का खेल था। अतः ऐसी परिस्थिति में बिचारी रंभा की तो औकात ही क्या थी।

वह अपने मन में कहा करता—चमारिन की जात और मेरे ही सामने घमंड। समंदर में रहकर मगरमच्छ से वैर ? देखता हूँ कितने दिन सीता-सतवंती बनी फिरती है।

और प्रकट में लोगों को कहा करता–'देखो, देखो, कैसा घोर कलियुग आ गया है। ये चमारी के लच्छन हैं। कैसी ईसवर की गवर सी बनी-ठनी मटक-मटक कर चलती है। पूरब की गधी और पश्चिम की चाल। राम राम धर्म के डूबने का समय आ गया है।

परन्तु कई दिनों लगातार कोशिश के करने बावजूद भी हाजरिया अपनी इच्छा पूरी नहीं कर सका। वैसे जागीरदारी के नियमानुसार बस्ती की सब चमारिनों को बारी-बारी से रावले बेगार में काम करने के लिए आना पड़ता है। हाजरिया बिना बारी ही बार-बार रंभा को बेगार में टोल ले जाता और कठिन से कठिन काम करने का हुक्म लगाता, पर रंभा ने कभी उफ़ तक नहीं किया। जितना भी काम उसे करने के लिए दिया जाता वह उससे ड्योढ़ा करके रख देती।

रावले से चमारिनों को बेगार में नाज पीसने के लिए दिया जाता था। हाजरिया जान बूझ कर रंभा को अधिक से अधिक नाज पीसने के लिये देता और ऊपर से महीन एवं तुरन्त पीसने का हुक्म भी लगाता, परन्तु वहाँ भी हाजरिये को ही मात खानी पड़ती। कारण कि वह जो समय देता उससे पूर्व ही मैदे के समान महीन पीसा हुआ नाज तैयार मिलता। अब करे तो वह क्या करे और उधर उसके हमजोली-साथी रोज उसे फटकारते हुए व्यंग्य बाणों की वर्षा करते—'धिक्कार रे नादार तुझे ! ठाकुर की मूँछ का बाल बना फिरता है और अभी तक एक चमारिन भी तेरे काबू में नहीं आ सकी। चुल्लू भर पानी डूबकर मर जाना चाहिये।'

वह भी हैरान था। अतः अन्त में उसने बहुत सोच-समझ कर पैंतरा बदला। दण्ड नीति छोड़कर दाम नीति अपनाई। एक दिन प्रातः पूरा छैला

बनकर चमारवाड़े की तरफ गया। टेपरिया के झोंपड़े में पिछवाड़े पहुँचते ही अत्यन्त मीठे सुर में भजन की कड़ियें उसके कानों गूँजने में लगीं—

म्हारै माथै सांवरिया रा हाथ रे
राणोजी म्हारै कांई करसी।

हाजरिये का मन हरा हो गया। रांड़ कितना मीठा गाती है, कोयल-सी कुहूकती है। जैसा रूप है वैसा ही सुरीला कंठ भी है। यूँ मत गा रांड यूँ गा—

म्हारै माथै हाजरिया रा हाथ रे
टेपरियो म्हारै कांई करसी।

झोपड़े की किवाड़ी (जो केवल आड़े-सीधे डंडों से बनी थी) बन्द थी और पर्दे के रूप मे अन्दर की तरफ ओढ़नी डाली हुई थी। हाजरिया आँगन में जाकर रुक गया। कानों से इत्र की सींकें थोड़ी बाहर निकाल लीं, मूँछों पर ताव दिया और रावली डांग (लट्ठ) जोर से पटकर खाँसने लगा। चाकी चलती-चलती एकदम रुक गई और भजन बन्द हो गया।

हाजरिया अपने सुर में अमृत घोलते हुए बोला—अरे तूने गाना बन्द क्यों कर दिया रंभा? मैं तो यों ही इधर कुछ काम से आया था कि प्रभात की वेला मे तेरा मीठा सुर सुनकर मस्त हो गया। वाह भई वाह! क्या गजब का गला है, कमाल है! सुनकर मेरी तो कली-कली खिल गई।

और झूठ नहीं सचमुच हाजरिये के दिल की कली-कली खिल गई थी। मीठे सुर मे भजन सुन कर नहीं बल्कि रंभा को उघाड़ी देख कर। ओढ़नी तो पर्दा बनी लटक रही थी सो आँगन में किसी मर्द का खाँसना सुनकर उसने फुर्ती से सिर पर डाली, इसी बीच हाजरिये ने रूप-रस का एक घूँट तो भर ही लिया।

रंभा को बड़ा अचम्भा हुआ कि जो आदमी हमेशा उसे चमारी, रांड़ और छिनाल के सिवाय अन्य किसी नाम से सम्बोधित ही नहीं करता था, आज एकदम कैसे बदल गया। औरत की जात ने व्यावहारिक बुद्धि से खतरे को पहिचान लिया। वह पूठ देकर आँगन मे खड़ी होगई। हाजरिया एक टूटी-सी खटिया पर बैठ गया और इधर-उधर देखकर धीमे सुर में बोला—

"रंभा, प्यारी रंभा तुझे वेगार मे काम करते देखकर मेरे दिल में बड़ा दर्द होता है। ये गोरे-गोरे और नरम-नरम हाथ क्या वेगार का काम करने लायक है? भगवान् ने बड़ी भूल की जो तुझे चमार के घर में जन्म दिया। तुझे तो किसी रानी की कोख मे जन्म देकर राजकुमारी बनना चाहिये था।

वाह भई वाह ! क्या, गजब का रूप है तेरा ! विधाता ने फुर्सत के समय तबीयत से बनाया है। जरा इधर तो देख मेरी जान ! हम तो तेरे दुआरे रूप के दर्शन करने आये हैं और तू है कि पूठ दिये ठूँठ की तरह खड़ी है।

रँभा पैर के अँगूठे से धरती कुचरने लगी।

हाजरिये पर तो भूत सवार था और नशे में गर्क था इसलिये बोलता ही गया-रंभा ! मृगनयनी रंभा ! इधर देख तो सही ! क्यों तरसा रही है वैरिन। आज मैं तेरे द्वार पर भीख माँगने आया हूँ, प्रेम और मोहब्बत की भीख—मैं तुझे निहाल कर दूंगा—सोने से लाद दूंगा, फक़त मेरा कहना मान जा।

रंभा की साँस ज़ोर ज़ोर से चलने लगी।

आखिर हाजरिया स्वयं को जब्त नहीं कर सका। वह खटिया पर से उठा और उसने रंभा का हाथ पकड़ लिया। वह उसे घसीट कर झोंपड़े में लेजाना चाहता था। पर रंभा ने एक ज़ोर का झटका देकर अपना हाथ छुड़ा लिया। हाजरिया कार्तिक महीने के कुत्ते के समान लपका पर नज़दीक आते ही रंभा ने थच्च से उसके मुँह पर थूक दिया। ऊपर से जमाई एक लात कस कर पेट में सो हाजरसिंह धड़ाम करते धरती पर और टाँगड़े ऊपर। ताव देकर सँवारी हुई बिच्छू के डंक सी मूँछों में चमारिन का थूक उलझ गया। धरती रूपी सेज पर पौढ़े छैले के कूल्हों पर एक ज़ोर की लात मारती हुई वह बोली-"इस बार तो इतने में ही छोड़ती हूँ परन्तु फिर कभी ऐसी बात मेरे सामने ज़बान पर लाया तो फाड़ कर खाजाऊँगी। कुत्ते ! कमीने ! दोगले ! निकलजा मेरे घर से।"

शोरगुल सुनकर चमारवाड़े के लोग इकट्ठे हो गये। पर ठाकुर के कणवारिये की ऐसी दुर्गत देख कर सब सहम गए, पेट पर चोट करारी लगी थी। इसलिए दो चार चमारों ने मालिश-वालिश करके हाजरिये को बिठाया। उसका, किसी साहब के टोप-सा कलफ लगा गोल साफा जो इस मल्ल-युद्ध में दूर जा गिरा, लाकर उसके सिर पर रक्खा। कुछ ही देर में साँस ठिकाने बैठी तो हाजरिया मूँछों में उलझा थूक पौंछता हुआ खड़ा हुआ और लाठी हाथ में लेकर गरजने लगा—इस राँड़ की यह हिम्मत ! शेर पर घाव ? अब देखना, इस हरामजादी को तो क्या, पूरे चमारवाड़े को बर्बाद नहीं कर दूं तो मेरा नाम हाजरिया नहीं।"

चमार हाथ जोड़कर थर-थर काँपते हुए रिरियाने लगे "आप बड़े हैं आप मालिक हैं, आप हमारे अन्नदाता हैं। हमें माफ करदो मालिक। शाम को टेपरिये को घर आने दीजिए। इस नालायक राँड़ की तो हड्डी-पसली

एक करवा देंगे। आप रावले में पधार कर ठाकुर साहब के सामने कुछ अरज मत करना। आपको रामदेव बाबा की सौगन्ध है।"

मगर हाजरिया तो सीधा ठाकुर के पास पहुँचा। ठाकुर अनाड़सिंह अभी-अभी अपोड़ी होकर (उठकर) दरीखाने (बैठक) मे पधारे ही थे और मूँछों की हिफाजत मे लगे हुए थे कि हाजरिया जा पहुँचा। लाठी एक तरफ फैंक कर और साफा ठाकुर के पैरो में रखकर एक ओर चुपचाप खड़ा हो गया। उसका यह हाल देखकर वे बोले—"क्या बात है रे ?"

"छुट्टी बख्शावो अन्नदाता ! मैं अब रावली चाकरी में नहीं निभ सकता।"

"मगर बात क्या है ? मुँह से बोल तो सही भले आदमी !"

"अब क्या अर्ज करूँ मालिक आपको ! कहते हुए भी शर्म आती है। रावला नाज टेपरिया चमार के यहाँ पीसने के लिए दिया हुआ था इसलिए उधर आटा लेने के लिए गया था । इस चमार के यहाँ जितनी बार नाज पीसने के लिए दिया, उतनी ही बार बहुत मोटा पीस कर लौटाया गया। इसलिए मैंने उस चमारी को बहुत ही शांति के साथ समझाते हुए कहा—देख भई, नाज इतना मोटा मत पीस थोड़ा महीन पीसा कर। मँहगे के भाव का नाज है। सो नाज का नाश मत कर। इस पर रांड़ ने आव देखा न ताव, सुबह ही सुबह मुँह लगकर कहने लगी,—अजी मैं तो ऐसा ही पीसूंगी। मरजी पड़े तो:नाज दिया करो। वरना चमार वाड़े में पीसन वाली और बहुत-सी हैं। जो महीन पीसे उसे दिया करो। कोई मैंने अकेली ने ही पीसने का ठेका थोड़े ही ले रखा है। इसके अलावा तुम कौनसी मजदूरी देते हो जो इतना जोर जमाते हो। मुझे थोड़ा क्रोध आ गया। मैंने कहा—तेरी खोपड़ी खराब हो गई है या क्या बात है। इस पर हरामजादी मुझे गालियें बकने लगी और अन्नदाता को भी बीच में घसीटने लगी। अन्नदाता की तौहीन सुनकर मैं अपने को जब्त नहीं कर सका और मैंने पैर से जूता उतारा। इतने में तो रांड़ घर मे से मूसल लेकर निकली और मुझे मारने के लिए झपटी। जो चमारवाड़े के लोग इकट्ठे नहीं होते तो हजूर आज न मालूम क्या हो जाता। मैं कुछ नहीं कह सकता।

"सो अन्नदाता, सारी उम्र आपके सामने दौड़ते हुए गुजर गई, परन्तु अब समय बहुत नाजुक आगया है, इसलिए मुझे तो अब छुट्टी दिलावें।"

ठाकुर अनाड़सिंह यों बड़े सज्जन पुरुष थे परन्तु दो ऐब उनमें बहुत

बड़े थे। एक तो वे कानों के बहुत कच्चे थे और दूसरी बात शराब उन पर बुरी तरह से हावी हो चुकी थी।

"हाजरिये की बातें सुन कर ठाकुर के तन में आग-सी लग गई। एक चमारिन ने यह हिम्मत की कि वह मेरे आदमी पर हाथ उठावे!"

'अरे है रे कोई हाजिर ?"

"हुक्म अन्नदाता।"

"जा रे छोकरे उस चमार और उसकी राँड़ को जल्दी लाकर मेरे सामने हाजिर कर। इस चमारी की·······!"

ठाकुर ने एक वजनी गाली दाग दी। हुक्म लगने की देर थी। कुछ ही क्षणों में टेपरिया और रंभा को लाकर ठाकुर के सामने खड़ाकर दिया गया। ठाकुर देखते ही गरजे—"क्यों रे भाँवटे, तेरी यह पटरानी क्या कहती है कि कौन-सी मजदूरी देते हो सो नाज महीन पीसें। दिला दूँ आज तुझे सारी बकाया मजदूरी ?" टेपरिया काँपने लगा।

"लेजा ओ रे इनको घुड़साल में और लगें जूते सालों के!"

रावले घोड़े अर बावले सवार। अन्नदाता का हुक्म छूटा, फिर पूछना ही क्या। हाजरिये ने अपने हाथों की खुजली जी भर कर मिटाई। टेपरिया से भी रंभा पर अधिक मार पड़ी। उसकी चीखें ठेठ अन्दर की ड्योढी तक पहुँचीं तो दयालु ठकुरानी ने उसे छुड़वा दिया। टेपरिया तो लाठी के सहारे किसी प्रकार गिरता-पड़ता घर पहुँचा मगर रंभा को चमार खाट पर डाल कर ही ले गये। बिचारी कोई महिना भर तक पड़ी रही और तब जाकर कहीं चलने-फिरने योग्य हुई। उसकी गोरी चमड़ी पर ठाकुर साही ठप्पे की मोहरें द्वारिका के छापों की तरह कायम रूप से लग गईं।

दिन बीतते क्या समय लगता है। बातों ही बातों में बीस बरस निकल गये। इस अर्से में जमाना कहीं का कहीं पहुँच गया। राम जाने कितना पानी लूनी नदी में बहकर समुद्र के पेट में समा गया होगा। बालक थे, वे युवा हो गये और युवाओं ने वृद्धावस्था की दहली पर कदम रख दिया। युग ने करवट बदली और देश को आजादी मिली। मुल्क में बड़ी उथल-पुथल हुई। अंग्रेजों के बिस्तर गोल होते ही राजाओं के राज्य समाप्त हो गये और जागीरदारों की जागीरें भी नष्ट हो गईं। देहाती-दुनिया में बड़ा परिवर्तन महसूस किया जाने लगा। बड़े-बूढ़े पुरानी आँखों से नया युग देख रहे थे।

ठाकुर अनाड़सिंह की उम्र अब पचास के ऊपर निकल गई थी इसलिए उनका शरीर अब काबू में नहीं था। शुरू-शुरू में ठाकुर ने शराब को पिया।

बीच में शराब ने शराब को पिया और अब शराब ठाकुर को पी रही थी। जागीर की आमदनी शुरू से ही कम नहीं थी मगर ठाकुर ने खूब खुले हाथ से खर्च किया अतः पैसा जैसे आया वैसे ही गया। इसलिए जागीरें जब्त होते ही ठाकुर पर आफत-सी आ गई। बड़ा कुँवर होनहार था, मगर द्वितीय विश्व-युद्ध की भेंट चढ़ गया। छोटा अभी उदयपुर के कृषि कालेज में शिक्षा प्राप्त कर रहा था। घर में दो कन्याएँ कुँआरी बैठी थीं। ठाकुर को सबसे अधिक फिक्र इन्हीं की ही थी। कारण कि उनमें से एक की आयु तीस वर्ष और दूसरी की पच्चीस वर्ष हो गई थी।

ठाकुर की गढ़ी बहुत लम्बी-चौड़ी थी। बड़े-बड़े मकानात बाबा आदम के जमाने के बने हुए थे। वर्षा में प्रति वर्ष काई जमते रहने से श्वेत महल बिलकुल काले पड़ गये थे। मुख्य पोल की दीवारें फट गई थीं और स्थान-स्थान पर चूना गिर जाने से ईंटें निकल आई थीं। अब इतने बड़े-बड़े मकानों की मरम्मत करवाना भी कठिन हो गया था। ठाकुर दिन भर पोल में अकेले बैठे रहते। मनुष्य तो क्या कोई पशु-पक्षी भी उनके नजदीक नहीं फटकता था। शराब ही ठाकुर की एकमात्र सच्ची सहायक थी।

ठकुरानी बहुत समझदार थी। पर जीवन भर ठाकुर के सामने उसकी बिल्कुल नहीं चली। अब चूँकि ठाकुर ने एक तरह से सन्यास-सा ले लिया था इसलिए रावले का सारा काम-काज ठकुरानी ने अपने हाथ में सँभाल लिया था। जागीर में मुआवजे में मिली रकम से एक ट्रेक्टर खरीद लिया गया था और नाज पीसने की एक चक्की भी लगा दी गई थी।

ठकुरानी हाजरिये पर शुरू से ही बहुत नाराज थी। वह भलीप्रकार जानती थी कि उसने हमेशा ठाकुर को खोटी सलाह दी है इसलिए इस घर को बर्बाद करने में उसका बहुत बड़ा हाथ है।

परन्तु अब उसकी हालत बहुत खराब थी। आधे शरीर में लकवा, मार जाने से वह साल भर खाट में पड़ा रहा। ठाकुर ने उसके इलाज में काफी पैसा खर्च किया। जिससे वह चलने-फिरने योग्य तो हो गया था परन्तु वह भयंकर रोग उसके शरीर में कुछ कायम-सा असर छोड़ गया। बाँयी आँख कुछ टेढ़ी हो गई और बाँया होठ लटक कर ढीला पड़ गया। इस कारण हरदम मुँह से लारें टपकती रहतीं। ठकुरानी को उस पर दया आ गई। इसलिए उसे चक्की पर रख लिया।

चक्की पर गाँव के सब लोग नाज पिसाने आया करते। पर सबकी आम शिकायत थी कि नाज बहुत मोटा पीसा जाता है और पिसाई भी बहुत अधिक ली जाती है। परन्तु आसपास में कोई दूसरी चक्की नहीं होने से लोग-बाग मजबूरन यहीं आया करते।

दोपहर ढल चुकी थी और रंभा अपने पौत्र प्रवीणकुमार के साथ चक्की पर नाज पिसवाने आई। रंभा अब वह बीस वर्ष पहिले वाली पद-दलित एवं अबला रंभाड़ी नहीं थी। टेपरिये को मरे कई बरस हो गये थे। रंभा के दो पुत्र थे। उनको रंभा ने मेहनत-मजदूरी करके पढ़ा-लिखाकर मनुष्य बना दिया था। उसने स्वयं नाना प्रकार के कष्ट उठा लिए लेकिन बच्चों को आँच नहीं आने दी। इसलिए उसका बड़ा लड़का सरकारी स्कूल में अध्यापक था और छोटा मैडिकल कॉलेज बीकानेर में पढ़ रहा था। रंभा अब पूर्णतया संतुष्ट एवं सुखी थी।

आटे की तगारी हाथ में लेते ही वह बोली—"आटा कुछ महीन पीसा करो हाजरजी बीरा ! चोखी पिसाई लेते हो, मँहगे भाव का नाज तो खराब मत किया करो।"

उसी समय चक्की के बहार की तरफ से आवाज आई—'उत्तर भीखा म्हारी बारी !'—बाहर मैदान में बच्चे खेल रहे थे। दो-दो बालक पीठ से पीठ सटाये और हाथों में हाथ गूँथे खड़े थे। बारी-बारी से एक बालक नीचे झुकता और दूसरे को अपनी पीठ पर उठा लेता। झुका हुआ बालक जोर से बोलता—'उत्तर भीखा म्हारी बारी'—और इतना कहते ही ऊपर वाला बालक नीचे आकर झुक जाता और नीचे वाले को पीठ पर उठा लेता।

आटे की तगारी सिर पर उठाये रंभा थोड़ी देर तक बालकों का खेल देखती रही और फिर अपने पोते का हाथ पकड़े गुनगुनाती हुई घर की ओर रवाना हो गई।

म्हारै माथै साँवरिया रो हाथ रै
राणाजी म्हारै काँई करसी ॥

वेदने

●

लक्ष्मीकान्त शर्मा 'ललित'

हे निखिल-अनिल अन्तराल-सागर की उर्मिवादिनी ! तेरे ही आरोहावरोह के साथ-साथ मानस-तट के सुख-दुःख नृत्य किया करते हैं। जब तेरा रौद्र कम्पित स्वर सृष्टि-सितार पर अलबेला भैरव छेड़ता है तो पलक-पुलिनी के प्राण सिहर उठते हैं, फेनिल से शबनम-बिन्दु बिखर उठते है ⋯ ⋯। मेघ संकुलित अतृप्त प्यास, आह का अभिसार कर चीख उठती है—मैं नीर भरी दुख की बदली⋯⋯?' तब समस्त सृष्टि तुझे जीवन-कुहेलिका, प्रसव-पीड़ा प्रसारणी और न जाने कितने-कितने शब्दो से सुशोभित करती है ⋯ ⋯ ?

किन्तु⋯⋯? तेरा प्रागण तो सत्यं, शिव सुन्दरम् का उद्गम है। समस्त कला जगत् तेरा ऋणी है। हे उन्मुक्त कला वैभव वरदान-वारिणी-तेरी एक ही विरद-स्मित न जाने कितने अनजान क्षितिजो का मौन छू, इन्द्रधनु-सा वितान तान, उदासी की नीली उपत्यकाओ मे अबीर बिखेर देती हैं⋯⋯ सहमी काँपती कल्पनायें पंख लगाकर उस सीमा के पार उड़ जाना चाहती हैं जिसके आगे राह नहीं ⋯ ?"

हे भू-पराग-सचिते ! जब-जब तेरी सुरभि अपने धानी आँचल से मानव-देह का सम्यूहन करती है तो हठात् ही सुख अभिलषित वृत्तियाँ मदहोश हो किसी पावन स्वप्न में डूब जाती हैं और लगता है कि जैसे जन्म के कगार पर मौत की काया का कोई अस्तित्व ही शेष नहीं ⋯ ⋯ ?

हे जीवन-वर्तिके ! तेरे ही पुण्य-प्रकाश की छाया में प्रगति-मीनार विहँसती है⋯⋯हरजाई आहे संघर्ष का संबल पाती हैं ⋯⋯ मर्म स्पर्शनी प्रेरणा किसी सनातन सत्य से अठखेली करती है ⋯ ⋯ कामनाओ की करवटें केन्द्रित होती हैं⋯⋯? तेरी ही तो **'दिवानी चोटों की ओटों में जीवन का सर्वस्व छिपा है,'** हे पीयूषवर्षिणी !

●

नववर्ष का आगमन

सांँवरलाल दईया 'अपरिशेष'

बीत गयीं
एक एक करके
बारह पहली तारीखें
और
पलट दिया अंगुलियों ने
हर माह
एक नया पृष्ठ
हर पहली तारीख को !........
देखते ही देखते
चला गया
यह साल भी
शरद् ऋतु की धूप-सा !
दीवार पर लटकाना पड़ेगा
आज फिर
एक नया कैलेण्डर !

वृष राशि का सूर्य

●

नीलकण्ठ शास्त्री

वृष राशि का सूर्य,
हजार हजार करों से—
ताप बढ़ा रहा है।
श्यामला धरती का तन,
फूले-फूले उपवन,
सजला सरिताएँ
शान्त-निर्मल सरोवर
हरी भरी वनराजि,
सब के सब सूख गये हैं।
झुलस गये हैं।
एकान्त, ठंडी छाँह के लिये,
भटक रहे हैं वनचर, खगचर,
सब के प्राणों पर आ पड़ी है।
ऐसे ही—
शान्ति की खोज मे,
ठंडी छाँह के लिये,
भटक रहे हैं—
दुर्वह राजनीति को सिर पर उठाये,
हजार हजार करो के भार से दबे,
कराहते, भूखे, प्यासे,
उत्पीड़ित मानव।
वृष राशि का सूर्य तप रहा है।

●

सन्ध्या उतरी

०

नीलकण्ठ शास्त्री

नील गगन से सन्ध्या उतरी, ओढ़े लाल चुनरिया।
उन्नत गिरि पर
तरु-शिखरों पर
चरण धरे धीरे से—
छिप छिप आई बीच डगरियाँ।
नील गगन से सन्ध्या उतरी ओढ़े लाल चुनरिया॥
कल कल कलरव,
अमृत सा रव,
गूँज रहा वन-कुंज-डगर में,
बाजी श्याम-मुरलियाँ।
नील गगन से सन्ध्या उतरी ओढ़े लाल चुनरिया॥
सुध-बुध भूले,
पवन हिंडोले,
झूल रही गोधूलि,
संग संग बीती चार पहरियाँ।
नील गगन से सन्ध्या उतरी ओढ़े लाल चुनरिया॥
हरा हरा मन,
धरती - आँगन,
वन्दनवार विहगों की—
टोली चली नगरियाँ।
नील गगन से सन्ध्या उतरी, ओढ़े लाल चुनरिया॥
घर ओसारे
तुलसी - चोरे—
आँचल ढाँप सजाये दीपक
तकती राह गुजरियाँ।
नील गगन से सन्ध्या उतरी, ओढ़े लाल चुनरिया॥

गीत बनाम मौन चीख

बलवीरसिंह 'करुण'

चमन-चमन तो चेतन भटका, गली-गली अवचेतन रे ।
द्वार-द्वार दुखिया तन घूमा, गाँव-गाँव भरमा मन रे ॥

महलों से झोपड़ियों तक तो साँसों ने दे ली फेरी ।
मन्दिर से मयखानों तक तो छान चुकी पीड़ा मेरी ॥
अब तो उलझा नहीं रहूँगा इस रंगीन झमेले में ।
एकाकी ही नाव चलेगी अब लहरों के मेले में ॥

लकवे की बीमार जवानी, सड़ा हुआ उजलापन रे ।
सूरज यहाँ तिमिर का साथी, जहर बुझा चन्दन-वन रे ॥

मौत बहुत मँहगी मिलती है, सपनों तक के हैं लाले ।
किरणें भी कंजूस बन गयीं, चीखों के मुख पर ताले ॥
नयी राह का सृजन जुर्म है, पथ पुराना बन्द पड़ा ।
चाँद पड़ा बीमार कहीं पर, पवन कहीं पर कैद पड़ा ॥

चहल-पहल को निगल गया है मरघट का सूनापन रे ।
पनघट गूँगे, लहरें लँगड़ी, तट घायल, हत उपवन रे ॥

आँसू आवारा बेघर हैं, हँसी हुई सचमुच पागल ।
घाव गीत मीठे गाते हैं, संज्ञा-शून्य पड़ी पायल ॥
इस मरघट के शून्य मंच पर खड़ी चेतना गाती है ।
बुझी चिताओं से टकराकर तान लौट आ जाती है ॥

प्रेतों तक बेहोश यहाँ हैं, सूना खुद सूनापन रे ।
कौन सुने फिर गीत मौत के, कौन साँस का क्रन्दन रे ॥

किसने कहा–बाँसुरी बोली, यह तो कानों का भ्रम है ।
किरण कभी की गुज़र चुकी है, अब तो तम ही रे तम है ॥

धिक् रे चेतन, धिक् अवचेतन, धिक् रे मन, धिक्-धिक् तन रे ।
वृथा भरमता रहा जन्म भर, ले भ्रम का ही सम्बल रे ॥
हाँ, यदि मनु का साहस हो तो उठ करदे नव सर्जन रे ।
एक बार उठ और अरे मन, एक बार बस ओ तन रे ॥

कृतज्ञता : कृतघ्नता

मानसिंह वर्मा

युग के मसीहाओ !
स्वीकारो मेरी तुम,
ज्ञापित कृतज्ञता ।
मेरी पीढ़ी के भूखे, नंगे,
अधपके, अधकचरे,
विषमताओं से त्रस्त
लोग
कृतघ्न नहीं हैं
हो नहीं सकते हैं
या कि सम्भव नहीं है
अस्तित्व के कारण को नकारना ।

तुम्हारा उपहार—
अनास्था औ कुण्ठा की
बैसाखी—
बड़े प्यार से दुलारते हैं
ये लोग
अपना लूला लँगड़ापन
ढोने को ।

तुम्हारा प्यार—
कथनी और करनी के बीच का
बेढंगा
बढ़ता……और बढ़ता……और बढ़ता

अन्तराल—
निरर्थक शब्दों का मायावी जाल
बड़े प्यार से सहेजने हैं
घुटन की कीचड़ भरी चादर में
आजीविका कमाने को
टूट कर बँधने को
बिखर कर सँवरने को।
ओढ़ने हैं भार
चाही-अनचाही
रोपित आरोपित
मण्डू की जिन्दगी का।
कृतघ्न नहीं हैं ये
मेरी पीढ़ी के लोग
कृतघ्न नहीं हैं
नहीं हो सकते हैं।

जीवन-मरण

●

होतीलाल शर्मा 'पौर्णेय'

मोहम्मदखाँ बंगश की विशाल वाहिनी को परास्त कर मराठा सेना प्रत्यावर्तन कर रही थी। हर्षोल्लास से प्रमत्त वीर तुमुल ध्वनि से जय-घोष कर रहे थे। रण-स्थल रिक्त हो चुका था। पेशवा बाजीराव मृतक वीरों के शवों का निरीक्षण करके सबसे पीछे लौट रहे थे—अकेले और निश्चिंत! विजयोल्लास में वे इतने खो गये थे कि उन्हें अपने तन की भी सुध न थी। एक शत्रु ने अवसर देखकर अपना घोड़ा उनके पीछे डाल दिया। शत्रु का घोड़ा प्रशिक्षित था। उसकी टापों की ध्वनि इतनी हल्की थी कि बाजीराव का ध्यान ही पीछे की ओर न गया। दोनों घोड़े एक दूसरे के बिल्कुल पीछे थे। शत्रु ने अपनी म्यान से तलवार खींच ली। मराठा उत्कर्ष के बीजरूप इस अपराजेय वीर पुरुष को सर्वदा के लिए समाप्त करने के लिये ज्योंही उसने अपनी तलवार उठाई कि सहसा एक प्रखर तीर उसकी भुजा में जा लगा। तलवार नीचे गिर गई। शत्रु ने मुड़कर देखा कि एक नवयुवक असाधारण सौम्यता और प्रतिभा जिसके चेहरे से टपक रही थी, द्रुतगति से उनके समीप आ रहा है। देखते-देखते युवक उसके समक्ष आ गया। विद्युत् की भाँति युवक की तलवार शत्रु की ग्रीवा पर पड़ी। वह निश्चेष्ट होकर भूमि पर गिर पड़ा। इस द्वन्द-युद्ध ने बाजीराव का ध्यान आकर्षित किया। उन्होंने अपने घोड़े को थाम कर पार्श्व में मुड़कर देखा कि एक असाधारण सौन्दर्य वाला युवक आकाश में अपनी तलवार को चमकाता हुआ पवन-वेग से उनकी ओर दौड़ा आ रहा है। वेषभूषा से वह शत्रु नहीं जान पड़ता था। फिर भी वीरोचित ढंग से बाजीराव ने तलवार खींच ली। समीप आने पर युवक ने अपना घोड़ा रोका और बाजीराव को दोनों हाथ जोड़कर अभिवादन किया। अभिवादन स्वीकार करने के उपरान्त पेशवा उस युवक को एक टक देखते रहे। उन्होंने इससे पूर्व कभी भी पुरुषों में इतनी सुन्दरता नहीं देखी थी। पीत शिरस्त्राण के नीचे से कुछ बाल उसके कपोलों पर बिखरे हुए मन्थर पवन से धीरे-धीरे हिल रहे थे। उनके नेत्र मानो विधाता की कृति के आदर्श

थे जो भूल से इस मृत्यु-लोक मे आ गये थे। उसके गौरवर्ण हाथ इतने बलिष्ठ न थे कि वे कुछ समय तक स्थिर रूप से युद्ध-रत रह सकें। फिर भी आत्म-दृढ़ता के चिह्न उसके मुख-मंडल पर अंकित थे। उस मुख-मण्डल को देखकर पेशवा कुछ विचार-मग्न हो गये। उन्होने पहले ऐसा मुख-मण्डल कही देखा है—ऐसा वे सोच रहे थे। 'पर कहाँ देखा है, और कब देखा है ? यह उनके मस्तिष्क में न आ रहा था।

"कौन हो ?" पेशवा ने पूछा।

"पूज्य पेशवा का अनुग्रहकांक्षी" युवक ने कहा।

"परन्तु रूप से तुम मराठा नही हो और व्यवहार से तुम शत्रु भी नही, तब ? प्रश्नसूचक दृष्टि से पेशवा ने देखा।

"सेवक होने के लिये इन दोनो मे-से कोई भी विकल्प आवश्यक नहीं। लज्जामिश्रित मुस्कराहट से युवक ने कहा।

"अभी तुम किसी से युद्ध कर रहे थे ?"

"हाँ, एक पठान को, जिसकी तलवार आपकी ग्रीवा के समीप पहुँच चुकी थी, मैंने सदैव के लिये भूमि पर सुला दिया है।"

"इसके लिये कृतज्ञ हुआ। तुम्हारा नाम ?"

"सेवक।"

"यह तो नाम नही हुआ। क्या नाम बताने में तुम्हें आपत्ति है ?"

पेशवा ने युवक की आँखो मे झाँका। कुछ आत्मीयता से ओतप्रोत सिहरन-सी हुई। इस युवक को कही देखा था परन्तु स्मृति ठीक कार्य नहीं कर रही थी। पेशवा पुन. कुछ सोचने लगे।

"धृष्टता क्षमा करें तो एक बात पूछूं ?" युवक ने कहा।

"हाँ, पूछो।" पेशवा ने स्वीकृति दी।

"क्या श्रीमान् मुझे पहिचानने का प्रयास कर रहे हैं ?" अपनी दंत-पंक्ति को अनावृत करते हुए, मुस्कराकर युवक ने कहा।

"हाँ, परन्तु कुछ स्मरण नहीं होता।"

"आपको बुन्देला-नरेश छत्रसाल का पन्ना-दरबार तो याद होगा।"

"अवश्य।"

"और बुन्देला-नरेश द्वारा आपके लिये प्रदत्त भेंट के उपकरण भी आपको याद होंगे ?" ऐसा कहते-कहते युवक ने अपना शिरस्त्राण उतार दिया।

"ओह, तुम !" अब पेशवा की स्मृति के मार्ग से विस्मृति का व्यवधान

समाप्त हो चुका था। उनके हृदय की धड़कनें तीव्र हो गईं। उन्हें स्मरण हो आया पन्ना का दरबार। बुन्देलखण्ड-नरेश छत्रसाल ने उन्हीं के सम्मान में तो दरबार किया था। विभिन्न प्रकार की भेंटों से उन्होंने पेशवा को सम्मानित किया था। यह असाधारण सुन्दरी भी उन भेंटों में से एक थी। भरे दरबार में छत्रसाल नरेश ने इस षोडशी को पेशवा को अर्पित किया था। वह सलज्ज भाव से पेशवा के चरणों के पास आकर बैठ गई थी। वह दरबार की नर्तकी थी। इसके जाति, कुल और नाम अज्ञात थे। उसकी मस्तचाल और अपूर्व सौन्दर्य के कारण ही इसको 'मस्तानी' के नाम से पुकारा जाता था। ब्राह्मण कुलीन उच्च कुल में उत्पन्न पेशवा बाजीराव के लिये इस भेंट का कोई महत्त्व नहीं था। उस समय पेशवा ने इसको आकर्षणहीन उपहार समझकर इसके प्रति उत्साहपूर्ण भाव का प्रदर्शन नहीं किया था।

परन्तु आज की घटना से मस्तानी ने उनके हृदय में शीर्ष स्थान प्राप्त कर लिया था। वे कभी कल्पना भी नहीं कर सके थे कि एक नर्तकी इस प्रकार के साहस का प्रदर्शन कर सकती है। वे नारी की अन्तर्निहित शक्ति को देखकर स्तम्भित रह गये। उन्होंने पूछा—

"मस्तानी, छत्रसाल के दरबार की शोभा को बिगाड़ कर तुम यहाँ क्यों चली आई?"

"पन्ना-नरेश का अब मुझ पर कोई अधिकार नहीं है। मेरा जीवन मरण तो अब पेशवा के साथ होगा।"

"मस्तानी, मर्यादा में रहो। तुम एक साधारण नर्तकी हो और मैं महाराष्ट्र का प्रधान सचिव। इसके अतिरिक्त तुम विजातीय भी हो। तुम्हें ज्ञात है कि तुम किस जाति की बालिका हो?"

"नहीं।"

'झूठ, तुम छिपा रही हो। तुम एक मुसलमान बालिका हो। उच्च कुलीय ब्राह्मण वंशोत्पन्न पेशवा की सेवा करने का अधिकार तुम्हें नहीं मिल सकता।"

मस्तानी को पेशवा के इस कथन में अपने अपमान की गन्ध आने लगी। उसका मुख लाल हो गया। पेशवा ने देखा उसके कपोल अश्रुओं से भीग गये थे। अपने घोड़े पर चढ़कर वह वायुवेग से ओझल हो गई। पेशवा ने एक लम्बी साँस ली और अपने घोड़े में एड़ लगाई। पेशवा भारी मन से अपने शिविर में लौटे।

रात्रिभर निद्रादेवी पेशवा से रुष्ट रही। विभिन्न विचार-लहरें हृदय-समुद्र में उठ-उठकर विलीन हो रही थीं। कभी वे उस लावण्यमयी

बालिका के उपकार से उपकृत होकर उसे अशीश देते और उसका अपमान करने की स्वयं की मूर्खता पर प्रायश्चित करते तथा कभी उस विधर्मी बालिका की अनधिकार-चेष्टा पर मन ही मन क्षुब्ध होते। रात्रि के अन्तिम प्रहर में निद्रादेवी ने उन्हें गले अवश्य लगाया परन्तु उनकी मन.स्थिति को स्वप्नलोक में जा डाला जहाँ पर चारोंओर मस्तानी ही उन्हें दिखाई दे रही थी।

कुछ माह बीत गये। पेशवा ने बुन्देलखण्ड की रक्षा करने में अपनी सम्पूर्ण शक्ति लगा दी थी। बुन्देलखण्ड में पेशवा की ख्याति फैल चुकी थी। वहाँ से पठानों का पूर्ण रूप से निष्कासन हो चुका था। मराठा-शिविर में महाराष्ट्र लौटने की तैयारियाँ हो चुकी थी। संचित द्रव्य एवं अन्य उपकरण एकत्रित किये जा चुके थे। प्रस्थान करने से पहिले अपना जीवन बचाने वाली मस्तानी को धन्यवाद देना पेशवा ने अपना मानवोचित व्यवहार समझा। पन्ना दरबार में नृत्य करती हुई नर्तकी का चित्र उनके मस्तिष्क मे उभर आया। पन्ना की ओर राजमार्ग में उनका घोड़ा द्रुत-वेग से चलने लगा। पन्ना पहुँचकर पेशवा ने छत्रसाल से पूछा—'मस्तानी कहाँ है ?' छत्रसाल ने स्तम्भित हो कर कहा, "वह तो उसी दिन से दरबार मे नहीं आई है जिस दिन से उसको आपके लिये सौंपा गया था।" पेशवा का हृदय टूट गया उन्होने निश्चय किया कि मस्तानी को आभार प्रदर्शित करने के पश्चात् ही वे पूना प्रस्थान करेंगे।

पेशवा पन्ना की गलियो मे घूम रहे थे। सहसा किसी अति साधारण घर से गीता-पाठ की ध्वनि सुनाई दी। कण्ठ कुछ परिचित-सा प्रतीत हुआ। घोड़े को दरवाजे पर बांधकर उन्होंने घर मे प्रवेश किया। एक झरोखे से उन्होंने भीतर की ओर झाँक कर देखा, मस्तानी एकाग्रचित होकर गीता का पाठ कर रही है। धूप और दीप से घर का वातावरण सुगन्धित हो रहा था। उसने एक उच्च आसन पर कृष्ण की प्रतिमा स्थापित कर रखी थी। आसन से नीचे बाजीराव का एक चित्र रखा था जो सम्भवत. उसकी अपनी कलाकृति थी। पेशवा उसे एकटक देखते रहे। एक मुसलमान बालिका का संस्कृत का इतना शुद्ध उच्चारण हो सकता है, ऐसी उन्होने पहिले कभी कल्पना तक नही की थी। मस्तानी ने अपना पाठ समाप्त किया, कृष्ण की आरती उतारी। फिर बाजीराव के चित्र को अपने हाथ मे लिया, कुछ देर तक वह चित्र से ही वार्तालाप करने लगी। 'मेरा जीवन-मरण तो अब केवल आपके साथ होगा'। कहते-कहते उसने चित्र को अपने वक्ष से लगा लिया। उसके नेत्रों से अश्रुओं की अजस्र धारा बह रही थी।

पेशवा अब स्वय अपने आप को रोक न सके। वे भीतर प्रविष्ट हुए।

मस्तानी ने उन्हें देखकर अपना आँचल सीमन्त से नीचे खींच लिया और सलज्ज, मौन खड़ी हो गई। पेशवा ने पूछा—

'मस्तानी, पूना चलोगी ?'

'नहीं।'

पेशवा व्यग्र हो उठे। मस्तानी पेशवा के प्रति आसक्तिमय उत्सुकता नहीं दिखा रही थी। अधीर होकर उन्होंने फिर कहा—

"मैं तुम्हें हठात् ले चलूंगा।"

"यह आपकी इच्छा है।"

"परन्तु मैं चाहता हूँ कि तुम स्वयं की इच्छा से चलो।"

"नारी की स्वयं की इच्छा नहीं होती। पुरुष की तृप्ति ही उसकी तृप्ति है।"

"परन्तु उस दिन तुमने अपनी इच्छा से ही मुझे शत्रु के हाथों से बचाया था !"

"हाँ, परन्तु मेरी इच्छा का परिणाम मुझे क्या मिला ? घृणा, उपेक्षा और अपमान····" कहते-कहते मस्तानी का चेहरा लाल हो गया।

मस्तानी कहती गई—"परन्तु इसका मुझे दुःख नहीं है। जिसके पास जो होता है वह वही तो दे सकता है। नारी सरिता-रूप होकर सागर-रूप पुरुष में अपना विलीनीकरण करती रहती है। सुस्वादु जल से उसे तृप्त करने का प्रयास करती है। परन्तु सागर है कि उस पर कोई असर ही नहीं होता।"

पेशवा प्रेमातिरेक से विह्वल हो चुके थे। गूढ़ दार्शनिक तर्कों का उन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। उन्होंने मस्तानी को अपनी बाहों में खींच लिया।

'आपका धर्म भ्रष्ट न होगा ?' मस्तानी ने सलज्ज स्मिति से कहा।

"नहीं, तुम्हें ग्रहण करना ही मेरा सबसे बड़ा धर्म होगा। मस्तानी, मेरा भी जीवन-मरण तुम्हारे ही साथ होगा।"—पेशवा का स्वर काँप रहा था।

दोनों एक ही घोड़े पर सवार होकर शिविर की ओर जा रहे थे।

समाज में अग्राह्य बातें शीघ्र ही फैल जाती हैं। महाराष्ट्र में भी यह बात फैल गई कि बाजीराव ने मस्तानी नामक मुसलमान लड़की को अपने पास रख लिया है। पेशवा की माता ने जब यह सुना तो उसे विश्वास ही नहीं हुआ। वह बाजीराव के आने की प्रतीक्षा कर रही थी।

पेशवा के पूना पहुँचने पर उनके भव्य स्वागत की तैयारियाँ हुईं। पेशवा-माता मंगल-कलश सजाये बैठी थीं। पूना के प्रवेश द्वार पर पेशवा का हाथी रुका। पेशवा उतर कर माता का आशीर्वाद लेने चले। मस्तानी भी साथ थी। पेशवा ने माता के पैर छुए। पेशवा के इंगित पर मस्तानी माता के पैर छूने के लिये झुकी तो माँ का सन्देह जागृत हो गया उसने पूछा—"कौन है यह?" पेशवा कुछ कह न सके। बचपन से ही वे अपनी माँ के कठोर नियन्त्रण में रहे थे। माता ने कठोर होकर पुनः पूछा—"सच बता, क्या यह मुसलमान वेश्या की वही लड़की है जिसकी अफवाह समस्त महाराष्ट्र में फैली हुई है?"

पेशवा मौन थे। माता ने मंगल-कलश फोड़ दिया। अपना माथा ठोकती हुई बोली, "बालाजी विश्वनाथ के महान् वंश को और मेरी कोख को लजाने के पहिले तुमने आत्मघात क्यों नहीं कर लिया। मैं ऐसे कुपुत्र का मुँह भी नहीं देखना चाहती।" कहते-कहते माँ तेजी से चली गई।

जिस पेशवा ने महाराष्ट्र के नाम को चतुर्दिक उज्ज्वल किया था, जिसने मराठा-राज्य की नींव अतल गहराई में जमा दी थी, समाज उनके इस छोटे से अपराध को भी क्षमा न कर सका। मस्तानी को पेशवा से पृथक् करने के लिये कठोर आज्ञायें परिवार एवं राज्य से प्रसारित हो गई। मस्तानी को पेशवा के महल से दूर एक पृथक् महल में नियन्त्रित रखा गया।

पेशवा रुग्ण थे। राजवैद्य ने बताया कि इन्हें मानसिक रोग है। इसका उपचार तो इनकी प्रिय वस्तु की प्राप्ति से ही हो सकता है। पेशवा के अनुज चिमनाजी ने पूछा—"क्या मस्तानी के अतिरिक्त पूज्य पेशवा के रोग का कोई अन्य उपचार नहीं हो सकता?"

"सम्भवतः नहीं।" ऐसा मेरा विचार है। सहसा पेशवा-माता ने कक्ष में प्रवेश किया। उसने कहा, "मस्तानी को शीघ्र यहाँ ले आओ, चिमनाजी।"

चिमनाजी ने सशंकित होकर कहा—"परन्तु माताजी, आप तो कुछ और ही आज्ञा दे चुकी हैं।"

"नहीं रे, वह तो ब्राह्मण की लड़की है। अभी-अभी पन्ना से छत्रसाल-नरेश का समाचार आया है। उसके माँ-बाप बचपन में ही मर गये थे। एक मुसलमान महिला ने उसका पालन-पोषण किया था। जाओ जल्दी करो!"

चिमनाजी मस्तानी के महल की ओर चल दिये। पेशवा की आँखों में एक अपूर्व आभा दौड़ गई। यह बुझते हुए दीपक का अन्तिम प्रकाश था।

उन्होंने माता को हाथ जोड़कर मौन प्रणाम किया। उनकी आँखें शून्य में ठहर गईं, और शरीर संज्ञाहीन हो चुका था।

चिमनाजी ने जाकर देखा कि मस्तानी का शरीर निर्जीव पड़ा है। उसके पास ही पेशवा का अर्द्ध निर्मित चित्र है जिसके नीचे लिखा था कि "मेरा जीवन-मरण तो आपके ही साथ होगा।"

दो विशुद्ध हृदयों के एक साथ जीवन-मरण की यह कथा महाराष्ट्र के इतिहास में सर्वदा सुरक्षित रहेगी।

●

परदेशी

●

'फ़राज़' हामिदी

मुझे जहाँ मे बसा गवारा,
मेरा नही है ये जहाँ !
जुदा हैं मेरी मंजिलें,
अलग है मेरा कारवाँ !!

यहाँ हैं नफ़रतो के तीर;
ज़हर मे बुझे हुए !
यहाँ मनुज के भेस मे,
दरिन्दे हैं छिपे हुए !!

यहाँ है आँसुओ की लय,
यहाँ नही खुशी के बोल !
यहाँ हवस के नाग हैं;
यहाँ हैं असमतों के मोल !!

मैं राही और राह का !
यहाँ मेरा गुज़र कहाँ !!

ज़ुबाँ की आड़ मे जहाँ,
बहें लहू की नदियाँ !
मैं किस तरह रहूँ यहाँ;
मैं किस तरह जियूँ यहाँ !!

जहाँ पे तेग़ खिंच रही हो,
मज़ाहबों के नाम पर !
जहाँ ख़ुदा पे तन्ज़ है;
जहाँ हो हर्फ़ राम पर !!

उठे हैं शोले हर तरफ़ !
है ज़िन्दगी धुँआँ धुँआँ !!
मैं किस तरह रहूँ यहाँ !
मैं किस तरह जियूँ यहाँ !!

ज़िन्दगी

●

सत्यपाल भारद्वाज 'समीर'

ंभल सँभल दुरूह राह चल रही है जिन्दगी।
न के साँझ का सिन्दूर ढल रही है जिन्दगी॥

की मुक्त केलि छीन कर,
ों से पुष्प राशि बीन कर,
री सुराहियाँ उड़ेल कर,
ही उसांस की सुबीन पर,

खिला हुआ पराग चूम, मत्त बनी झूमझूम।
अधखिली कली समान खिल रही है जिन्दगी॥

ों के पर्वतो को फोड़ कर,
में, ध्येय-पन्थ मोड़ कर,
, प्रवहमान नीर-सी,
बन्धनों को तोड़कर॥

गा रही प्रयाण-गीत, व्याधियो के दुर्ग जीत।
रात-दिन पयोधि ओर, बढ़ रही है जिन्दगी॥

को सनेह से निहारती,
युक्त आरती उतारती,
विशाल मेघ-राशि को,
की माँग को सँवारती,

राजमान हर नगर, मिल उठी डगर-डगर।
अलिप्त दीप-श्री समान, जल रही है जिन्दगी॥

विश्व-काल-चक्र के चढ़ाव में, उतार में,
विमुग्ध बाल्यकाल के सनेह में, दुलार में,
झूमती जवानियों के मदभरे खुमार में,
निराश ढल रही विशीर्ण आयु की सँभार में,

नवीन पृष्ठ खोलती, पाप पुण्य तोलती।
जन्म-मृत्यु के सुपाठ पढ़ रही है जिन्दगी॥

कहीं विशुद्ध रक्त का उबाल बन के जल रही,
कहीं प्रबुद्ध देश की मशाल बनकर खिल रही,
फूँकती नवीन आग, प्राण प्राण में कहीं,
नवीन युग-विधान का प्रवाह बन के चल रही,

प्रमत्त ज्वार काटती, विशाल सिन्धु लाँघती।
अलक्ष मृत्यु का समुद्र-तट रही है जिन्दगी॥

कहीं पहाड़ चढ़ रही ये भाग्य के विधान के,
कहीं सुपाठ पढ़ रही है कर्म के पुराण के,
संग भागती कभी अधीर काल धार के,
कभी निशान देखती है, कूल की कटान के,

फूँक-फूँक पाँव को, औ लाँघ गाँव-गाँव को।
विरामहीन मंजिलें यों चल रही है जिन्दगी॥

अभिनन्दन

०

बजरंगसहाय शास्त्री

ऋतुराज बसन्त पधारे हैं वन-उपवन में,
गुंजार उठे फूलों पर भौंरे मधु-लोभी।
आमों की डाली पर कोयलियाँ कूक उठीं,
मिल गया गन्ध प्रिय शीतल मन्द पवन को भी।

सरसों ने पीली, साड़ी पहनी है समोद,
भर गई गोद भी फूलों से डाली की।
हर ओर प्रकृति में गूंज रहा संगीत मधुर,
बहुमूल्य सम्पदा सुरभित है बनमाली की।

हे कोकिल मधुकर सुमनों के साथी बसन्त,
क्या मानव-जीवन को भी सफल बनाओगे ?
युग-युग से होता ही आया पतझड़ जिसका,
क्या उसके अन्तर में भी सुमन खिलाओगे ?

क्या कभी छूट पायेगी चिन्ता रोटी की ?
क्या कभी वस्त्र मिल पायेगा ढकने शरीर ?
क्या कभी उसे सुख का सन्देश सुनाएगा ?
मलयाचल का शीतल सुगन्ध पावन समीर ?

क्या महलों की जगमग से नीचे आ वसन्त,
सुरभित कर देगा सुमन झोंपड़ी के अन्दर?
क्या घोर नर्क में पड़ा हुआ अभिशप्त जीव,
पावन हो जाएगा तेरा सौरभ पाकर?

यदि हाँ, तो ये उपकृत मानवता के पुतले,
हाथों में लेकर पुष्पहार अक्षत चन्दन।
जगमग जगमग नवदीप ज्योति पथ पर तेरा,
आलोक भरा कर पायेंगे शुभ अभिनन्दन।

पायल बन जाता

०

कृष्णानन्द श्रीवास्तव

मेरा अन्तर्दाह हृदय सागर की बड़वा,
तिल तिल जलते प्राणों से आहों का उद्भव,
सच कहता हूँ मगर तुम्हें विश्वास न होगा,
बहते अगर न अश्रु घना बादल बन जाता।

अभिलाषाओं के ईंधन में अग्नि निराशा,
घात और प्रतिघात हवाएँ सुलगाती हैं,
हृदय-पटल हो गया धूम्र से इतना काला,
लाखों सूनी आँखों का काजल बन जाता।

जीवन है मीठी कड़वी सुधियों की छाया,
वर्तमान का कड़ुआपन तो जहर बुझा है,
किन्तु विगत की यदि सारी सुधियाँ रह पातीं,
तो शायद मानव अब तक पागल बन जाता।

यह तन बन कर छार चरण जग के लोटेगा,
किन्तु शक्ति भर इसीलिये यह सब गाता हूँ
चुपके चुपके आनेवाले समय छवी के,
पैरों में बजने वाली पायल बन जाता।

●

प्रियं लोकतन्त्रम्

जगन्नाथ शर्म्मा

शुभं शोभनं पावनं पावनानां,
परं पोषणं शोषकैः शोषितानाम् ।
इदं सर्व-सत्ता-सुसम्पन्नमृद्धं,
जयेल्लोकतन्त्रं—प्रियं लोकतन्त्रम् ।

अर्थ—शुभ, लोक-कल्याणकारी, परम शोभायमान, परम पवित्र, शोषित मानवता का महान् पोषक, सर्वसत्तासम्पन्न एवं सुसमृद्ध हमारा लोकतन्त्र—प्रिय लोकन्त्रत विजयी हो !

इयं राजप्रासादतो राज्यलक्ष्मी—
विनिःसृत्य विष्टा नु पर्णोटजेषु !
कृता येन राजान आजानु नम्राः,
जयेल्लोकतन्त्रं—प्रियं लोकतन्त्रम् ।

अर्थ—यह राज्यलक्ष्मी राजाओं के राजप्रासादों का परित्याग कर आज सामान्य जन की पर्णकुटिया में प्रविष्ट हो गई है। जिस प्रजातन्त्र ने राजाओं को घुटनों तक झुकना सिखा दिया, उस महामहिम लोकतन्त्र की जय हो !

नभो-मण्डलं कुंकुमैरद्य रक्तं,
परागानिलैर्वासितं भूमिवक्त्रम् ।
खगा मोदमग्नाः सुगायन्ति गीतं,
जयेल्लोतन्त्रं—प्रियं लोकतन्त्रम् ।

अर्थ—गणतन्त्र दिवस की पावन वेला में आज नभोमण्डल कुंकुमाक्त अरुणिम किरणों से रक्ताभ हो उठा है, परागपंकिल मलयवायु ने वसुन्धरा को

दिव्य सौरभ से सुवासित कर दिया है। विहग-वृन्द भी मोदमग्न होकर कलकण्ठ से मानो यही गीत गाने मे निमग्न हैं "लोकतन्त्र की जय हो, प्रिय लोकतन्त्र विजयी हो !"

> श्रमं यस्य तस्यैव भूस्तस्य वित्तं,
> स राजा प्रजारञ्जने यस्य चित्तम्।
> मुमूकस्य वाणी, अनेत्रस्य नेत्र,
> जयेल्लोकतन्त्रं, — प्रिय लोकतन्त्रम्।

अर्थ—इस लोकतन्त्र के प्रसाद से आज भूमि और सम्पत्ति पर एकाधिकार समाप्त हो कर इस स्थिति का निर्माण हुआ है कि जो श्रम करता है उसी की भूमि है, उसी का धन है। आज वही राजा है, जिसका चित्त प्रजा-रंजन मे लीन है। जिस लोकतन्त्र ने मूक मानवता को वाणी दी और अज्ञानान्ध नेत्रों को आत्मचिन्तन की दिव्य दृष्टि प्रदान की, वही हमारा प्रिय लोकतन्त्र विजयी हो !

> स्तुति. कस्य निन्दाऽथवा कस्य कार्या ?
> वयं शासका: शासितारश्च आर्या।
> सदा स्मर्यतां राष्ट्रनिर्माण मन्त्रम्,
> जयेल्लोकतन्त्र — प्रिय लोकतन्त्रम्।

अर्थ—राष्ट्रव्यापी गड़बड़ियो के लिये हम किसको निन्दा करें, किसकी स्तुति करें ? हमी शासक हैं, और हमी शासित हैं। राष्ट्र-निर्माण का मन्त्र ही सदा याद करते रहे, जिससे हमारा प्रिय लोकतन्त्र विराट् हो, विजयी हो !

इतनी जलन दो मुझको

○

ज्ञान भारिल्ल

इतनी जलन दो मुझको कि मन जलता दिया बन जाय।
घिर घिर कर तिमिर की घन घटाओं को बरसने दो,
किरण की एक रेखा के लिये मन को तरसने दो,
सियाही ला सको जितनी बिखेरो राह पर मेरी—
मुझे इतना अँधेरा दो कि जीवन की दिशा छिन जाय।
इतनी जलन दो मुझको ....

प्रवासी हूँ, मुझे मरुभूमि में खोने-भटकने दो,
न छाया दो, न पथ—यह जन्म आश्रयहीन कटने दो,
न दो तुम तृप्ति मुझको, एक भी कण स्नेह मत दो—
मुझे तुम प्यास दो इतनी कि केवल प्यास ही रह जाय।
इतनी जलन दो मुझको..........

कभी ले ज्योति का सिन्दूर तम की माँग भर दूँगा,
तिमिर की रागिनी को मैं सुबह के छन्द-स्वर दूँगा,
मुझे वीणा उठाकर तार को झंकार देने दो—
कि तम की यह निशा आलोक की रसधार से धुल जाय।

इतनी जलन दो मुझको
कि मन जलता दिया बन जाय।

○

प्रस्तुत पुस्तक के लेखकगण

१-शकुन्तला कुमारी 'रेणु'
नवरत्न सरस्वती सदन,
झालरापाटन (राजस्थान)

२-श्री शंकर 'क्रन्दन',
सती साधना मंदिर,
उदयपुर (राजस्थान)

३-श्री श्याम श्रोत्रिय,
श्री रघुनाथराय उच्च माध्यमिक,
विद्यालय, सुजानगढ़
(जिला-चूरू, राजस्थान)

४-श्री राजानन्द
छंगाणीपाटी,
बीकानेर (राजस्थान)

५-श्री रमेशकुमार 'शील'
राजकीय माध्यमिक शाला,
बयाना (जिला-भरतपुर, राज०)

६-श्री शम्भूसिंह,
राजकीय उच्च माध्यमिक
विद्यालय,
मानिया-२ (वाया विजयनगर)
जिला-अजमेर, (राजस्थान)

७-श्री विश्वेश्वर शर्मा,
श्रीकृष्ण निकुंज, मटियानी चौहट्टा,
उदयपुर (राजस्थान)

८-श्री गौरीशंकर आर्य,
शिक्षा प्रसार अधिकारी,
पचायत समिति,
डग (जिला-झालावाड़ राज०)

९-डा० नारायणदत्त श्रीमाली
सी/जी २६, हाईकोर्ट कॉलौनी,
जोधपुर (राजस्थान)

१०-श्री सुरेश भटनागर,
बुनियादी शिक्षक प्रशिक्षण
महाविद्यालय,
सरदारशहर (जिला-चूरू, राज०)

११-श्री भागीरथ भार्गव,
यशवत उच्च माध्यमिक विद्यालय,
अलवर (राजस्थान)

१२-श्री प्रकाश माथुर,
राजकीय उच्च माध्यमिक
विद्यालय,
नदबई (जिला-भरतपुर, राज०)

१३-श्री त्रिलोक गोयल,
सरस्वती साधना सदन,
आदर्शनगर,
अजमेर (राजस्थान)

१४-श्री बी० एल० अरविन्द,
भारतीय सदन,
भवानीमण्डी (राज०, प० रेल्वे)

१५–श्री वृजेश 'चंचल',
शारदासदन, वृजराजपुरा
कोटा–१ (राज०)

१६–श्री ओमप्रकाश शर्मा,
राजकीय उच्च माध्यमिक
विद्यालय,
थानागाजी (जिला–अलवर,
राजस्थान)

१७–श्री वृजभूषण भट्ट,
राजकीय उच्च माध्यमिक
विद्यालय,
वल्लभनगर (जिला·उदयपुर, राज.)

१८–श्री चतुर्भुज, शर्मा, समन्वयक,
शिक्षा प्रसार सेवा केन्द्र,
टौंक (राजस्थान)

१९–श्री मानसिंह वर्मा,
विद्याभवन हायर सैकण्डरी स्कूल,
उदयपुर (राजस्थान)

२०–श्री देवेन्द्र मिश्र,
शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय,
सरदारशहर (जिला–चुरू, राज०)

२१–श्री कान्ह महर्षि,
महर्षि साहित्य सदन,
नोखा (जिला–बीकानेर, राज०)

२२–श्री गिरवर गोपाल 'अलवरी',
राजकीय माध्यमिक विद्यालय'
खानपुर जाट (जि०-अलवर, राज०)

अमरसिंह पाण्डेय
२३–श्री कीय माध्यमिक विद्यालय,
रामपुर कलां (जिला–भरतपुर,
स राज०)
(र

परमेश्वर शर्मा,
२४–श्री रत्न सरस्वती सदन,
नवलरापाटन (राज०)
झा

गिरिराज शरण सिंघल,
२५–श्री पत्रालय, इटामड़ा,
ग्रा तपुर (राज०)
भर

वृजेन्द्र भदौरिया,
२६–श्री बावड़ी,
चाँ मेर (राज०)
अज

उमेशकुमार,
२७–श्री कीय उच्च माध्यमिक
राज्ञालय,
विकासारना (वाया हनुमानगढ़
पक्का–श्री गंगानगर, राज०
जि

राधाकृष्ण शास्त्री,
२८–श्री कीय माध्यमिक विद्यालय,
राज रियावास (जिला–सीकर
खा ०)
राज

श्रीकृष्ण बिश्नोई,
२९–श्री सैकण्डरी स्कूल,
जैन नेर (राज०)
बीक

वेद शर्मा,
३०–श्री रतनभाई क्वार्टस,
१२, नेर (राज०)

३१–श्री भगवन्त राव गाजरे,
राजकीय उच्च माध्यमिक
विद्यालय,
आसीन्द (राज०)

३२–कुमारी सुमन तारे
राजकीय कन्या उच्च माध्यमिक
विद्यालय,
लाडनूं (जिला–नागोर, राज०)

३३–श्री बी० एल० जोशी,
राजकीय उच्च माध्यमिक
विद्यालय,
डूंगला (जिला–चितौड़गढ (राज०)

३४–श्री सुरेन्द्र अचल,
राजकीय उच्च माध्यमिक विद्यालय,
भीम (जिला–उदयपुर, राज०)

३५–श्री महावीर योगानन्दी,
द्वारा डा० डी०डी० नीमावत,
शांतिपुरा, कृष्णगंज,
अजमेर (राज०)

३६–श्री हामिद जोधपुरी,
द्वारा लेफ्टिनेन्ट कर्नल जे० खान,
८, बी पोलोमैदान,
पावटा (जिला–जोधपुर, राज०)

३७–श्री बुद्धिसागर गौड़ 'चंचल',
अभिनव प्रशिक्षण केन्द्र,
कोटा (राज०)

३८–विमला भटनागर,
योथरा गर्ल्स मिडिल स्कूल,
बीकानेर (राज०)

३९–श्री रामनिवास टेलर,
राजकीय प्राथमिक शाला,
जेठाना (जिला–अजमेर राज०)

४०–श्री मुरारीलाल कटारिया,
मकान नं० ११/६९३, श्रीपुरा
कोटा–१ (राज०)

४१–श्री रमेशचन्द्र शर्मा 'मधुप'
५७५, रामदयाल मोहल्ला,
नसीराबाद (जिला–अजमेर राज.

४२–श्री भगवतीलाल व्यास,
विद्याभवन हायर सैकण्डरी स्कूल,
उदयपुर (राज०)

४३–श्री जगदीश 'सुदामा,'
श्रीकृष्ण निकुंज, भटियानी चोहट्टा,
उदयपुर (राज०)

४४–श्री गोपालप्रसाद मुद्गल,
राजकीय उच्च माध्यमिक
विद्यालय,
सिनसिनी, (जिला-भरतपुर, राज०)

४५–श्री करणीदान बारहट,
मालारामपुरा–सांगरिया
(जिला–श्री गंगानगर, राज०)

४६–श्री जी० वी० आजाद,
हाथीभाटा, अजमेर (राज०)

४७–श्री जनकराज पारीक,
१४१ गोल बाजार,
श्री करनपुर (जिला–गंगानगर
राज०)

१५–श्री वृजेश 'चंचल',
शारदासदन, वृजराजपुरा
कोटा–१ (राज०)

१६–श्री ओमप्रकाश शर्मा,
राजकीय उच्च माध्यमिक
विद्यालय,
थानागाजी (जिला–अलवर,
राजस्थान)

१७–श्री वृजभूषण भट्ट,
राजकीय उच्च माध्यमिक
विद्यालय,
वल्लभनगर (जिला-उदयपुर, राज.)

१८–श्री चतुर्भुज, शर्मा, समन्वयक,
शिक्षा प्रसार सेवा केन्द्र,
टौंक (राजस्थान)

१९–श्री मानसिंह वर्मा,
विद्याभवन हायर सैकण्डरी स्कूल,
उदयपुर (राजस्थान)

२०–श्री देवेन्द्र मिश्र,
शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय,
सरदारशहर (जिला–चुरू, राज०)

२१–श्री कान्ह महर्षि,
महर्षि साहित्य सदन,
नोखा (जिला–बीकानेर, राज०)

गिरवर गोपाल 'अलवरी',
ीय माध्यमि क विद्यालय'
पुर [illegible] वर, राज०)

सि

२३–श्री अमरसिंह पाण्डेय
राजकीय माध्यमिक विद्यालय,
सलेमपुर कलां (जिला–भरतपुर,
(राज०)

२४–श्री परमेश्वर शर्मा,
नवरत्न सरस्वती सदन,
झालरापाटन (राज०)

२५–श्री गिरिराज शरण सिंघल,
ग्राम पत्रालय, इटामड़ा,
भरतपुर (राज०)

२६–श्री वृजेन्द्र भदौरिया,
चाँदबावड़ी,
अजमेर (राज०)

२७–श्री उमेशकुमार,
राजकीय उच्च माध्यमिक
विद्यालय,
पक्कासारना (वाया हनुमानगढ़)
जिला–श्री गंगानगर, राज०

२८–श्री राधाकृष्ण शास्त्री,
राजकीय माध्यमिक विद्यालय.
खाचरियावास (जिला–सीकर,
राज०)

२९–श्री श्रीकृष्ण विश्नोई,
जैन सैकण्डरी स्कूल,
बीकानेर (राज०)

३०–श्री वेद शर्मा,
१२, रतनभाई क्वार्टर्स,
बीकानेर (राज०)

३१–श्री भगवन्त राव गाजरे,
राजकीय उच्च माध्यमिक
विद्यालय,
आसीन्द (राज०)

३२–कुमारी सुमन तारे
राजकीय कन्या उच्च माध्यमिक
विद्यालय,
लाडनूं (जिला–नागौर, राज०)

३३–श्री बी० एल० जोशी,
राजकीय उच्च माध्यमिक
विद्यालय,
डूंगला (जिला–चित्तौड़गढ़ (राज०)

३४–श्री सुरेन्द्र अंचल,
राजकीय उच्च माध्यमिक विद्यालय,
भीम (जिला–उदयपुर, राज०)

३५–श्री महावीर योगानन्दी,
द्वारा डा० डी०डी० नीमावत,
शांतिपुरा, कृष्णगंज,
अजमेर (राज०)

३६–श्री हामिद जोधपुरी,
द्वारा लेफ्टिनेन्ट कर्नल जे० खान,
८, बी पोलोग्राउंड,
पावटा (जिला–जोधपुर, राज०)

३७–श्री बुद्धिसागर गौड़ 'चंचल',
अभिनव प्रशिक्षण केन्द्र,
कोटा (राज०)

३८–विमला भटनागर,
बोथरा गर्ल्स मिडिल स्कूल,
बीकानेर (राज०)

३९–श्री रामनिवास टेलर,
राजकीय प्राथमिक शाला,
जेठाना (जिला–अजमेर राज०)

४०–श्री मुरारीलाल कटारिया,
मकान न० ११/६६३, श्रीपुरा
कोटा–१ (राज०)

४१–श्री रमेशचन्द्र शर्मा 'मधुप'
५७५, रामदयाल मोहल्ला,
नसीराबाद (जिला–अजमेर राज.

४२–श्री भगवतीलाल व्यास,
विद्याभवन हायर सैकण्डरी स्कूल,
उदयपुर (राज०)

४३–श्री जगदीश 'सुदामा,'
श्रीकृष्ण निकुंज, भटियानी चोहट्टा,
उदयपुर (राज०)

४४–श्री गोपालप्रसाद मुद्गल,
राजकीय उच्च माध्यमिक
विद्यालय,
सिनसिनी,(जिला–भरतपुर,राज०)

४५–श्री करणीदान बारहट,
मालारामपुरा–सोगरिया
(जिला–श्री गंगानगर, राज०)

४६–श्री जी० वी० आजाद,
हाथीभाटा, अजमेर (राज०)

४७–श्री जनकराज पारीक,
१४१ गोल बाजार,
–श्री करनपुर (जिला–गंगानगर
राज०)

४८—श्री नृसिंह राजपुरोहित
[illegible] (जिला—नागौर, राज०)

४९—श्री लक्ष्मीकान्त शर्मा 'ललित'
राजकीय माध्यमिक विद्यालय,
[illegible] (जिला—सवाईमाधोपुर
राज०)

५०—श्री [illegible] दइया '[illegible]',
द्वारा [illegible]
महर्षि दयानन्द मार्ग,
बीकानेर (राज०)

५१—श्री नन्दकिशोर शर्मा,
सी/जी २४ हाईकोर्ट कालोनी,
जोधपुर (राज०)

५२—श्री नीलकण्ठ शास्त्री,
ब्रह्मपुरी,
बड़ी सादड़ी
(जिला—चित्तौड़गढ़, राज०)

५३—श्री बलबीरसिंह 'करुण',
द्वारा श्री नानकचन्द ठेकेदार,
मनी का बड़,
अलवर (राज०)

५४—श्री अशोक पंत
राजकीय उच्च माध्यमिक
विद्यालय,
भरतपुर (राज०)

५५—[illegible] शर्मा, '[illegible]'
राजकीय उच्च माध्यमिक
विद्यालय,
[illegible] (जिला—अलवर, राज)

५६—श्री 'फराज' हामिदी साहिद हुसैन
खान फराज, राजकीय प्राथमिक
शाला नं० २
मकराना (जिला—अलवर, राज०)

५७—श्री सत्यपाल भारद्वाज 'समीर'
द्वारा श्री गोविन्दप्रसाद शर्मा,
एडवोकेट, जौहरी बाजार,
जयपुर (राज०)

५८—श्री बजरंगसहाय शास्त्री,
राजकीय उच्च माध्यमिक
विद्यालय,
टोडा भीम, (सवाईमाधोपुर राज०)

५९—श्री कृष्णानन्द श्रीवास्तव,
राजकीय उच्च माध्यमिक
विद्यालय,
बबाई (जिला—झुंझनूं, राज०)

६०—श्री जगन्नाथ शर्मा,
राजकीय उच्च माध्यमिक विद्यालय,
बाडमेर (राज०)

६१—श्री सुखदेव रामावत

६२—श्री ज्ञान भारिल्ल,
प्रकाशन अनुभाग, शिक्षा विभाग,
बीकानेर (राज०)